हमारे बापू

लेखक

प्रिंसिपल हरिश्चन्द्र एम० ए०

प्रो० रामस्वरूप एम० ए० एम० ओ० एल०

प्रकाशक

गौतम बुक डिपो

नई सड़क, देहली।

प्रथम बार] १९४८

प्राक्-कथन

यदि आप सौ भारतियों से यह पूछें कि पुरातन और नूतन युगों मे से आपको कौनसा अधिक अच्छा लगता है, तो उनमे से निन्यानवे आप को यही उत्तर देंगे—पुरातन कारण पूछने पर वे आपको वतायेंगे कि पुराने दिनों मे वस्तुएँ वहुत सस्ती होती थीं, लोग भूखों न मरते थे, नगे न रहते थे, पटरियों पर न सोते थे। पुराने लोग धार्मिक होते थे, पूजा-पाठ करते थे, छल-कपट से हीन थे, सच्ची सहानुभूति से युक्त थे, दुःख-सुख में परस्पर सहायता देते थे। परन्तु आज, आज तो लाखो भारतियों को दो समय भर-पेट भोजन नहीं मिलता, तन ढॅकने को वस्त्र नहीं मिलते, सिर छिपाने को छत नहीं मिलती। आज जनता धर्म को ढोंग, पूजा-पाठ को पाखड, छल-कपट को सभ्यता और सहानुभूति को समय का नाश कहती है। इसीलिए अधिकाश लोग उन्हीं युगों की प्रशसा करते हैं जब देश मे ऋषि मुनि विराजमान थे, यज्ञ-याग होते थे, धर्म का डका वजता था और राजा लोग हृदय पर हाथ रखकर कह सकते थे कि—

"हमारे राज्य मे न कोई चोर है, न कजूस, न शराबी और न असत्यवादी, न अनाचारी और न व्यभिचारी"

वे कहते हैं भाई, हम तो उन्हीं युगो के प्रशसक हैं जिनमे राजा हरिश्चन्द्र-से सत्यवादी, श्री रामचन्द्र-से मर्यादा पुरुषोत्तम, श्री

कृष्णचन्द्र-से योगेश्वर, महात्मा बुद्ध-से धर्मात्मा और श्री महावीर-से दयावतार धरा-धाम पर अवतीर्ण हुए थे। यह सब कुछ सत्य होते हुए भी, प्राचीन काल और उसकी सभ्यता के प्रशंसक होतें हुए, हम तो आधुनिक युग को ही अच्छा समझते हैं क्योंकि इसी युग में भारत की पुण्यभूमि ने एक ऐसे महापुरुष—महात्मा गांधी को जन्म दिया जिनके जोड़ का व्यक्ति संसार के इतिहास में विरला ही मिलेगा। और हम, सच मानिए, निज को भी धन्य मानते हैं क्योंकि हमें उनके दर्शन करने, उनके उपदेश सुनने तथा उनसे मिलने-जुलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिन लोगों ने गांधी जी के जीवन को समीप से वरसों तक देखा है उनका कथन है कि यदि सब लोग महात्मा गांधी जैसे वन जायँ तो परमात्मा पृथ्वी पर चलने लगे।

वसन्त में जितने फूल खिले, प्रशंसनीय होते हैं। लोग उन्हें सीस पर धारण करते हैं, देवताओं पर चढ़ाते हैं, उचित ही करते हैं परन्तु उस पुष्प की महिमा कहीं अधिक होती है जो पतझड़ में खिल उठता है। महात्मा गांधी ऐसे ही एक पुष्प थे। युग नास्तिक वन रहा था उन्होंने आस्तिकता का प्रचार किया। राष्ट्र शस्त्रीकरण की दौड़ लगा रहे थे, उन्होंने अहिंसा–विश्व–प्रेम–का पाठ पढ़ाया।

सब देश राष्ट्रीयता के दीवाने हो रहे थे, उन्हों ने अंतर्राष्ट्रीयता का उपदेश दिया। लोग गोरे–काले और ऊँच-नीच के भूत में ग्रस्त थे, उन्होंने मानवमात्र की समता की शिक्षा दी।

ससार असत्य और छल-कपट के प्रवाह म वहा जा रहा था उन्होंने सत्य और सरलता की महिमा वताई। इन वातों का उन्होंने प्रचार ही नहीं किया वल्कि अंतिम दम तक उन्हें जीवन का अङ्ग वनाया और उन्हीं पर आचरण करते हुए अपनी वलि दे दी।

निस्सदेह आज के ससार ने अगणित कलाओं तथा विज्ञानों म आश्चर्यजनक उन्नति का है पर जीवन को उच्च और पवित्र तथा ससार को शान्तिमय वनाने मे जो काम गाधी जी ने किया है वह अपना दृष्टान्त आप ही है। उनके सद्गुणो ने हमारे हृदयो में श्रद्धा का भाव उत्पन्न किया और हम आगामी पृष्ठ लिखने पर विवश हो गए।

आशा है कि जिस श्रद्धा से ये पृष्ठ लिखे गए हैं यदि उसी श्रद्धा से पढ़े भी गए तो पाठकों के जीवन मे अवश्य ही कल्याणकारी परिवर्तन हो जायेगा और हम अपना परिश्रम सफल समझे गे।

लेखक

देहली, सितम्बर १६४८

विषय-सूची

प्रारम्भिक जीवन

वह घड़ी सचमुच धन्य थी, वह दिन अत्यन्त भाग्यशाली था, जिस दिन और जिस घडी मे विश्ववन्द्य महात्मा गांधी ने जन्म लिया था, जिनके बारे मे ससार-प्रसिद्ध वैज्ञानिक आईन्स्टैन ने ठीक कहा है कि कुछ पीढ़ियों बाद लोग कदाचित् ही विश्वास करें कि इस प्रकार का अनुपम नेता और सफल योद्धा भी किसी युग मे मनुष्य का चोला धारण करके भूमंडल पर चला करता था।

आश्विन वदी १२ सम्वत् १९२५ वि० तदनुसार २ अक्तूबर सन १८६९ ई० को पोरबन्दर में जब माता पुतली बाई की गोद नन्हे गांधी से हरी भरी हुई तो श्री कर्मचन्द जी के समस्त गांधी परिवार मे आह्लाद और आनन्द की एक लहर सी दौड़ गई। बन्धु-बान्धवों से बधाइयाँ मिलने लगीं। मिठाइयां बटीं और आनन्दोत्सव मनाये जाने लगे।

इस नन्हे गांधी का नाम मोहनदास रखा गया। किसी को उस समय क्या मालूम था कि शिशु मोहनदास बड़ा होकर वंशीधर 'मोहन' के सदृश ही नाम पैदा करके अमर हो जायगा।

बचपन और प्रारम्भिक शिक्षा

बालक मोहनदास के प्रथम सात वर्ष पोरबन्दर में बीते। उन दिनों ये साधारण बुद्धि के बालक समझे जाते थे। उनमे अभी विशेष प्रतिभा का बीज अंकुरित नहीं हो पाया था। वहीं की पाठशाला मे यह पढ़ने बिठाये गये। उस समय उनकी पढ़ने मे विशेष रुचि भी न थी। उन्होंने स्वयं लिखा है, "उस समय मैंने लड़कों के साथ मेहता जी मास्टर साहब को सिर्फ गाली देना सीखा था। इतना याद पड़ता है, और बात याद नहीं आती। इससे यह अनुमान करता हूँ कि मेरी बुद्धि मन्द रही होगी और स्मरण-शक्ति उन पंक्तियों के कच्चे पापड़ की तरह रही होगी, जिन्हें हम लड़के गाया करते थे—

एकड़े एक, पापड़ शेक,
पापड़ कच्चा मोरा'

पहली खाली जगह मास्टर साहब का नाम रहता था। उन्हें मैं अमर करना नहीं चाहता। दूसरी खाली जगह में एक गाली रहती थी, जिसे यहाँ देने की आवश्यकता नहीं।"

हाई स्कूल में

पोरबन्दर से बालक गांधी के पिता न्यायाधीश बनकर राजकोट गए। तब इनकी आयु ७ वर्ष की थी। राजकोट की देहाती पाठशाला मे इन्हें प्रविष्ट कराया गया। वहाँ इनकी शिक्षा मन्दगति से चलती रही। यह पाठशाला के साधारण विद्यार्थियों मे से थे। पाठशाला से फिर ऊपर के स्कूल मे— और वहाँ से हाई स्कूल मे गये। यहाँ तक
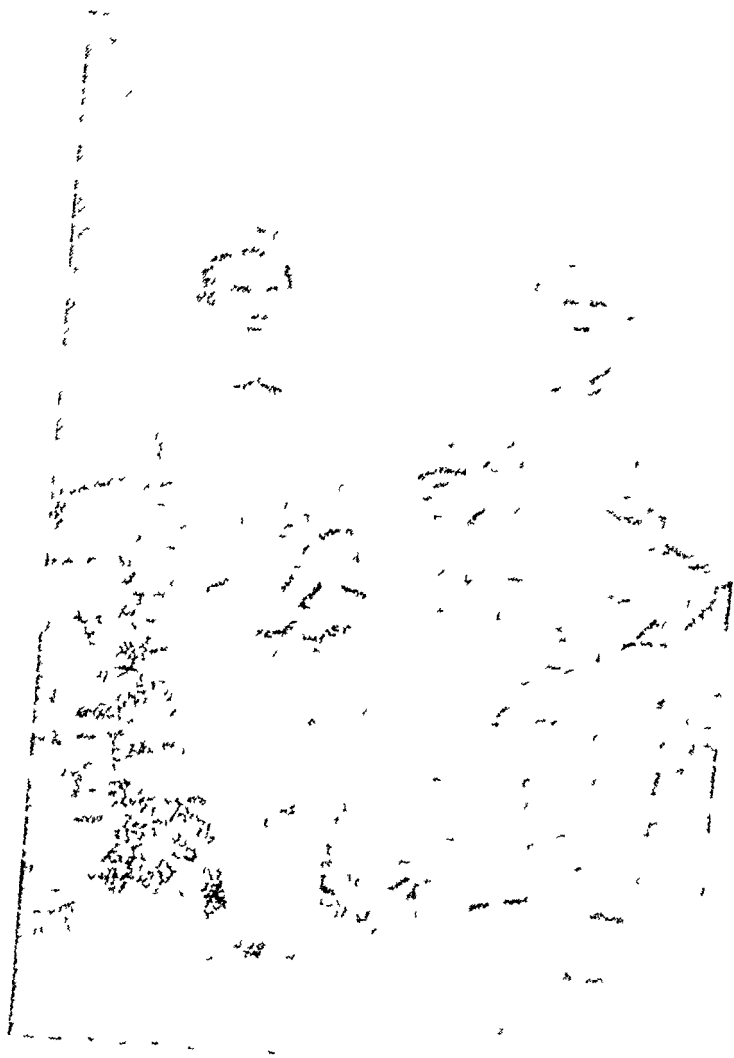
हाई स्कूल का विद्यार्थी —"मोहनदास गाँधी

पहुँचते उनका बारहवाँ वर्ष पूरा हो गया। इनका स्वभाव बड़ा संकोची और झेंपू था। किसी से मेल-जोल कम रखते थे। विद्यालय मे अपने काम से काम रहता। छुट्टी की घटी वजी कि घर दौड भागे। ऐसा न हो कोई छात्र उपहास या व्यग्य का ही लक्ष्य बना बैठे। पर माता पिता के अच्छे सस्कारों की मोहनदास में प्रबलता थी। वे कदापि अध्यापक या किसी अन्य से झूठ न बोलते। इस सत्य के अकुर से दूरदर्शी अनुमान लगा सकते थे कि उनके जीवन का प्रवाह किस दिशा मे प्रवाहित होगा।

उनकी आत्म-कहानी मे विद्यार्थी-जीवन की अनेकों झाँकियाँ मिलती है। कुछेक को यहाँ उद्धरण करना रुचि-पूर्ण होगा।

एक हाई स्कूल मे घटित घटना का आत्म-कहानी में उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं, "हाई स्कूल के प्रथम ही वर्ष के परीक्षा के समय की एक घटना लिखने योग्य है। शिक्षा-विभाग के निरीक्षक (इन्स्पेक्टर) गाइल्स साहब निरीक्षण करने आये। उन्होंने पहली कक्षा के विद्यार्थियों को पाच शब्द लिखवाये। उनमें एक शब्द था kettle। उसे मैंने अशुद्ध लिखा। मास्टर साहब ने मुझे अपने बूट से ठोकर मार कर चेताया। पर मैं क्यों चेतने लगा? मेरे दिमाग मे यह बात न आई कि मास्टर साहब मुझे आगे के लडकों की स्लेट देखकर सही लिखने का संकेत कर रहे हैं। मैं मान रहा था कि मास्टर साहब यह देख रहे हैं कि हम दूसरे से नकल तो नहीं कर रहे हैं। सब लड़कों

के पाँचों शब्द सही निकले। एक मै ही बुद्धू साबित हुआ। मास्टर साहब ने बाद मे मेरी यह मूर्खता मुझे समझाई, परन्तु उसका मेरे दिल पर कुछ असर न हुआ। दूसरों की नकल करना मुझे कभी न आया।"

गुरुजन-भक्ति

ऐसा होते हुए भी मोहनदास मे गुरुजनों के प्रति आदर भाव व भक्ति थी। आजकल के विद्यार्थियों के समान वे उनका उपहास न उड़ाते थे, न ही उनकी आज्ञाओं की अवहेलना व उपेक्षा ही करते थे। बड़े-बूढ़ों की आज्ञा मानना वे अपना पवित्र कर्तव्य समझते थे। इसी समय दो अन्य घटनाये घटीं जो उनके हृदय पर सदा अङ्कित रहीं। उनके स्कूल का काम ही करने को पर्याप्त हो जाता और स्कूल की पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों के अध्ययन के लिए अवसर ही न मिलता। एक दिन उनके पिता जी 'श्रवण-पितृ-भक्ति' नामक नाटक ख़रीद लाए। बड़ी रुचि से मोहनदास ने उसे पढ़ा। इन्हीं दिनों शीशे मे चित्र प्रदर्शित करने वाले लोग भी आया करते। उसमे उन्होंने मातृ-पितृ-भक्त श्रवण का वह चित्र देखा जिसमे श्रवण अपने अन्धे माता-पिता को बहगी मे उठाए तीर्थ-यात्रा के लिए जा रहा है। उनके कोमल हृदय पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। श्रवण के निधन के समय उसके मात पिता के विलाप के सम्बन्ध मे पढ़कर तो मोहनदास की आँखों मे आँसू तक छलछला उठते। उनके मन मे सदा यही बात उठा करती कि मै भी श्रवण के समान क्यों न बनूं ?

महात्माजी इस प्रसंग में 'आत्म-कहानी' में लिखते हैं-'मेरे मन में यह बात उठा करती है कि मैं भी श्रवण की तरह बनूं। श्रवण जब मरने लगा तो उस समय का उसके माता पिता का विलाप अब भी याद है। उस ललित छन्द को मैं बाजे पर भी बजाया करता"।

उन्हीं दिनों एक नाटक कम्पनी वहाँ अपना अभिनय दिखाने आई। पिता की अनुमति से वे "हरिश्चन्द्र" नाटक का खेल देखने गए। उसका भी इनके चित्त पर स्थायी प्रभाव पड़ा। वे लिखते हैं—"इस नाटक को देखते मैं अघाता न था। बार-बार उसे देखने को मन हुआ करता। पर यों बार-बार कौन जाने देने लगा? जो हो, अपने मनमे मैंने इन नाटक को सैंकड़ों बार खेला होगा। हरिश्चन्द्र के सपने आते। यह धुन लगी कि हरिश्चन्द्र की तरह सत्यवादी सब क्यों न हों? यही धारणा होती कि हरिश्चन्द्र के जैसी विपत्तियाँ भोगना और सत्य का पालन करना ही सच्चा सत्य है।" ये थीं दो बचपन की प्रमुख घटनाएं जिन्होंने प्रौढ़ावस्था मे मोहनदास को महात्मा, सत्यव्रती, कष्ट सहिष्णु और तपस्वी बनाया। जब हरिश्चन्द्र पात्र के अभिनीत कष्टों ने बचपन मे ही मोहनदास के नवनीत कोमल हृदय को द्रवीभूत किया तब वयस्क होने पर हरिजनों, विधवाओं, भूखे, नंगों, के सच्चे कानों सुने आर्तस्वरों व आँखो देखे दृश्यों से भला उनका हृदय कैसे न पिघलता? सत्य का तत्कालीन अंकुर क्रमश, व्यवहार-जगि

से विकसित होते २ असंख्य अशान्ति की अग्नि में झुलसे प्राणियों के विश्राम के लिए बोधि वृक्ष बना। गुरुजन सेवा-भाव मातृभूमि की सेवा में विकास पा गया। पृथ्वी ही मातृभूमि बनी। उसकी सेवा ही गुरुजन सेवा भाव के अंकुर का विकास था।

'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या.'।

बालविवाह

हिन्दू जाति मे शताब्दियों से घातक बाल विवाह का प्रचार है। माता पिता या दादा दादी जराजीर्ण होने लगे कि पुत्र या प्रपौत्र की दुल्हन के मुखालोकन की लालसा बढ़ी। वर वधू वैवाहिक जीवन को सुचारु रुप से व्यापन करने योग्य हुए या नहीं इसका तो मानो विचार ही अप्रासंगिक वस्तु है। कट्टर धर्मी कुटुम्बों मे तो प्रायः ऐसा ही होता है। बिचारे मोहनदास सात ही वर्ष के होने पाये थे कि उनकी सगाई होगई। नन्हा सा अबोध मृग विवाह-पाश मे फाँसा जा रहा था। उसे उसके परिणाम व हानि-लाभ का क्या पता? सोचा विवाह ही तो होने जा रहा है। खूब बाजे बजेंगे, अच्छी चहल पहल रहेगी, दुल्हे पर ही सब की आँखें गडी रहेगी। १३ वें वर्ष की आयु के बाल दुल्हे का लगभग समान आयु की कस्तूर बाई के साथ पाणि-ग्रहण संस्कार हो गया। उस समय तो दुल्हा दुल्हन के लिये इस अभिनय का गुड्डे गुड़ियों के विवाह से अधिक महत्त्व नहीं था, पर धीरे २ तारुण्य ने बाल-दम्पती के शरीरों मे पदार्पण किया। पैतृक-संस्कारों के कारण अथवा उस समय की साधारण दाम्पत्य-जीवन की प्रथा की दृष्टि से कहिए, इनका जीवन पाणिग्रह-

णोपरान्त विषयासक्त सा होगया। अब तो स्कूल मे भी श्रीमती के ही स्वप्न आने लगे। कस्तूरबाई बहुत थोडी पढ़ी लिखी थी। मोहनदास की इच्छा हुई कुछ पढ़ा कर पत्नी के प्रति कर्त्तव्य पालन करे, पर स्त्री के सामने जाते ही गप्प शप्प को जी चाहता। आखिर 'मन की मनही मांही रही' वाली कहावत चरितार्थ हुई। कस्तूर बाई के भाल मे शिक्षा और मोहनदास के भाग्य मे पढ़ी लिखी धर्म पत्नी ही न लिखी थी।

विवाह के समय आप हाई स्कूल मे ही पढते थे। वडे भाई जिनका इनके विवाह के साथ ही विवाह हुआ था, इनसे ऊपर की कक्षा मे पढ़ते थे। विवाह के कुपरिणाम स्वरूप दोनों भाइयों का एक साल मारा गया। बड़े भाई तो उसके उपरान्त विद्यालय मे रह ही न पाये। मोहनदास ने महात्मा होकर इस बाल-विवाह के दुखद परिणाम पर आँसू बहाते हुए आत्म-जीवनी मे बाल-विवाह प्रकरण मे लिखा है, "जी चाहता है कि यह प्रकरण मुझे न लिखना पड़े तो अच्छा, परन्तु इस कथा मे ऐसी कितनी ही कडवी घूंटें पीनी पड़ेंगी। सत्य के पुजारी होने का दावा करके मैं इस से कैसे बच सकता हूँ?"

"यह लिखते हुए मेरे हृदय को बड़ी व्यथा होती है कि १३ वर्ष की अवस्था मे मेरा विवाह हुआ। आज मैं जब १२ १३ वर्ष के बच्चों को देखता हूँ और अपने विवाह का स्मरण हो आता है तब मुझे अपने पर तरस आने लगता है; और इन बच्चों को इस बात के लिए बधाई देने की इच्छा होती है कि वे मेरी

दुर्गति से अब तक बचे हुए हैं। तेरह वर्ष की आयु मे हुए मेरे इस विवाह के समर्थन मे एक भी नैतिक युक्ति मेरे दिमाग़ में नहीं आ सकती।"

अपने जीवन मे बाल विवाह के अनुभवों के आधार पर उन्होंने 'आत्म कहानी' मे हिन्दू जाति से इस कुप्रथा को समूलोन्मूलित करने की सदिच्छा से अनुभव पूर्ण तथा मर्मस्पर्शी शब्दो मे कहा है— "परमात्मा जाने विवाह के कारण कितने नवयुवकों को ऐसे अनिष्ट परिणाम भोगने पड़ते हैं। विद्याध्ययन और विवाह ये दोनो बाते हिन्दू समाज में ही एक साथ हो सकती हैं।"

पठन पाठन की ओर पुनः प्रवृत्ति

अब ये अपनी पढ़ाई की ओर विशेष ध्यान देने लगे थे। परिणाम स्वरूप मोहन दास अब भविष्णु, तीक्ष्ण बुद्धि गिने जाने लगे। इस सम्बन्ध में उनके अपने शब्द अधिक उपयुक्त होंगे। वे लिखते हैं, "मेरा अध्ययन चलता रहा। हाई स्कूल मे मैं बुद्धू नहीं माना जाता था। शिक्षकों का प्रेम सदा सम्पादन करता रहा। हर वर्ष माँ-बाप को विद्यार्थी की पढाई तथा चाल चलन के सम्बन्ध मे स्कूल मे प्रमाण-पत्र भेजे जाते। उनमे किसी बार मेरी पढाई या चाल चलन की शिकायत नहीं की गई। दूसरे दर्जे के बाद तो इनाम भी पाये और पाँचवे तथा छठे दर्जे मे तो क्रमशः ४) और १०) मासिक की छात्रवृत्तियाँ भी मिली थी।"

इन सब सामान्य बातों के अतिरिक्त इनकी पढ़ाई मे कुछ विशेपता थी जो महापुरुषो की पढाई मे हो सकती है । जो कुछ पाठ्य पुस्तक में जीवनोपयोगी बात पाते उसको जीवन का अग बनाए बिना आत्म-सतुष्टि न होती । "सत्य वद ।" "धर्म चर।" इस पाठ में युधिष्ठिर के कई दिवस लग गये, जब कि शेप शिष्य मंडला ने घड़ी भर में ही पाठ सुनाकर गुरु द्रोणाचार्य का साधुवाद लिया। पर पाठ मे अन्तर था। जब तक पठित पाठ को सक्रिय रूप देने की अभ्यासगम्य क्षमता उपलब्ध न हो तब तक वह याद ही कैसा ? इन छोटे २ और सरल 'सत्यवद' 'धर्मचर' पाठों का सुचारु रूप से स्मरण कर जीवन में ढालते चलना ही तो जगद्वन्द्य विभूतियों के व्यक्तित्व का रहस्य है। अस्तु, मोहन दास विद्यार्थी जीवन मे सदाचरण मे सदा जागरूक रहे । यदि कभी किसी अशुद्धि के लिए कोई अध्यापक उलाहना देते तो इनको बहुत चुभता। एक बार इन्हें किसी अशुद्धि पर दण्ड मिला। इससे इनको बहुत दुःख हुआ, फूट २ कर रोने लगे। "क्यों मोहन ! इतनी ही मार से घबरा गए।" "नहीं, दुःख पिटने का नहीं, वरन् इस बात का है कि मैं पिटने योग्य समझा गया ।" इस भावुकता का परिणाम यह होता कि वे अपने कार्य मे विशेप सतर्क और सावधान रहते। तब भी कभी २ कर्त्तव्य-निष्ठ मोहनदास को एक मे कर्त्तव्य-व्यस्तता के कारण, पर दूसरे मे स्वाभाविक शिथिलता के कारण अपमानित होना ही पडता था।

सातवीं कक्षा की एक घटना है। स्कूल में संघ व्यायाम अनिवार्य कर दिया गया था। इनकी उस में विशेष रुचि न थी। पिता की सेवा मे अधिक मन लगता था। एक दिन की बात है। प्रातःकालीन स्कूल था। सायं चार बजे व्यायाम करने जाना होता था। इनके पास घड़ी तो थी नहीं, आकाश भी मेघाच्छन्न था। समय का ठीक ज्ञान न रहा। इधर व्यायाम समाप्त हुआ तो इधर मोहनदास क्रीड़ांगण मे पहुँचे। अनुपस्थिति लग ही चुकी थी। दूसरे दिन प्रधानाध्यापक महोदय के अनुपस्थिति का कारण पूछने पर उन्होंने यथार्थ बात बता दी। "दूध का जला छाछ को भी फूंक फूंक पीता है।" न जाने कितने छात्र एक ही दिन मे पेशाब करने, पानी पीने आदि छोटी २ बातों में अध्यापक से झूठ बोलते रहते हैं। फिर भला उनको ही इनका कैसे विश्वास होता? कुछ अर्थ-दण्ड (जुर्माना) कर दिया। वह पहिला पाठ था जिससे उन्हें यह शिक्षा मिली कि सत्य का मार्ग ग्रहण करने वाले को सदा सावधान रहना चाहिए। कहां तक सावधान रह पाये, यह उनके भावी राजनैतिक तथा धार्मिक जीवन की घटनाएँ बतायेगी। सत्यव्रती महात्मा युधिष्ठिर से तो "अश्वत्थामा हतो नरो वा कुंजरो वा" कहलवा कर राजनीतिज्ञों ने काम निकलवा ही लिया था, पर मोहन दास ने सत्य का असिधारा व्रत ऐसी पूर्णता तक निभाया न कि व्रत ही टूटा न राजनैतिक सफलता मे बाधा ही पड़ी। न लोक गया, न परलोक।

अब रहिम मुश्किल पडी, गाढे दोऊ काम।
साचे का तो जग नहीं, झूठ मिले न राम॥

पर सत्यव्रती गाधी को लोक और परलोक इसी सत्य की छत्रछाया में प्राप्त हो गए।

अपनी खेलों से अरुचि के सम्बन्ध में गाधीजी आत्म-कथा में लिखते हैं—

"अब मैं देखता हूँ कि कसरत की वह अरुचि मेरी भूल थी। उस समय मेरे ऐसे भ्रान्त विचार थे कि व्यायाम का शिक्षा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। पीछे जाकर मैंने समझा कि व्यायाम अर्थात शारीरिक शिक्षा के लिए भी विद्याध्ययन में उतना ही स्थान होना चाहिए जितना कि मानसिक शिक्षा को है।"

व्यायाम के समान ही इनका सुलेख भी कुछ उपेक्षित सा रहा। प्रारम्भ में सुलेख की ओर विशेष ध्यान न देने के कारण इनका लेख बाद में सुधर न सका जिसके लिए वे सदैव बडा पश्चात्ताप करते रहे। वे सुन्दर लेख को पढाई की पूर्ति तथा अत्यावश्यक अग मानने लग गये थे। सबको सुलेख लिखने के लिए प्रेरित करते रहते थे।

सस्कृत और रेखागणित भी इन्हें कठिन लगने के कारण अरुचिकर प्रतीत होते थे। तथापि सौभाग्यवश सस्कृत छूटते र ही रह गई। भावी जीवन मे सस्कृत की अल्पज्ञता इनके पश्चा-त्ताप का कारण बनी रही। इस सम्बन्ध मे वे प्रतिपादन करते हैं—"सस्कृत मुझे रेखा गणित से भी अधिक मुश्किल मालूम पडी। रेखा गणित में तो रटने की कोई बात न थी, परन्तु सस्कृत मे, मेरी समझ से, सब रटना ही रटना था। यह विषय

भी चौथी कक्षा से आरम्भ होता था। आखिर छठी कक्षा में जाकर मेरा दिल बैठ गया। संस्कृत शिक्षक बड़े सख्त आदमी थे। विद्यार्थियों को बहुतेरा पढ़ा देने का लोभ उन्हें रहा करता। सस्कृत वर्ग व फारसी वर्ग मे एक प्रकार की प्रतिस्पर्धा रहती। फ़ारसी के मौलवी साहब नरम व्यक्ति थे। विद्यार्थी लोग आपस मे बाते करते कि फ़ारसी बड़ी सरल है और मौलवी साहब भी बडे भले आदमी है। विद्यार्थी जितना याद करता है उतने पर ही निभा लेते है। सहज होने की बात से मै भी ललचाया और एक दिन फ़ारसी के दर्जे मे जाकर बैठा। सस्कृत शिक्षक को इससे बडा दु.ख हुआ। उन्होंने मुझे बुलाया और कहा—"यह तो सोचो कि तुम किसके लड़के हो ? अपने धर्म की भाषा तुम नहीं पढ़ना चाहते ? तुमको जो कठिनाई हो सो मुझे बताओ। मैं तो सारे विद्यार्थियो को अच्छी सस्कृत पढ़ाना चाहता हूँ। आगे चल कर तो तुम्हे उसमे रस की घूटे मिलेगी। अतः तुमको इस प्रकार निराश न होना चाहिए। तुम फिर मेरी कक्षा मे आकर बैठो।" मैं लज्जित हुआ। इन शिक्षक के प्रेम की अवहेलना न कर सका। आज मेरी अन्तरात्मा मास्टर कृष्णशकर पाडे का उपकार मानती है, क्योंकि जितनी सस्कृत मैने उस समय पढ़ी थी, यदि उतनी भी न पढा होता तो आज सस्कृत शास्त्रों का जो आनन्द ले रहा हूँ वह न ले पाता। बल्कि मुझे तो इस बात का पछतावा रहा है कि मै अधिक सस्कृत न पढ़ सका, क्योंकि आगे चलकर मेरी यह धारणा हो गई कि किसी भी हिन्दू बालक को संस्कृत का अच्छा अध्ययन किये बिना न रहना चाहिए।"

कुछ संसर्गज-दोष

चरित्र के प्रति इतनी सतर्कता वर्तते हुए भी संगतिदोष से दो एक कालिमा की रेखाएं स्वच्छ जीवन-पट पर लग ही तो गईं। सच ही कहा है किसी अनुभवी कवि ने—

"काजर की कोठरी मे कैसो ही सयानो जाय,
एक लीक काजर की लागि है पै लागि है।"

किशोरावस्था मानव के लिए एक बहुत ही फूंक फूंक कर पॉव रखने की है। अनेक ऐसे मित्र मिल जाते हैं जो परित्याज्य तथा गोपनीय बातों मे रस लेते हैं। वे दूसरों को फसाने का भी भरसक प्रयास करते हैं। कुवृत्तियों को उद्दीप्त कर महान से महान् व्यक्तियों को भी पतनगर्त मे धकेलने में बहुधा सफल होते हैं। आखिर मानव मन ही तो है। जैसा वातावरण होता है उसका कुछ न कुछ प्रभाव तो धीरे से धीरे हृदय पर भी पड ही जाता है। शान्त समुद्र भी तो पूर्ण चन्द्र को देखकर धैर्य खो बैठता है, गर्जता और ताण्डवनृत्य करता है। अस्तु, मोहन दास की भी एक इसी प्रकार के व्यसनी बालक से मित्रता होगई। माता, बड़े भाई, तथा पत्नी ने पर्याप्त चेतावनियॉ दी, पर ये समझते थे कि साथी की बुराइयों का प्रभाव उन पर न पड़ेगा वरन् उल्टा उनका मित्र ही उनकी संगत से बुराइयॉ छोड़ देगा, पर ऐसा नहीं हुआ। स्वच्छ वस्त्र पर कोई भी रंग चढ सकता है, पर काले कम्बल पर तो काला ही रंग चढता है। यही दशा दुष्ट प्रकृति व्यक्तियों की है।

"सूरदास खल कारी कामरी, चढ़त न दूजो रंग"

ठीक आज के समान तब भी कुछ युवक दूषित अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से यूरोपियन रहन सहन तथा चाल ढाल के मोह जाल मे फँस जाते थे। साथी ने मोहनदास के आगे मांस, सिगरेट तथा मदिरा की प्रशंसा के पुल बाँधने प्रारम्भ किए। कहता—सभी हिन्दू चुपके २ इनका सेवन करते हैं। जिन जातियो से मासादि का धार्मिक रूप से निषेध नहीं, वे बलवान् है। मोहनदास के मझले बड़े भाई मांसाहारी थे। और थे भी मोहनदास से अधिक हृष्ट-पुष्ट और स्फूर्ति-सम्पन्न। पहिले तो इन बातों से मोहनदास को दु:ख होता, पर अभ्यस्त होने के उपरान्त कुछ प्रभाव पडना आरम्भ हुआ। बलवान् बनकर अंग्रेजों को भारत से निकालने की प्रारम्भ से ही उनमें बलवती भावना थी। साध्य उच्च व उदात्त होना चाहिए। साधन भले ही निम्नस्तर का हो। पतनाभिमुख मन बुद्धि-बल से आत्म-ग्लानि से बचने के लिए इसी प्रकार के तर्कवितर्क किया करता है। मोहनदास का दृढ़ हृदय दुर्बल होता गया। परिणाम स्वरूप मोहनदास से मासाहार की स्वीकृति मिल गई। दिन नियत हुआ। सब बातों को गुप्त रखा जाना परम आवश्यक समझा गया। भय था, पता लगने पर परम वैष्णव माता पिता को असह्य मानसिक व्यथा होगी। सुदूर नदी के पुलिन पर मास पकाने का निश्चय हुआ। अन्ततः वह प्रतीक्षित दिवस आ गया। नियत स्थान पर जा पहुँचे। उस समय उनके मनकी कुछ विचित्र ही दशा थी।

दैवी और दानवी वृत्तियों का भीम और दुर्योधन का तुमुल गदा-युद्ध छिड़ा हुआ था। एक ओर वीर बनने और सुधार करने की उत्कट इच्छा, तो दूसरी ओर तस्करवत् लुक छिप कर काम करने की झेंप। मॉस के साथ डबल रोटी का भी प्रबन्ध था। चिर प्रतीक्षित वेला आई। थाल परोसे। मॉस की डली थराते हाथों से मुख में डाली। मॉस चमड़े जैसा प्रतीत हुआ। रात भर नींद न आई। ऐसा लगने लगा मानों बकरी पेट में बे बे कर बोल रही है, पर सुधार के कामों में तो कठिनाइयॉ आया ही करती हैं। सुधार कोई पुष्प शय्या या पायस भोजन तो है नहीं। साथियों ने भी प्रोत्साहन दिया। यह क्रम आगे भी चलता गया। दानवी वृत्ति की विजय हुई। भीम की बजाय दुर्योधन की विजय की सभावना स्पष्ट होने लगी। इष्ट देव कृष्ण का रहस्यमय संकेत समय पर मिला। उत्तमसंस्कार-भीम के जी में जी आया। पट परिवर्तन का समय आया। माँस खाने के कारण मोहनदास की क्षुधा स्वभावत. कम हो जाती। पुत्र-वत्सला माता कारण पूछती। मातृ भक्त मोहन भला क्या कहता? क्या मॉस खाकर धोखा देना उचित है? और वह भी वृद्ध वृद्ध गुरु जनों को? विवेक जागा। अनेक मानसिक आघात प्रतिघात के पश्चात् निर्णय हुआ, माँसाहार माता पिता के स्वर्गवास तक स्थगित कर दिया जाय। उस दिन से मॉस छूटा। दुर्योधन का उरु भङ्ग हुआ। सुसंस्कार-भीम की विजय हुई।

चरित्रतरी मे जब तनिक भी व्यसन का छिद्र हो जाता है तब नाविक-आत्मा की उपेक्षा के कारण उस छिद्र में से अवगुण परम्परा का वारि उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रवेश पाता रहता है। तभी नीतिकार इस चरित्र छिद्र से विशेष सतर्क रहा करते हैं। छिद्रों मे अनर्थ सभावना बनी ही रहती है—

"छिद्रेष्वनर्थाः बहुली भवन्ति"।

मोहनदास की चरित्रतरी मे भी कुसंग के कील से अन जाने से कुछ छिद्र कर दिये गये थे। एक छिद्र मुंदा, पर पानी छिद्रान्तर से शनैः शनैः प्रविष्ट होने लगा। १२, १३ वर्ष की आयु मे चाचा आदि की देखा देखी सिगरेट की वान पड़ गई। पैसे न मिलते तो चाचा को अधजली सिगरेटे ही सुलगा लेते। पीछे नौकरों के पैसों पर भी चोरी छुपे हाथ साफ होने लगे। महान् अन्तर-आत्मा कोसती, पर उद्दण्ड मोहन कब किसी की सुनने वाला था। पर उस अदम्य आत्मा की महती विद्युत् शक्ति भी तो दमन नही की जा सकती थी। तुच्छ विषयेच्छावृत्ति और आत्मा का सघर्ष बढ़ा। जब शारीरिक वासनाओ ने नाकों दम कर दिये तो पवित्र आत्मा ने इस किराये के भवन को ही छोडने की ठानी। आत्मग्लानि अभिशाप कोटि तक पहुँची। आत्मा ने अनिष्ट संस्कारों का बोरी बिस्तर बाँध सायंकाल के समय इस मकान को छोड़ने का निश्चय कर लिया। धतूरे के बीज खोज लाए। मकान का एकान्त शान्त कोना ढूंढा। एक दो ही बीज खा पाये थे कि फिर शरीर मोह समा गया। मरना

सरल काम नहीं। भारत-स्वतन्त्रता नाव के भावी सफल नाविक बच गये। ईश्वर जो करता है भला ही करता है। आत्मा तो शरीर भवन से नहीं निकली, पर सिगरेट की कुटेव सदा के लिए निर्वासित हो गई।

चोरी की आदत रूपी विषलतिका की जड़े अभी दृढ-मूल थी। इनके मॉसाहारी मझले भाई ने व्यसनो मे फस लगभग २५) रुपये कर्ज लिये थे। उसके पास पहनने का एक सोने का कड़ा था। इन दोनों भाइयों ने सम्मति कर इसमे से एक तोला सोना निकाल कर कर्ज चुका दिया। कर्ज चुका, पर अन्तर-आत्मा की लताड असह्य होने लगी। पिता से यह भेद खोल देने का प्रस्ताव सामने आया। भय हुआ कहीं उनके दुर्बल रोग-ग्रस्त वृद्ध शरीर पर बुरा प्रभाव न पड़े। तथापि अन्तरात्मा की प्रबल प्रेरणा से बाध्य हो पिता को पश्चात्तापपूर्ण पत्र लिख ही दिया। पत्र पढते २ पिता की आँखों में अश्रुधारा बह चली। यह देख दोनों भाइयों के नयनो से भी गगा यमुना बहने लगी। इस गगा यमुना और सरस्वती के पवित्र सङ्गम पर उन तीनो के हृदय विशुद्ध हो गये। पिता अपराध स्वीकृति के कारण इनकी ओर से निशंक हो गये।

पिता की मृत्यु

मोहन दास की अवस्था अब सोलह वर्ष की हो चुकी थी। पिता भगन्दर रोग से बिछौने पर ही लेटे रहते थे। उनकी सेवा-शुश्रुषा मोहन दास की माता, सेवक तथा वे स्वय किया करते। 'श्रवण-नाटक' में श्रवण की पितृ-भक्ति

की इनके कोमल हृदय पर अमिट छाप पड़ ही चुकी थी। अब उन सब नाटकीय बातों ने मोहन दास के जीवन मे कहा तक समावेश किया है-अब इसकी परीक्षा का सुअवसर आ गया था। न जाने श्रवण का कथानक कितनों को घड़ी भर के लिये मन्त्र-मुग्ध सा करता रहा होगा। हो सकता है कइयों के जीवन परिवर्तित हुए हों। सत् साहित्य जातिका मगल साधन तो करता ही रहता है, परन्तु बालक मोहनदास ने जो इस से शिक्षा ली वह तो महापुरुषों के जीवन वृत्तांतों मे स्वर्णाक्षरों से लिखने योग्य है। हृदय रग मच पर तो 'श्रवणकुमार' के अकों का क्रमशः अभिनय होता ही रहता, व्यवहार जगत् मे वे सहर्ष सदैव पिता की सेवा में व्यस्त रहते। वे लिखते हैं—"मैं नर्स—परिचारक-का काम करता था। घाव को धोना, उसमें दवा डालना, जरूरत हो तो मरहम लगाना, औषध पिलाना और आवश्यकतानुसार घर पर दवा तैयार करना-मेरा विशेष का काम था। रात को सदा उनके पैर दबाना और जब तक वह कहें तब तक, अथवा उनके सो जाने के उपरान्त, जाकर सोना मेरा नियम था। वह सेवा मुझे अतिशय प्रिय थी। मुझे याद नही पड़ता कि किसी दिन मैंने इसकी उपेक्षा की हो। ये दिन मेरे हाईस्कूल के थे। इस कारण भोजन पाने से जो समय बचता वह या तो स्कूल मे या पिता जी की सेवा-शुश्रूषा मे जाता। जब वह कहते, अथवा उनकी मनोरुचि के अनुकूल होता, तब शाम को घूमने चला जाता।"

इनके पिता की बीमारी उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। वैद्यों ने अपने अपने लेप परखे, हकीमों ने मरहम पट्टियाँ आजमाईं,

साधारण नाई, हज्जामों आदि की घरेलू औषधियों का सेवन हुआ, अंग्रेज डाक्टरों ने भी अपनी बुद्धि लडाई। किन्तु कुछ आराम होते नजर न आया। अन्त में अंग्रेज डाक्टर ने नशतर का सुझाव रखा। पर उनके परिवार के मित्र वैद्य ने इसमें आपत्ति की। औषधियों का कोई लाभ न होने से तकलीफ और कमजोरी बढती ही गई। अब उन्होंने अधिक जीने की आशा छोड़ दी। इस अवस्था में भी ये शुद्धि का बड़ा ध्यान रखते थे। महात्मा जी ने लिखा है, "परन्तु इस समय पिता के स्नानादि के लिए बिछौने को छोडने का आग्रह देखकर मैं तो आश्चर्य चकित रहता और मन में उनकी प्रशंसा करता।"

अवसान की घोर रात्रि निकट आई। मोहनदास के चाचा भी राजकोट में ही थे। दोनों भाइयों में घनिष्ट प्रेम था। इनके चाचा जी दिन भर इनके पिताजी के बिछौने के पास ही बैठे रहते। सब को सोने के लिये भेज देते। किसी को स्वप्न में भी उनके पिता के उसी रात महाप्रयाण करने की आशंका न थी। परन्तु यह रात अन्तिम सिद्ध हुई। महात्माजी लिखते हैं—"चाचा जी ने मुझ से कहा- अब तुम जाकर सोओ, मैं बैठूंगा।" मैं प्रसन्न हुआ और सीधा शयनगृह में चला गया। पत्नी बेचारी भर नींद में थी, पर मैं उसे क्यों सोने देने लगा। जगाया। पांच सात ही मिनट हुए होंगे कि नौकर ने दरवाजा खटखटाया।

मै चौंका ! उसने कहा—"उठो पिता की दशा शोचनीय है।" बहुत खराब है—यह तो मैं जानता ही था, इसलिए 'बहुत खराब' का विशेष अर्थ समझ गया। एक बार ही बिछौने से हटकर पूछा—

"कहो तो, क्या बात है ?"

"पिता जी गुजर गये !" उत्तर मिला।

पितृ-भक्त मोहनदास को इस हृदय-विदारक समाचार से बहुत दुःख हुआ, पर अब पश्चात्ताप से बन ही क्या सकता था ? अपने आपको विषयान्धता के लिये भरसक कोसा। आत्म-ग्लानि और पितृ-वियोग-वेदना से हृदय दो टूक हुए जा रहा था। "हा कामान्ध ! तूने मुझे प्राण-तुल्य पितृ-चरण के अन्तिम दर्शनामृत से वंचित किया।" वे आगे लिखते हैं, "मै बहुत लज्जित हुआ, बड़ा खेद हुआ। पिता के कमरे मे दौड़ा गया। मैं समझा कि यदि मैं विषयान्ध न होता तो अन्त समय का यह वियोग मेरे भाग्य मे न होता। मैं अन्तिम घड़ियों तक पिता जी के पैर दबाता रहता। अब तो चाची के ही मुँह से सुना। "बापू ! तो हमे छोड़ कर चले गये।"

कुछ समय पश्चात् नवजात शिशु का देहावसान हो गया। छोटी अवस्था का विद्यार्थी पिता बने और पितृ-भक्त कहला कर भी कामान्ध हो, इन दो बातों की दुःखद स्मृति इनके हृदय को पुष्पान्त संस्थित कीटवत् अन्दर ही काटती रहती। इसके सम्बन्ध मे वह खेद के साथ लिखते हैं, "अपनी इस

दुहरी लज्जा प्रकरण को पूरा करने के पहिले यह भी कह देना है कि पत्नी ने जिस बालक को जन्म दिया, वह दो चार दिन ही मास लेकर चलता हुआ। दूसरा क्या परिणाम हो सकता था? इस उदाहरण को देखकर जो माँ बाप अथवा दम्पती चेतना चाहें वे चेतें।"

धार्मिक मनो-वृत्ति

सौभाग्य से मोहनदास को घर मे पूर्ण धार्मिक वातावरण मिला था। उनके पिता करा गाँधी जहाँ एक सत्यप्रिय, साहसी तथा उदार व्यक्ति थे, वहाँ उनकी माता पुतली बाई अत्यन्त धर्मनिष्ठ, सती साध्वी महिला थी। चान्द्रायण आदि व्रत, उपवास और पूजा-पाठ में इनकी विशेष रुचि रहती थी। वह बहुत ही दयालु, भावुक, कोमल प्रकृति और व्यवहारकुशल ललना थी। मोहनदास के ऊपर इन दोनों के विविध गुणों की अमिट छाप पड़ी। प्रारम्भ से ही प्रत्येक कार्य मे ये सत्य को अपना पथ प्रदर्शक तो बनाते ही थे, साथ ही इनकी दाई (रभा) ने बचपने मे ही 'रामनाम' का महत्त्व भी हृदयगम करा दिया। अपने बड़े भाई क कथनानुसार ये 'राम रक्षा' का पाठ भी किया करते थे। आदि मे इतने धर्म-श्रद्धालु न होते हुए भी घर के धार्मिक वातावरण के कारण धीरे २ इनके धार्मिक सस्कार चेतने प्रारम्भ हुए। 'राम नाम' तो आमरण इनका महान् आश्रय तथा पथ-प्रदर्शक रहा है। इनके पिता से लगभग सभी धर्मावलम्बी आ आकर विचार-विनिमय किया करते। इनमें सब धर्मों के प्रति श्रद्धा थी। मोहनदास के सस्कार भी धर्म-

सहिष्णुता की नींव पर पड़े। पौढ़ावस्था मे हम जो इनमें सर्व-धर्म समभावत्व पाते हैं, उसका बीज यहीं रोपा गया था। कबीरदास के गुरु मन्त्र-राम-के समान राम भी दाशरथी राम तक ही सीमित न रह कर सर्व व्यापी विष्णु का वाचक बन जाता है। सन्त कबीर के राम और रहीम मे जैसे कोई अन्तर नहीं रह गया था:—

"राम रहीम नहीं कछु भेदा"

उसी प्रकार इनके ईश्वर और खुदा में भी कोई अन्तर नहीं रह पाया था। अन्तर समझ कर लड़ने वाले अबोध मानवों के प्रति तो वे भगवान् से सुमति ही मागा करते थे।

"ईश्वर अल्लाह तेरा नाम, सबको सन्मति दे भगवान्"

उनके कीर्तन की प्रसिद्ध पक्ति है, जिससे उनकी सब हितैषिता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। अस्तु, राम, कृष्ण, अल्लाह, खुदा, गाड आदि को ये उस एक ही शक्ति के भिन्न नाम समझते थे। यही कारण है कि धर्मगत पक्षपात का इनमे अश भी न पाया जाता था।

(२)

विलायत में

विलायत की तैयारी

स० १८८७ मे मोहनदास ने मैट्रिक की परीक्षा पास की। घर वालों की इच्छानुसार भाव-नगर के सामलदास कालिज मे प्रविष्ट हुए। बम्बई की अपेक्षा भावनगर मे व्यय कम पड़ता था। यह सब कुछ तो हुआ पर

मोहनदास की पढ़ाई गृह-कार्य-व्यस्तता के कारण कुछ कच्ची रह गई थी। कालिज प्रविष्ट होने पर वहाँ के अध्यापकों के व्याख्यानों को हृदयङ्गम करने में कठिनाई अनुभव होने लगी। सौभाग्यवश इनके पिता के मित्र एवं कुटुम्ब के सलाहकार श्री भाव जी दूबे ने इन्हें विलायत भेज कर बैरिस्टरी पास करने का सुझाव रक्खा। मोहनदास कालिज की पढाई से सकुचाता ही था। विलायत का नाम सुनते ही बाछें खिल गई। इनकी अपनी इच्छा थी कि वहाँ से डाक्टरी पास करें। परन्तु कट्टर वैष्णव-कुलोद्भव युवक चीर फाड़ करता अच्छा लगेगा? इस विचार से बैरिस्टरी पास करने का ही निश्चय ठहरा। अब प्रश्न इनकी माता जी की सम्मति का था। बहुत समझाने बुझाने के उपरान्त चाचाजी की सहमति होने पर वह मोहनदास को विलायत भेजने के लिये राज़ी हो गई। पर वह कुछ अन्य प्रकार की ही माता थी। वह साधारण महत्वाकांक्षिणी माता के समान बैरि-स्टरी की बात से इतनी प्रसन्न न हुई जितनी सुदूर स्वेच्छाचारी देश में नवयुवक के चरित्ररत्नापहरण की आशंका से चिन्तित। इनके बहुत अनुनय-विनय तथा चरित्र-रक्षा का विश्वास दिलाने पर बोली, "मुझे तो विश्वास है, पर दूर देश में तेरा कैसे क्या होगा? मेरी तो बुद्धि कार्य नहीं करती। मैं बेचर जी स्वामी से पूछूँगी"।

बेचर जी स्वामी दूबे जी की तरह ही परिवार के हित-चिंतक और सलाहकार थे। इन से जब पूछा गया तो इन्होंने

मोहन की सहायता की। तथापि तीन प्रण तो लेने ही पड़े। इनका उल्लेख करते हुए महात्मा जी लिखते है—'तदनुसार मैंने एक मॉस, दूसरा मदिरा और तीसरा स्त्री-प्रसग से दूर रहने की प्रतिज्ञा ली। तब माता जी ने आज्ञा दे दी।" धन्य हैं ऐसी प्रतिज्ञाएँ कराने वाली माताएँ और प्रतिज्ञाएँ पालन करने वाले पुत्र! अन्तिम निश्चय चाचा जी के हाथ मे था। जब उन्हे पता चला कि मोहनदास ने विदेश मे सुचरित्र रहने की प्रतिज्ञा की है, तो वे भी उन्हें इंगलैंड भेजने के लिये राजी हो गये।

विलायत जाने के उपलक्ष्य मे हाईस्कूल के विद्यार्थियों ने एक सम्मेलन का आयोजन किया। राजकोट का एक युवक विलायत जा रहा है—इस पर सबको आश्चर्य हुआ। लज्जा-शील मोहन विदाई का उत्तर पहिले ही लिख कर ले गये थे। लेकिन उसे भली प्रकार पढ़ न सके। पढ़ते पढ़ते उनकी अर्जुन की 'गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्' वाली अवस्था हो रहा थी। सिर चकरा रही था और टागे लड़खडा रही थीं।

मोहनदास ने बड़े-बूढ़ों का आशीर्वाद प्राप्त किया और बड़े भाई के साथ बम्बई की ओर रवाना हो गये।

जाति बहिष्कार

माता की आज्ञा और आशीर्वाद प्राप्त कर कुछ महीने का बच्चा पत्नी के साथ छोड़ कर, उमग और उत्कण्ठा के साथ मोहन दास बम्बई पहुँचा। पर अभी भी देहली दूर थी। उनके बड़े भाई के मित्रों ने कहा—

जून जौलाई में हिन्दमहासागर मे तूफान रहता है। इतने मे ही किसी ने तूफ़ान मे एक जलयान के डूबने की बात तक कह डाली। 'एक करेला, दूजे नीम चढ़ा।' बडे भाई ने तुरन्त विलायत यात्रा नवम्बर तक के लिये स्थगित करने की आज्ञा दे दी। वे स्वयं तो राजकोट चले गये, पर अपने एक बहनोई के पास टके पैसे रख गये, ताकि समय आने पर मोहनदास के काम आयें।

बम्बई मे उनका पड़ाव लम्बा हो गया। इस अन्तर में उन को विलायत के ही स्वप्न आने लगे। होनहार बडी प्रबल है। कहीं से जाति-भाइयों को मोहन दास के विलायत जाने की गन्ध मिल गई। मोढ़ बनियों में से अभी तक कोई विलायत नहीं गया था। वस्तु-स्थिति की यथार्थता अवगत करने पर ही जाति मे महान् विस्फोट सा हो गया। इतना अनर्थ! इतना अधर्म! भला म्लेच्छों में जाकर भी कोई धर्म-परायण रह सकता है! पञ्चायत इकट्ठी हुई। मुखिया ने मोहनदास को पञ्चों का निर्णय सुनाया, "पञ्चों का यह मत है कि तुम्हारा विलायत जाने का विचार ठीक नहीं है। अपने धर्म में समुद्र यात्रा निषिद्ध है। फिर हमने सुना है कि विलायत मे धर्म का पालन नहीं हो सकता। वहा अंगरेज़ों के साथ खाना पीना पड़ता है।" मोहनदास का विनम्र उत्तर था—"मैं तो समझता हूँ विलायत जाना किसी प्रकार भी अधर्म नहीं। मुझे तो वहाँ जाकर केवल विद्याध्ययन ही करना है। फिर जिन बातों

का भय आप को है, उनसे दूर रहने की प्रतिज्ञा मैंने माता जी के सामने लेली है और मैं उन दोषों से दूर रहूँगा।"

मोहन के बहुत कुछ कहने सुनने पर भी जब पञ्चायत न मानी तो मोहन दास के पास पञ्चायत के निर्णय को अस्वीकृत करने के अतिरिक्त कुछ चारा न था। इस पर मुखिये ने आग बबूला हो अपना अन्तिम निर्णय घोषित कर दिया—"यह लड़का आज से जाति से बहिष्कृत समझा जाय। जो इस की सहायता करेगा अथवा इसे जहाज् तक पहुँचाने जायगा वह जाति का दोषी होगा और उस पर सवा रुपया जुर्माना किया जायगा।"

यह थी एक जाति के शिरोमणि विचारकों की व्यवस्था जिस से भारतीय नवयुवकों के लिये सदा के लिये विस्तृत कार्य क्षेत्र व उन्नति पथ का सर्वथा अवरोध कर दिया जाता रहा और उन्हें कूपमण्डूकवत् रखा जाता रहा। परिणामतः विश्व तो उन्नति की दौड़ में कहीं आगे निकल गया और हम अभी तक पूर्ण रूप से चेते भी नहीं।

इस निर्णय का तो युवक के मन पर इतना प्रभाव न पड़ा पर चिन्ता का यह नवीन विषय अवश्य बन गया। उन के मन में बार बार विचार उठता कि यदि बड़े भाई पर दबाव डाला गया तो ? और कहीं उनमें भी आत्म-निर्बलता आ गई, तो बना बनाया खेल ही न बिगड़ जायगा ? परन्तु सौभाग्य से बड़े भाई अपने निश्चय पर पर्वत की तरह दृढ़ रहे।

उन्होंने मोहन को लिख भेजा कि जाति बिरादरी वाले कुछ कहें, तुम्हें विदेश जाने के लिये मेरी आज्ञा प्राप्त है।

संयोगवश जूनागढ़ के एक वकील बैरिस्टर बनने के लिये विलायत जा रहे थे। सब मित्रों ने सलाह दी कि इस मौके से चूकना नहीं चाहिये। अतः बड़े भाई की अनुमति ले कर अठारह वर्ष के युवक मोहन ने जीवन की दूसरी सीढ़ी पर पदार्पण किया। आखिर बहुत प्रतीक्षा के बाद वह घडी भी आ गई जबकि ४ सितम्बर १८८८ ई० को उनके जहाज ने बम्बई बन्दरगाह छोड़ी।

विलायत में

जहाज छूटा। मोहन तो झेंपते थे। किस से कैसी बातें करते होंगे? कैसे खाते पीते तथा रहते सहते होंगे? ऐसे कौतूहल-पूर्ण प्रश्नों का पाठकों के हृदय मे आना साधारण सी बात है। इन का उत्तर वे स्वयं देते हैं। "जहाज मे समुद्र से मुझे कोई कष्ट न हुआ। पर ज्यों २ दिन जाते, मैं असमञ्जस मे पडता चला। स्टुअर्ट के साथ बोलते हुये झेंपता। अंग्रेजी मे बातचीत करने का अभ्यास न था। मजूमदार को छोड शेष सब यात्री अंग्रेज थे। उनके सामने बोलते न बनता था। वे मुझ मे बोलने की चेष्टा करते, तो उनकी बातें मेरी समझ मे न आतीं। और यदि समझ भी लेता तो यह न सूझता कि उत्तर क्या दूं। हर वाक्य बोलने से पहले मस्तिष्क मे जमाना पडता था। छुरी कांटे से खाना जानता न था। और यह पूछने का भी साहस न होता कि इनमें बिना मास की चीजें क्या क्या हैं? इस कारण मैं भोजन के मेज पर तो कभी गया ही नहीं।

केबिन कमरे में ही खा लेता। अपने साथ मिठाइयाँ आदि ले रक्खी थीं। प्रधानतः उन्हीं पर निर्वाह करता रहा। मजूमदार को तो किसी प्रकार का संकोच न था। वे सब के साथ हिलमिल गये। डेक पर भी जहाँ जी चाहा, घूमते फिरते। मैं सारा दिन केबिन मे घुसा रहता। डेक पर जब लोगों की भीड़ कम देखता, तब कहीं जाकर बैठ जाता। मजूमदार मुझे समझाते कि सबके साथ मिला जुला करो और कहते वकील वाग्मी होना चाहिये। वकील की हैसियत से अपना अनुभव भी सुनाते। कहते अँग्रेजी हमारी मातृ-भाषा नहीं, इसलिये बोलने में भूलें होना स्वाभाविक है। फिर भी बोलने का अभ्यास तो करना ही चाहिये, इत्यादि। परन्तु मेरे लिये अपनी लज्जाशीलता पर विजय पाना दुस्साध्य था।"

उन पर तरस खाकर एक भले अंग्रेज ने उनसे बात-चीत प्रारम्भ की। पता चला मोहनदास कट्टर शाकाहारी हैं। अँग्रेज ने कहा, यह प्रतिज्ञा विलायत जैसे शीतप्रधान देश मे निभानी कठिन है। पर मोहनदास को माता के सम्मुख किया प्रण पथविचलित न होने देता। उल्लिखित अँग्रेज महाशय की माँस खाने की अनुमति के सम्बन्ध में उत्तर मे प्रतिपादन करते हैं, "आपकी सलाह के लिये मैं आपका आभारी हूँ। पर मैंने अपनी माताजी को वचन दिया है कि मैं मांस न खाऊँगा। अतः मैं अब मांस नहीं खा सकता। यदि उसके बिना न रह सकते हों तो मै भारत वर्ष लौट आऊँगा, पर मांस कदापि न खाऊँगा।

बिस्के के उपसागर में भी उन्हें मांस या मदिरा की कोई आवश्यकता अनुभव नहीं हुई। उन्हें कहा गया था कि मांस न खाने का यत्र तत्र प्रमाण-पत्र भी लेते रहना। इस कारण मोहन ने अपने उस अंग्रेज मित्र से प्रमाण-पत्र के लिये प्रार्थना की। उसने उसे सहर्ष मांस न खाने का प्रमाण-पत्र दे दिया। पर बाद में जब उन्हें मालूम हुआ कि मांस खाते हुये भी लोग इस प्रकार के पत्र ले लिया करते हैं तो प्रमाण-पत्र संग्रह करना छोड़ दिया।

यात्रा पूरी हुई। साऊथैम्पटन बन्दर पर जहाज जा लगा। इंगलैण्ड की भूमि पर पैर रखते ही उन्होंने केवल अपने आपको ही श्वेत वस्त्र धारी पाया। इससे उन्हें अपनी विचित्रता के लिए शर्म सी लगी। पर उनके बसकी बात न थी। ट्रंकों की चाबियां वहां के रिवाज के अनुसार ग्रिंडले कम्पनी के गुमाश्ते ले गये थे।

इनके पास चार परिचय-पत्र थे—एक डाक्टर प्राणजीवन मेहता के नाम, दूसरा दलपतराम शुक्ल के नाम, तीसरा प्रिंस रणजीतसिंह के नाम और चौथा दादाभाई नौरोजी के नाम। डाक्टर मेहता और श्री शुक्ल ने इन्हें इंगलैण्ड के आचार-विचार एवं रीति-नीति से परिचित कराया। वहाँ जाकर मजूमदार और मोहनदास विक्टोरिया होटल में ठहरे। सर्वथा भिन्न वातावरण में मोहनदास का मन न लगा। वे लिखते हैं—"देश खूब याद आने लगा। माता का प्रेम साक्षात मूर्तिमान सा

दृष्टिगोचर होने लगा। रात होते ही रुलाई आरम्भ होती। घर की भांति भांति की बातें याद आतीं। उस तूफ़ान मे भला नींद क्यो आने लगी? फिर उस दुःख की बात किसी से कह भी नही सकता था। " .... लोग निराले, रहन-सहन निराला, मकान भी निराले और घरों मे रहने का ढंग भी निराला। फिर यह भी अच्छी तरह नहीं मालूम कि किस बात के बोल देने से अथवा क्या करने से यहाँ के शिष्टाचार का अथवा नियम का भग होता है। इसके अतिरिक्त खान-पान का परहेज़ अलग और जिन चीजों को मै खा सकता था वे रूखी-सूखी मालूम होती थीं। इस कारण मेरी दशा साँप छछून्दर जैसी हो गई। विलायत में अच्छा नहीं लगता था और देश को भी वापिस नहीं लौट सकता था। फिर विलायत आ जाने के बाद तो तीन वर्ष पूरे करके ही लौटने का निश्चय था।"

मातृ-भक्त मोहनदास को मास-परहेज़ सम्बन्धी प्रण के कारण से खान-पान की बड़ी ही असुविधा रही। नमक मिर्च मसाले आदि से रहित शाक-भाजी उन्हे न भाती। इनके मित्रो ने मासाहार का बलपूर्वक समर्थन किया, पर माता के सन्मुख की गई प्रतिज्ञा के सन्मुख वे सारे तर्क-वितर्क सुने भी अनसुने रह जाते। वे इनके स्वास्थ्य के लिये चिन्तित रहने लगे। मोहनदास अपनी आत्मा की रक्षा के लिये प्रभु से अभ्यर्थना करते, जैसाकि उन्होने आत्म-कहानी मे प्रतिपादन किया है—"मैं प्रतिदिन ईश्वर से अपनी रक्षा की याचना करता और रोज वह पूरी होती। मैं

यह तो नहीं जानता था कि ईश्वर क्या चीज है ? पर उस रम्भा की दी हुई श्रद्धा अपना काम कर रही थी।" यह है बाल्यकाल के अच्छे संस्कारों का वज्रलेप, जिसे हृदय से तर्क-वितर्क की बौछाड़ धो नहीं सकती । मोहनदास के मित्र सिगरेट मास मदिरा आदि का खुला सेवन करते, पर मोहन इनकी ओर तनिक भी आकृष्ट न होते। साथियों ने विवश हो इस सम्बन्ध में अधिक कहना अरण्य-रोदन समझा। अन्य सब व्यवहारिक बातों को मोहनदास सम्मान-पूर्वक ग्रहण करता।

इस प्रकार मोहन एक मास तक नौसिखिये के रूप मे रहे। अभी पढ़ाई का तो श्री गणेश भी न होने पाया था। खान-पान की असुविधा पर परस्पर विमर्श कर मित्र लोग इस परिणाम पर पहुँचे कि इन्हें होटल से स्थानान्तरित कर किसी भले परिवार का सदस्य बनाना चाहिये। श्री शुक्ल ने वेस्ट केंसिंगटन मे एक ऐंगलो-इंडियन के घर मे इनके ठहरने आदि का प्रबन्ध कर दिया। गृहस्वामिनी विधवा बुढ़िया स्त्री थी। इनके कथनानुसार निरामिष भोजन का प्रबन्ध करना भी बुढ़िया ने स्वीकार कर लिया। पर लज्जा शीलता ने वहाँ भी इनका ऐसा पीछा किया कि पेट भर खाना भी निश्चिन्तता से न खा पाए । "मैं वहाँ रहा, पर वहाँ भूखे ही दिन बीतते। बुढ़िया के यहाँ का खाना सब से स्वाद लगता। बुढ़िया बार बार पूछती, पर बेचारी करती क्या ? फिर मैं अभी तक शरमाता था। बुढ़िया के दो लड़कियाँ थीं। वे आग्रह करके कुछ रोटी ज्यादा परोस देती, पर

वे बेचारी क्या जानती थी कि मेरा पेट तो तभी भर सकता था, जब उनकी सारी रोटियॉ सफा कर जाता।"

धीरे धीरे लज्जा ने भी मोहन का साथ छोड़ना प्रारम्भ किया। अब वे वहॉ के वातावरण से परिचित से हो चले थे। इस का श्रेय श्री शुक्ल जी को ही है। धीरे धीरे उन्हे समाचार-पत्रों के पढ़ने मे आनन्द आने लगा।

अब खोज का विषय केवल निरामिप भोजनालय था। बहुत छानबीन के उपरान्त वह मिल गया। यहॉ इन्होंने "अन्नाहार का समर्थन" *नामक साल्ट की लिखी पुस्तक खरीद ली। इसके पढ़ने से जो इन पर प्रभाव पड़ा, वह उन्हीं के शब्दों मे इस प्रकार है—"साल्ट की पुस्तक पढ़ी। मेरे दिल पर उसकी छाप पड़ी। इसके पढ़ने के उपरान्त मैं सोच समझकर अन्नाहार का पक्षपाती होगया। माता जी के सामने अब की हुई प्रतिज्ञा मुझे विशेष आनन्ददायक होगई। अब तक जी मे यह मान रहा था कि सब लोग मासाहारी होजायॅ तो अच्छा। केवल सत्य की रक्षा और प्रतिज्ञापालन के कारण ही मासाहार से परहेज करता रहा। किंतु दिल में यह था कि मै किसी दिन आजादी से खुले आम मांस खाकर दूसरों को भी मास-भोजियों की टोली मे शामिल कर लूॅगा। पर अब से, उसके स्थान में स्वयं अन्नाहारी रहकर औरों को भी ऐसा बनाने की धुन मेरे सिर पर सवार होगई।

---

* Plea for vegetarianism

भोजन सम्बन्धी अन्य पुस्तकें

जैसा कि कहा गया है अन्नाहार पर साल्ट की पुस्तक ने इनकी श्रद्धा बढा दी। इस प्रकार की भोजन सम्बन्धी जो भी पुस्तक उन्हे मिलती, वे पढ छोडते। उनमे से एक हावर्ड विलियम्स की 'आहारनीति' नामक पुस्तक थी। उसमे भिन्न २ युग के ज्ञानियों, अवतारों, तथा पैगम्बर आदि के आहारों पर का वर्णन था। उसमे ईसा मसीह आदियों को निरामिषभोजी सिद्ध किया गया था। आरोग्य सबधी डा० एलिन्सन के लेख भी इस दशा मे विशेष रूप से सहायक निकले। उनका मुख्य विषय यह था कि औषध-सेवन की अपेक्षा भोजन मे हेर फेर रोगी के लिए विशेष उपयोगी होता है। इस स्वाध्याय का परिणाम यह निकला कि उनके जीवन मे भोजन के प्रयोग ने महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। प्रारम्भ मे इन प्रयोगों का उद्देश्य आरोग्य वृद्धि था और कालातर मे धार्मिक दृष्टिकोण सर्वोपरि हो गया।

एक ओर मोहनदास स्वास्थ्य के रहस्य को हृदयङ्गम करने मे तत्पर थे और दूसरी ओर उनके मित्र इनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे अधिकाधिक चिन्तित रहने लगे। उन्हे भय था कि विचित्र भोजन-पद्धतियों के अध्ययन व उन पर आचरण करने से कहीं इनका मस्तिष्क ही खराब न हो जाय। एक बार फिर उन्होंने मोहनदास को सुधारने का निष्फल प्रयास किया। पर यह अन्तिम था। अब वे भी निराश हो चले थे।

इस सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख विशेषरूप से उपयोगी तथा रुचिकर होगा। मोहनदास के एक मित्र ने उन्हें नाटक मे चलने को बुलाया। वहाँ जाने के पूर्व उनके साथ हावर्न भोजनालय मे भोजन करना था। यह होटल बड़ा ही विशाल था। देखते ही मोहनदास चकित हो गये। सैकड़ों लोगों के बीच इन दोनों मित्रों ने आसन जमाया। मित्र ने पहला खाना मगाया। वह 'सूप'—शोरबा था। अब तो मोहनदास लगे बगले झाँकने। मित्र से भी पूछते झेंपते थे। इन्होने परोसने वाले को निकट बुलाया। मित्र भाँप गये। चिढकर बोले—"क्या बात है ?" "मैं जानना चाहता हूँ कि इसमे मास है या नहीं ?" सकोच से मोहन ने उत्तर दिया। "ऐसा जगलीपन इस भोजनालय मे नहीं चल सकता। यदि तुमको अब भी यह चख-चख करनी हो तो बाहर जाकर किसी ऐरे-गैरे भोजनालय मे खालो और वहाँ बाहर मेरी राह देखो।" "बहुत अच्छा," कह कर मोहनदास वहाँ से निकल बाहर खडे हुए। यद्यपि उस रोज उन्हें भूखा रहना पडा, पर वे इस बात से प्रसन्न थे कि उनकी प्रतिज्ञा भग होने से बाल बाल बची। नाटक देखने गए, पर इस बात का प्रसग ही न चला। दो मित्रों मे यह अन्तिम मित्र-युद्ध था। परन्तु इसमे उनमे कोई कटुता न आई, क्योंकि मोहनदास समझता था कि मेरे मित्र सर्वथा मुझे उन्नत देखा चाहते हैं।

सभ्य वेश में

अब मोहनदास मे जंगलीपन को दूर करने की धुन सवार हुई। वे लिखते हैं "मैंने निश्चय किया कि मैं अपने को जंगली न कहलाने दूँगा। सभ्योंके लक्षण प्राप्त करूँगा और दूसरे उपायों से समाज मे सम्मिलित होने के योग्य वनकर अपनी अन्नाहार की विचित्रता को ढक लूँगा।"

अस्तु, "आर्मी और नेवी स्टोर" मे दूसरे कपडे वनवाए। उन्नीस शिलिंग लागत आई। उस समय के अनुसार यह वडी रकम थी। 'चिम्नी' टोपी लाए। इससे भी सन्तोष न हुआ। वाड स्ट्रीट मे शौकीन लोगों के कपड़े सिए जाते थे, वहाँ शाम के वस्त्र सिलवाए। वडे भाईसे सुनहरी चेन मगवाई। टाई वाधने की कला सीखी। लगभग दस मिनट वाल सवारने मे लगते। एक वालों के संवारने मे समय का अपव्यय, दूसरे उनके वाल कोमल न थे। उन्हें ठीक-ठीक सवार रखने के लिए ब्रुश के साथ प्रतिदिन लडाई होती। और टोपी पहिनते और उतारते हुए हाथ मानो माग सवारने के लिए सिर पर चढ़े रहते और बीच-बीच मे जब कभी समाज मे बैठे हो, तब माग पर हाथ फेर कर वालो को सवारते रहने की एक और सभ्य क्रिया होती रहती था, सो अलग। पर परिपूर्ण सभ्यता के लिए वेशभूषा ही पर्याप्त नहीं था। अतः प्रचलित रीति-रिवाजों के अनुसार मोहनदास को सभ्यता के अन्य प्रमुख अंगो—नाचना, गाना, वक्तृता देना तथा फ्रेंच भाषा पढना इत्यादि—की ओर भी ध्यान देना पडा। इन कलाओं मे अपनी प्रगति का दिग्दर्शन करते हुए

वे अपनी आत्म-कहानी मे लिखते हैं—"कोई तीन सप्ताह मे पाँच छः पाठ पढ़े होंगे। पर ठीक ठीक ताल पर पाँव नहीं पडता था। पियानो तो बजाता था, पर यह न जान पड़ता था कि यह क्या हो रहा है। 'एक, दो, तीन' का क्रम चलता,पर इनके बीच अन्तर तो वह बाजा ही दिखाता था, सो कुछ समझ न आता। तो अब ? अब तो बाबा जी की लंगोटी वाली कहानी बन गई। लंगोटी को चूहों से बचाने के लिए बिल्ली और बिल्ली के लिए बकरी – इस प्रकार बाबा जी का परिवार बढ़ा। मोचा वायेलिन सीख लूँ तो सुर और ताल का ज्ञान हो जावेगा। तीन पौण्ड वायेलिन खरीदने मे बिगड़े। उसे सीखने के लिए भी कुछ दक्षिणा दी। व्याख्यान कला के सीखने के लिए एक और शिक्षक का घर खोजा। उसे भी एक गिन्नी भेंट की। उसकी प्रेरणा से 'स्टैण्डर्ड एलोक्युशनिस्ट' खरीदा। पिट के भाषण से श्री गणेश हुआ।"

सभ्यता के उद्देश्य से ललित कलाओं का मोहनदास ने पर्याप्त पीछा किया, पर विशेष लाभ न देख उन्होंने सोचा "मुझे आजीवन तो इङ्गलैंड मे रहना नहीं, लच्छेदार भाषण देना सीख कर भी क्या करूँगा। नाच नाच कर मै सभ्य कैसे बनूँगा ? वायेलिन तो देश मे भी सीख सकता हूँ। फिर मै ठहरा विद्यार्थी, मुझे तो विद्या-धन बढ़ाना चाहिए। मुझे तो अपने व्यवसाय के लिये तैयारी करनी चाहिए। अपने सद्व्यवहार के द्वारा यदि मैं सभ्य समझा जाऊँ तो ठीक है, नहीं तो मुझे यह लोभ छोड़

देना चाहिए।" इस प्रकार लगभग तीन मास तक सभ्य बनने की सनक सवार रही। विवेक-बुद्धि जागी तो इन से पीछा छूटा। किन्तु कपड़ों की तड़क भड़क तो वर्षों ही चलती रही। इस प्रकार के निरर्थक झमेलों से मुक्ति पा वे सच्चे विद्यार्थी बनने का भरसक प्रयत्न करने लगे। नाच, गान आदि कलाओं में मोहनदास ने सिरखपाई की अवश्य, पर इसका यह अभिप्राय नहीं कि वे उच्छृंखल बन गए थे। इन सब बातों के साथ विवेकशीलता व विचारशीलता समुचित मात्रा में सम्मिश्रित थीं। एक एक पाई का हिसाब रखना, व्यय को यथाशक्ति घटाते जाना, इसके सम्पुष्ट प्रमाण हैं। उन्होंने १५ पोण्ड मासिक से अधिक व्यय न होने देने का निश्चय कर लिया था। प्रतिदिन के खर्च का व्योरा लिखा करते और सायंकाल मिला लेते। यह भावी जीवन में भी स्वभाव का एक अंग बन गया था। इस प्रकार व्यय यथासंभव उपायों से घटाया गया।

वे अपने रहन सहन पर कड़ी दृष्टि रखने लगे। खर्च को घटा कर आधा करने का विचार किया। गाड़ी पर, पार्टियों पर अनावश्यक व्यय हो ही जाता था। इनके अतिरिक्त परिवार में रहते हुए सप्ताह में एक दिन भोजन के लिए कुटुम्ब के लोगों को बाहर ले जाना शिष्टाचार-पालनार्थ आवश्यक ही था। गाड़ी भाड़े आदि का व्यय भी उन्हीं का होता। दो कमरों के स्थान पर एक ही से भी निर्वाह संभव था। परिणामस्वरूप कुटुम्ब के साथ रहना छोड़कर अलग रहने लगे। दो कमरे किराए पर लिए। एक सोने

और दूसरा बैठने के लिए। ये कमरे नगर के ऐसे स्थान मे थे जहां उन्हे अपने व्यवसाय पर जाने के लिये गाडी आदि का व्यय न करना पड़ता था। इस प्रकार उनका आधा व्यय बचा।

अब समय की बचत का प्रश्न सामने आया। वे जानते थे कि बैरिस्टरी परीक्षा के लिए बहुत पढ़ने की आवश्यकता नही। अतः वे कुछ निश्चिन्त से थे, परन्तु कच्ची अंग्रेजी उनको खलने लगी। अतः बैरिस्टरी के अतिरिक्त अन्य कुछ विषयों का अध्ययन का विचार हुआ। ओक्सफोर्ड या केम्ब्रिज विश्व-विद्यालय मे पढ़ने का विचार व्यय अधिक लगने के भय से छोड़ना पडा। अन्ततः मित्रो की सम्मति से लदन की प्रवेश-परीक्षा (Matriculation Examination) का प्रस्ताव पास हुआ। उसमे परिश्रम पर्याप्त करना पड़ता था। उन्हे विश्वास हो गया कि इससे सामान्य ज्ञान की भी वृद्धि हो जाएगी और व्यय भी थोड़ा करना पड़ेगा। विषयों को देख कुछ घबराए। लाटिन भी विषयो मे से एक विषय था। अनिवार्य रूप से लेना पड़ता था। पर मित्रों ने समझाया कि लाटिन का ज्ञान बैरिस्टरी के लिए विशेष रूप से सहायक होगा। दूसरे, रोमन ला की परीक्षा मे एक प्रश्न-पत्र तो केवल लेटिन भाषा का ही होता था। तीसरे, लेटिन जानने से अंग्रेजी भाषा पर भी अधिक अधिकार की सम्भावना थी। ये बाते उन्हे युक्तियुक्त लगी। सोचा यदि इतने लाभ है तो इसकी कठिनाई से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। फ्रैंच प्रारम्भ कर ही रक्खी थी। उसे भी पूरा करने का

निश्चय किया। अतः दूसरा विषय फ्रैंच लिया। एक प्राईवेट मैट्रिक्यूलेशन क्लास खुली थी, उसमें भरती हुए। परीक्षा प्रति छठे मास हुआ करती थी। कठिनाई से पॉच मास का समय मिला था। यह काम निस्सन्देह उनके सामर्थ्य से बाहर सा था, पर परिणाम यह हुआ कि सभ्य बनने की धुन मे वे अत्यन्त परिश्रमी छात्र बन गए थे। किन्तु अन्य विषयों के साथ लेटिन और फ्रैंच सम्भालना कठिन हो गया। परीक्षा दी, पर लेटिन मे रह गए। हतोत्साह न हुए। इधर लेटिन का स्वाद भी पड गया था। एक विषय रसायन-शास्त्र भी लिया था, किन्तु प्रयोगों के अभाव मे उसका बोझ उठाना मुश्किल था। इस बार प्रकाश (light) और उष्णता (Heat) ले लिये। यह विषय उन्हें सुगम प्रतीत हुए।

पुनः परीक्षा की तैयारी प्रारम्भ की। साथ ही जीवन मे सादगी की मात्रा को और अधिक बढ़ाते जाने मे प्रयत्नशील बने। अपने उदार भाई की आर्थिक कठिनाई का इन्हें सदा ध्यान रहता। ऐसे भी विद्यार्थी उन्होंने देखे जो उनसे भी अधिक सादे रहते थे। एक विद्यार्थी लदन के गरीब मुहल्ले मे प्रति सप्ताह दो शिलिंग देकर एक कोठरी मे रहा करता था, और लोकार्ट की सस्ती कोको की दुकान मे दो पैनी का कोको और रोटी खाकर निर्वाह किया करता था। उसकी स्पर्धा तो कठिन थी पर एक ही कमरे से निर्वाह सम्भव था। इससे ४ ५ पौंड की मासिक और बचत हो सकती थी। सादा रहन-सहन

सम्बन्धी पुस्तकें भी पढ़ी थीं। दो कमरे छोड़ कर ८ शिलिंग प्रति सप्ताह का एक कमरा किराए पर ले लिया। एक स्टोव खरीदा। प्रातःकाल का भोजन अपने हाथों से बनाने लगे। २० मिनट मे सब कुछ हो जाया करता। समय की बचत होने लगी। इस प्रकार वे प्रतिदिन एक से सवा शिलिंग मे भोजन करने लगे। जो समय बचता, वे उसे पढ़ाई में लगाते। दुबारा परीक्षा दी और उत्तीर्ण हुए। इस सादे जीवन से जो उन पर प्रभाव पड़ा, उसके सम्बन्ध मे वे लिखते हैं—

"पाठक यह न समझें कि इस सादगी से मेरा जीवन नीरस हो गया होगा। उल्टा इन परिवर्तनों से मेरी आन्तरिक और बाह्य स्थिति मे एकता उत्पन्न हो गई। कौटुम्बिक स्थिति के साथ मेरे रहन-सहन का मेल मिला। जीवन अधिक सारमय बना। मेरे आत्मानन्द का पार न रहा।"

सार्वजनिक जीवन

कहावत प्रसिद्ध है, "नया मुल्ला अल्ला ही अल्ला पुकारता है।" अन्नाहार विलायत मे एक नया धर्म ही था और विशेषतया मोहनदास जी के लिये। अतः नए मुल्ले के से उत्साह का नवयुवक मोहन मे आना कोई आश्चर्य की बात न थी। फलतः इन्होंने वेजवाटर मुहल्ले में अन्नाहारी मण्डल की स्थापना का प्रस्ताव रक्खा। उसी मे ही एडविन आर्नल्ड रहते थे। वे एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। वे उपाध्यक्ष, डाक्टर ओल्डफील्ड अध्यक्ष तथा मोहनदास जी मन्त्री निर्वाचित किए गए। कुछ समय पश्चात् इन्हों ने यह मोहल्ला छोड़ दिया और

उक्तमण्डल भी टूट गया। परन्तु इस छोटे और थोडे समय के अनुभव से उन्हें संस्थाओं की रचना और संचालन का कुछ अनुभव अवश्य प्राप्त हुआ।

इस मण्डल का कार्य सचालन करते समय मोहनदास को बहुशः अपनी लज्जा-शीलता से बहुत ही कच्चा होना पडता। बात भी सच थी। भला कोई किसी संस्था का मन्त्री हो और वह एक भी वाक्य खड़ा होकर न बोल सके? डाक्टर ओल्डफील्ड ने तो व्यंग्य कर ही दिया था, "तुम मेरे साथ तो अच्छी तरह बातें करते हो, परन्तु समिति की बैठक मे कभी मुँह तक नही खोलते। तुम्हें 'नर-मक्खी' क्यों न कहना चाहिए? वे नर-मक्खी का अभिप्राय समझ गए। वह कुछ काम नहीं करती—हा खाने पीने मे सबसे आगे होती है। समिति मे अन्यान्य सदस्य स्वमत प्रकाशन करते, पर मोहनदास चुपचाप बैठे रहते। इच्छा बडी होती कि कुछ बोलें, पर खड़े होने का उत्साह ही न होता। सभी सदस्य उन्हें अपने से अधिक योग्य दीखते। दूसरे, यदि किसी बात पर कुछ विचार-संग्रह भी करते तो इतने मे दूसरा ही विषय चल पडता।

विलायत मे इनकी यह झेंप अन्त तक चिरसंगिनी बनी रही। किसी से यदि मिलने जाते और वहाँ पाँच सात आदमी इकट्ठे पाते, तो मुँह पर ताला ही लग जाता।

एक बार वे वेंटनार गए। मजूमदार साथ था। वहाँ एक अन्नाहारी परिवार था। उसमे वे दोनो रहे। 'एथिक्स आव

डायट' के लेखक भी इसी बंदर मे रहते थे। वे उनसे मिले। अन्नाहार को प्रोत्साहन व उत्तेजना देने के निमित्त एक सभा का आयोजन किया गया। मोहनदास और मजूमदार को भी बोलने के निमित्त आमन्त्रित किया गया। स्वीकृति दे दी। मोहनदास अपना संक्षिप्त सा भाषण लिखकर ले गए। भाषण देने के लिए खड़े हुए ही थे कि आँखो के सामने अंधकार छा गया और हाथ पाँव कापने लगे। एक भी शब्द मुखारविन्द से न निकला। अन्ततः मजूमदार को ही उनकी लिखित वक्तृता पढ़कर सुनानी पड़ी।

इन्होने विलायत मे सार्वजनिक रूप से बोलने का एक और अंतिम प्रयत्न किया। विलायत से विदायगी के अवसर पर होबर्न भोजनालय में इन्होंने अपने अन्नाहारी मित्रो को निमन्त्रित किया। मांसाहार वाले भोजनालय मे अन्नाहार वाले भोजन के प्रवेश का विचार प्रचार की दृष्टि से सब ने सराहा। पश्चिम मे भोज एक कला का रूप धारण करता है। भोजन के अवसर पर विशेष सजावट और धूम धाम होती है। बाजे बजते और भाषण होते हैं। इस छोटे से भोज में भी वह सारा आडम्बर हुआ। अब इनके भाषण की बारी आई। थोड़े ही वाक्य तैयार किए थे। पर गाड़ी पहले ही वाक्य पर रुक गई और वे कुछ बोल न सके।

लज्जा शीलता से लाभ

झेंपूपने के कारण युवक गांधी को बड़ा लज्जित होना पड़ा। परन्तु इस आदत से अनेक

लाभ भी हुए। बोलने के सकोच से शब्दों की मितव्ययता की नींव पड़ी। विचारों पर सयम का अभ्यास दूसरा लाभ था। यही कारण था कि उन्हे भावी-जीवन मे भी कभी किसी लेख या भाषण के लिये पश्चात्ताप न करना पडता। प्रत्येक बात सुचिन्तित तथा उत्तरदायित्व-पूर्ण होती। यही कारण था कि उनके कुछ ही शब्दों का जो श्रोताओं पर प्रभाव पडता था, वह अच्छे वक्ता का भी नहीं पड़ता था। इस लिए भावी जीवन मे यह प्रारम्भिक झेंप इनके लिए पश्चात्ताप का कारण न रही। वे अत्युक्तिपूर्ण बातों से कोसों दूर रहते। इतने बार नियन्त्रण को भी पर्याप्त न समझ सप्ताह म एक दिन के मौनव्रत का और जीवन मे समावेश करना पड़ा, और सत्य के सच्चे पुजारी के लिए इतनी सावधानी रखना आवश्यक भी था। वे लिखते हैं, "इसी लिए यद्यपि आरम्भ मे मेरा झेंपूपन मुझे अखरता था, पर आज उसका स्मरण कर मुझे आनन्द होता है। यह झेंपूपन मेरी ढाल था। उससे मेरे विचारों को परिपक्व होने का अवसर मिला। सत्य की आराधना मे उसने मुझे सहायता मिली।"

धर्म-परिचय

विलायत मे रहते हुए, मोहनदास का दो थियोसोफिस्ट मित्रों से परिचय हुआ। ये दोनों सगे भाई और अविवाहित थे। वे उन दिनों एड्विन आर्नाल्डकृत गीता के अंग्रेजी अनुवाद को पढ रहे थे। मोहनदास को उन्हों ने अपने साथ सस्कृत मे गीता पढने को निमंत्रित

किया, ये लज्जित हुए, क्योंकि ये तो हिन्दी मे भी गीता न पढ़े थे। लज्जित होते हुए मोहनदास ने उत्तर दिया, "मै आप के साथ पढ़ने के लिये तैयार हूँ। यों तो मेरा सस्कृत का ज्ञान नही के बराबर है, फिर भी मैं यथाशक्ति सहायता देने का प्रयास करूंगा।" इस प्रकार प्रथम अवसर गीता अध्ययन का मिला।

ध्यायतो विपयान्पुसंः संगस्तेपूपजायते।
सगात्सञ्जायते कामः काम'त्क्रोधोभि जायते॥

क्रोधाद्भवति समोहः समोहात्स्मृतिविभ्रमः
स्मृतिभ्र शाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

'विषय का चिंतन करने से उसके साथ संग पैदा होता है। संग से काम की उत्पत्ति होती है। और काम से क्रोध, क्रोधसे संमोह, संमोह से स्मृति-भ्रम, और स्मृतिभ्रम से बुद्धि का' नाश होता है। अन्त मे पुरुष ही नष्ट हो जाता है।'

इन श्लोकों का उनके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। बस, कानों में उनकी ध्वनि गुञ्जायमान होने लगी। तब इन्हें विदित हुआ कि भगवद्गीता कैसा अमूल्य ग्रंथ है। बाद मे यही ग्रंथ इनका जीवन साथी बना रहा।

इन्ही भाइयों के कथनानुसार इन्हों ने आर्नाल्ड लिखित बुद्धचरित भी पढ़ा। इसमे इतना मन लगा कि समाप्ति तक पस्तक छोड़ने को ही जी न चाहा।

मैंचेस्टर के एक भले ईसाई से भी इनका परिचय हुआ। उन्हों ने ईसाई धर्म की चर्चा इनसे छेड़ी। इन्हों ने अपना

वैरिस्टर गाँधी

राजकोट का ईसाइयत के सम्बंध में जो अनुभव था कह सुनाया। वे लज्जित हुए। पर बाइबिल तो इनकी प्रेरणा से इन्हों ने पढ़ ही ली। अन्य प्रसंगों मे रुचि न हुई, पर हज़रत ईसा के गिरि-प्रवचन का प्रभाव बहुत गहरा हुआ। "जो तेरा कुड़ता मांगे उसे तू अंगरखा दे डाल। जो तेरे दाहिने गाल पर थप्पड़ मारे, उसके आगे बाया गाल कर दे"। इन वाक्यों ने तो अन्तरतम हृदय पर ही आसन जमा लिया। इस प्रकार भगवद्गीता, बुद्ध चरित और ईसा के वचनों का एकीकरण 'त्याग धर्म है' धर्म का यह सार उन्होंने निकाला।

बैरिस्टरी की परीक्षा

बैरिस्टर बनने के लिये दो बातें आवश्यक थीं। एक तो 'टर्म' पूर्ण करना अर्थात सत्रों मे आवश्यक हाज़िर होना, और दूसरे कानून की परीक्षा मे सम्मिलित होना। वर्ष मे चार सत्र हुआ करते थे। इस प्रकार के बारह सत्रों में उपस्थित होना अनिवार्य था। सत्र मे उपस्थिति का अभिप्राय भोजों मे उपस्थित रहना था। प्रति सत्र मे लगभग २४ भोज होते थे, जिनमे से छः मे उप-स्थिति आवश्यक होती थी। भोजन मे अच्छे, अच्छे पकवान होते और पेय उच्च कोटि की मदिरा। पर खाना या न खाना, इच्छा पर निर्भर था। हाँ, सारी कार्रवाई मे वहाँ अवश्य रहना पड़ता। इस का व्यय लगभग अढ़ाई, तीन शिलिंग आता। अधिकांश व्यय शराब का हुआ करता था। निरामिषभोजियों को रोटी तथा आलुओं के अतिरिक्त कुछ न

मिलता। इसके सबन्ध में महात्माजी लिखते हैं—"इस खाने पीने से वैरिस्टरी की पढ़ाई में क्या अन्तर पड़ता है यह न मैं तब समझ सका न अब। हा, ऐसा एक आवश्यक था कि जब ऐसे भोजों में बहुत ही थोड़े विद्यार्थी होते थे तब उनमे और 'बेचरों' में वार्तालाप होता और व्याख्यान भी दिये जाते थे। इसमे उन्हें व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हो सकता था। भली-बुरी, पर एक प्रकार की सभ्यता वे सीख सकते थे और व्याख्यान देने की शक्ति का विकास कर सकते थे। किन्तु मेरे समय मे तो यह सब असम्भव हो गया था। 'बेचर' तो दूर अछूत होकर वैठते थे। इस पुराने रिवाज का बाद मे कुछ भी अर्थ न रहा, फिर भी प्राचीनता-प्रेमी धीमे-इङ्गलैण्ड मे वह अभी तक चला आ रहा है।

कानून की पढ़ाई सुगम थी। बैरिस्टर विनोद मे 'डिनर वैरिस्टर" के नाम से पुकारे जाते थे। मोहनदास के काल मे दो परीक्षाएं होती थीं। रोमन लॉ की और कानूनो की। यह दो बार करके दी जाती थी। परीक्षार्थ पुस्तकें नियत थीं, पर उन्हे पढ़ता कोई नहीं था। रोमन लॉ के लिये तो छोटे छोते नोट्स मिलते थे। उन्हे दो तीन मास मे भी बहुत से छात्र तैयार कर परीक्षा दे देते थे। रोमन लॉ में ६५ से ६६ प्रतिशत छात्र उत्तीर्ण होते थे। परीक्षा वर्ष मे चार बार होती थी। ऐसी सुविधाजनक परीक्षा किसी को भी भार न लगती थी।

परन्तु सत्यनिष्ठ मोहनदास ने मौलिक पुस्तकें व्यय करके खरीदीं और पढ़ीं, क्योंकि ऐसा न करना आत्मप्रवञ्चना-मात्र था। रोमन लॉ को लेटिन में पढ़ने का निश्चय किया। विलायत की प्रवेश परीक्षा में लेटिन लेने का यहाँ पर्याप्त लाभ हुआ।

दक्षिण अफ्रीका में रोमन-डच्च ला प्रमाणभूत माना जाता था। उसे समझने में इन्हें जस्टीनियन का अध्ययन बड़ा ही उपयोगी सिद्ध हुआ।

इङ्गलैण्ड के कानूनों के अध्ययन में परिश्रम करने पर नौ मास लगे। उन्हें सुगम व दुर्बोध, रुचिकर व नीरस, सभी प्रकार की पुस्तकें पढ़नी पढ़ीं। अन्त में वे १८९१ में बैरिस्टर बने।

३

भारत को वापिसी तथा बैरिस्टरी के अनुभव

पहिले ही बताया जा चुका है कि १० जून १८६१ को यह बैरिस्टर हुये। इन्होंने ११ तारीख़ को ढाई शिलिग फीस देकर इङ्गलैड के हाइकोर्ट मे अपना नाम रजिस्टर कराया और १२ जून को इङ्गलैण्ड हिन्दुस्तान के लिये प्रस्थान किया।

समुद्र यात्रा

वंबई समुद्र क्षुब्ध था। अदन से ही समुद्र का यह हाल था सब लोग बीमार पड़ गए थे। केवल मोहनदास ही स्वस्थ थे। उन्होंने कुपित समुद्र के खूब भयावह दृश्य देखे और मनोविनोद किया। ये तूफ़ान देखने के लिये डेक पर रहते और भीग भी जाते। प्रातः भोजन के समय यात्रियों मे एक दो ही नज़र आते। इन्हें आटे की पतली लपसी की रिकाबी गोद मे रखकर खानी पड़ती थी। वे लिखते हैं—

"यह बाहरी तूफ़ान मेरे लिये तो अन्दर के तूफ़ान का चिन्ह मात्र था। परतु बाहरी तूफ़ान के रहते हुये भी मै जिस प्रकार अपने को शांत रख सकता था, वही बात आतरक तूफ़ान के सम्बन्ध मे नहीं कही जा सकती। जातिवालो का प्रश्न तो सामने था ही। बकालत की चिंता का हाल पहले ही लिख चुका हूँ। फिर ठहरा सुधारक। अतः मन मे कितने ही सुधार करने के

मनसूबे बांध रक्खे थे। उनकी भी चिंता थी। एक और अकल्पित चिंता खड़ी हो गई।

अपनी माता जी के दर्शन के लिये हृदय बड़ा लालायित हो रहा था। जब वे डोक पर पहुचे तो बडे भाई वहा विद्यमान थे। अपनी माता जी की मृत्यु का हृदय विदारक समाचार तो इन्होंने घर परही प्रथम बार सुना। इससे इनके हृदय पर बड़ा आघात पहुँचा। वे इसके सम्बन्ध मे लिखते है —

"मेरे कितने ही मनसूबे मिट्टी मे मिल गए। पर मुझे याद है कि इस समाचार को सुनकर मैं रोने चीखने नही लगा था। आसू तक को प्रायः रोक पाया था। और इस प्रकार का व्यवहार बनाए रक्खा, मानो माता जी की मृत्यु हुई ही न हो।"

रामचन्द्र भाई से परिचय

बम्बई आने पर डाक्टर मेहता ने (जिनसे विलायत मे परिचय हुआ था) अपने जिन सम्बन्धियों से मोहनदास का परिचय कराया था उनमे से उनके बडे भाई के दामाद रामचन्द भाई का उल्लेख करना यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है। गाधी जी के जीवन पर उनका बड़ा प्रभाव पडा था। वैसे रामचन्द्र भाई हीरे जवाहरात के व्यापारी थे। वह अच्छे कवि और अद्भुत स्मरण-शक्ति के धनी थे। पर व्यापार एव अन्य कार्यों मे लगे रहने पर भी उनमे आत्मदर्शन की तीव्र आकाक्षा थी, उनका शास्त्र-ज्ञान व्यापक और गम्भीर था।

उनका चरित्र निर्मल था। वे सदा अपने सम्बन्ध में जागरूक रहने का भरसक प्रयत्न करते। जो भी कुछ करते अना-सक्त भाव से। इनका मोहनदास के दास के हृदय पर गहरा प्रभाव पडा। वे लिखते हैं, "यहाँ तो इतना ही कहेना बस होगा कि मेरे जीवन पर गहरा प्रभाव डालने वाले तीन आधुनिक मनुष्य हैं,—रामचन्द्र भाई ने अपने सजीव संसर्ग से, टॉल्सटाय ने 'स्वर्ग तुम्हारे हृदय मे है' नामक पुस्तक द्वारा तथा रस्किन ने* 'अनटू दिसलास्ट,' सर्वोदय नामक पुस्तक से मुझे चकित कर दिया।"

संसार प्रवेश

बड़े भाई ने मोहनदास पर बड़ी बड़ी आशाएं बाध रक्खी थी। उन्हें धन यश, और ऊंचे पद का लोभ था। उदारता और उडाऊपन और भोलापन उनमें थे ही। इत्यादि बातों के कारण इनकी मित्र-सख्या का बढ़ना, स्वा-भाविक ही था। उन मित्रों की सहायता से वे मोहनदास को मुकदमे दिलवाने की भी आशा लगाए रहते थे। घर के व्यय मे वृद्धि हो गई थी क्योंकि विचार यही था कि एक बैरिस्टर की तो पर्याप्त आय हो जाएगी।

जाति वालों के दो दल बन गए थे। एक इनके बहिष्कार के पक्ष . रहने वाला और दूसरा वह जिन्होंने इन्हें गॅगा स्नान भोजनादि के उपरान्त पवित्रकर अपने में मिला लिया। बहिष्कृत दल के प्रति इनमे प्रतिशोध भावना न थी। प्रेमपूर्वक उनको

* The kingdom of good is within you

नमस्कार करते और शेष उदासीन रहते। स्वभावतः वे भी विरोध न करते। शनैः २ सहायता भी करने लगे।

पत्नी के साथ इनका व्यवहार अभी ऐसा नहीं सुधर पाया था कि उसकी अशिक्षितता दूर की जा सके। इसी प्रकार बच्चों की शिक्षा दीक्षा तथा भोजनादि में भी सुधार की आवश्यकता समझी।

इस प्रकार व्यय, विविधताएं तथा नवीनताएं बढ़ीं। घर में सफेद हाथी बधा। पर प्रश्न व्यय के पूरे करने का था। राजकोट में आते ही वकालत शुरू करने में हसी की आशका थी। भारतीय ला से इतने परिचित भी न थे। साथ झैप। अनुभवी वकीलों के सामने वाद विवाद मे कैसे ठहरते। फीस भी औरों से अधिक चाहिए थी। वैरिस्टर जो ठहरे।

बम्बई मे प्रैक्टिस

मित्रों की सम्मति के अनुसार बम्बई जाकर हाईकोट के अनुभव प्राप्त करने और भारतीय कानून का अध्ययन करने का निश्चय ठहरा। अन्ततोगत्वा युवक गाधी ने बम्बई को प्रस्थान किया।

घर बार रचा, रसोइया रक्खा। वह भाग्य से इन्हीं जैसा मिला। मोहनदासजी ने प्रश्न किया:—

"क्यों रविशकर, रसोई बनाना तो जानते हो, पर सध्या आदि भी कुछ याद है?"

"सध्या? साहब, सध्यार्पण तो हल और कुदाली है खटकरम। मै तो ऐसा ही बामन हूं। आप जैसे हैं, तो निबाह लेते है। नहीं तो खेती बनी बनाई है ही।"

ये समझ गए। सोचा रविशकर का शिक्षक भी मोहन दास को ही बनना पड़ेगा, आधा भोजन रविशंकर और आधा मोहनदास बनाते।

बम्बई मे एक ओर कानून का अध्ययन आरम्भ हुआ, और दूसरी ओर भोजन के प्रयोग। कानून का अध्ययन चला तो सही पर वैसा नही जैसा चलना चाहिए था, बहुत शिथिलता के साथ। बाहर बैरिस्टर की तख्ती टंगी रहती और अन्दर बैरिस्टर बनने की तैयारी चलती रहती। वे लिखते हैं कि इस समय मेरी दशा ससुराल मे आई नव-वधू के समान हो रही थी।

इसी समय एक मुकदमा आया। मामला 'स्मालकाज कोर्ट' मे था। पहले दलाल ने दलाली मॉगी; —इन्होंने इन्कार कर दिया। मामला आसान था, एक दिन से अधिक का काम उसमे न था। ३०) मेहनताना मिला और वह भी इनसे न सभल पाया। अदालत मे पैरवी करने गए। मुदालेह के वकील थे, इस लिए इन्हें जिरह करनी थी। पर जब ये खड़े हुए तो पांव कापने लगे, सिर घूमने लगा। ऐसा मालूम पड़ा मानो सारा न्यायालय घूम रहा है, यह बैठ गए। दलाल से कहा, —"तुम दूसरा वकील करलो।" उस दिन से इन्होने पूर्ण योग्यता प्राप्त किए बिना कोई मुकदमा हाथ में न लेने का निश्चय कर लिया। इधर यह दशा.

तो उधर व्यय में उत्तरोत्तर वृद्धि। इस प्रकार ५-६ मास के बाद फिर राजकोट लौट आना ही उचित समझा।

राजकोट में भी कार्यालय खोला। वहाँ कुछ सिलसिला चला और प्रार्थना-पत्र लिखने का काम मिलने लगा। इससे लगभग २००) मासिक की आय होने लगी। ये अर्जियां भी इनकी योग्यता के कारण नहीं, वरन् भाई के प्रभाव से मिलती थी।

दोरंगी व्यवहार नीति

जब इस प्रकार सिलसिला चल रहा था तो इन्हें पहली बार अंग्रेजों की दोरंगी व्यवहार-नीति का अनुभव हुआ और मन मे एक महान् आघात पहुचा। वस्तु-स्थिति यह थी कि पोरबन्दर के राणा साहब को गद्दी मिलने के पूर्व इनके भाई उनके मन्त्री और सलाहकार थे। उस समय कुछ राज्याधिकारियों ने इनके भाई पर यह दोषारोपण किया कि वे राणा साहब को उलटी सलाह देते रहे हैं। ये शिकायतें तात्कालीन पोलिटीकल एजेन्ट तक भी पहुँचाई गई और उसका रुख इनकी ओर से खराब हो गया। गाधीजी का इस साहब से विलायत मे गाढा परिचय हुआ था। इसलिए भाई ने चाहा कि वह जाकर मिलें। यह बात मोहनदास की रुचि के अनुसार न होते हुए भी ये चले ही गए। इस सम्बन्ध मे महात्माजी आत्म कहानी मे लिखते हैं "मैंने पुरानी पहिचान निकाली परन्तु मैंने देखा कि विलायत और काठियावाड मे भेद है। अधिकारी की कुर्सी पर डटे हुए साहब मे आकाश पृथ्वी का भेद था। पोलिटी-

कल एजेन्ट को मुलाकात की तो स्मृति आई, पर साथ ही अधिक रूखे भी हुए। उनकी वेरुखाई मे मैंने देखा, उनकी ऑखो में मैंने पढ़ा, उस परिचय से लाभ उठाने तो तुम यहॉ नहीं आये हो ? यह जानते समझते हुए भी मैंने अपना सुर छेड़ा। साहब अधीर हुए—"तुम्हारे भाई कुचक्री हैं। मै तुमसे ज्यादा बात सुनना नहीं चाहता। मुझे समय नहीं है। तुम्हारे भाई को कुछ कहना हो तो बाक़ायदा प्रार्थना-पत्र पेश करें। यह उत्तर काफी था। पर गरज बावली होती है। मै अपनी बात कहता ही जा रहा था ? साहब उठे।

"अब तुमको चला जाना चाहिए"।

—"पर मेरी बात तो पूरी सुन लीजिए"—मैंने कहा। साहब लाल पीले हुए—'चपरासी ! इसको दरवाजे के बाहर कर दो। 'हुजूर' कहता हुआ चपड़ासी दौड़ा आया। मेरा चर्खा अभी तक चल ही रहा था। चपड़ासी ने मेरा हाथ पकड़ा और दरवाजे से बाहर कर दिया। साहब चले गये, चपड़ासी भी चला गया। मै भी चला, झुंझलाया, खिसियाया।

लौटकर मैंने साहब को चिट्ठी लिखी। —"आपने मेरा अपमान किया है, चपरासी से मुझ पर हमला कराया है। मुझसे क्षमा मॉगो, नहीं तो बाकायदा मानहानि का दावा करूँगा।" पत्र भेज दिया। थोड़ी ही देर मे साहब का सवार उत्तर ले आया।

"तुमने मेरे साथ असभ्यता का बर्ताव किया। तुमसे कह दिया था कि जाओ, फिर तुम न गये। तब मैंने जरूर

चपरासी को कहा कि इन्हें दरवाजे के बाहर कर दो। चपड़ासी के ऐसा कहने पर भी तुम बाहर नहीं गए। तब उसने हाथ पकड़ कर तुम्हे दफ्तर से बाहर कर दिया। इसके लिए तुमको जो कुछ करना हो, शौक से करो।"

इस उत्तर को जेब मे रख, अपना सा मुँह ले मैं घर आया। भाई से सारा हाल कहा। इन्हें दुख हुआ, पर वह मेरी सान्त्वना क्या कर सकते थे? वकील मित्रों से सलाह ली—क्योंकि स्वय मैं दावा दायर करना कहाँ जानता था? उस समय सर फिरोज् शाह महता अपने किसी मुकदमे मे राजकोट आये थे। मुझ जैसा नया बोरिस्टर भी भला उनसे मिल सकता था? जिस वकील की मार्फत वह आये थे, उनके द्वारा कागज पत्र में जरूर सलाह ली। उत्तर मिला कि गाधी से कहना—"ऐसी बातें तो तमाम वकील वैरिस्टरों के अनुभव मे आई होंगी। तुम अभी नये आये हो।

तुम पर अभी विलायत की हवा का प्रभाव है, तुम ब्रिटिश अधिकारों को पहिचानते नहीं। यदि तुम चाहते हो कि सुख से बैठकर दो पैसे कमाले तो उस चिट्ठी को फाड डालो और अपमान का यह घूट पी डालो। मामला चलाने मे तुम्हें एक कौड़ी न मिलेगी और मुफ्त मे बरबादी हाथ आवेगी। जिन्दगी का अनुभव तो तुम्हें अभी मिलना बाकी है।"

इस घटना तथा इन सब शिक्षा प्रद बातों का गाधी जी पर जो प्रभाव पडा वह ध्यान देने योग्य है — "मुझे यह शिक्षा

विष की भांति कडवी लगी। परन्तु इस कड़वे घूंट को पीये विना चारा न था। मै इस अपमान को भूल तो न सका; पर मैंने उसका सदुपयोग किया—अब से मै अपने को ऐसी दशा मे न डालूंगा। इस प्रकार किसी की सिफ़ारिश आगे न करूंगा। इस नियम का भंग मैंने कभी न किया। इस आघात ने मेरे जीवन की दिशा बदल दी।"

दक्षिण अफ्रीका को

इधर यह घटना हुई तो उधर काठियावाड़ का वातावरण इन्हें खलने लगा। वहाँ भीतर २ नाना प्रकार के षड्यन्त्र चला करते। साहब से लड़ाई होने के उपरान्त तो वकालत का द्वार भी बन्द हो गया। अधिकतर मुकदमो की संख्या इन्हीं के न्यायालय की थी। भाई इनके लिये नौकरी की खोज मे व्यस्त थे इसी अवसर पर इनके भाई के पास पोरबन्दर की एक मेयन दुकान का संदेश आया "दक्षिण अफ्रीका मे हमारा व्यापार है। हमारी दुकान बड़ी है। वहाँ हमारा एक मुकदमा चल रहा है। चालीस हज़ार पौंड का दावा है। मामला बहुत दिनों से चल रहा है। हमारी ओर से बड़े बड़े और अच्छे २ बैरिस्टर हैं। यदि अपने भाई को वहाँ भेज दें तो हमे भी सहायता मिलेगी और उनकी भी कुछ सहायता हो जाएगी। वह हमारा मामला हमारे वकीलों को अच्छी तरह समझा सकेगे। इसके अतिरिक्त नए देश की यात्रा भी होगी।" इस सम्बध में दादा अब्दुल्ला के साझी अब्दुल करीम से मिलने पर पता चला कि अधिक परिश्रम का कोई काम नहीं है। आने

जाने का प्रथम दर्जे का किराया मिलना तो निश्चित ही था। घर के बगले में रहने को स्थान मिलेगा, खाना पीना भी साथ ही मिलेगा। इन सब सुविधाओं के अतिरिक्त १०५ पौंड दिए जायेंगे। एक वर्ष का कार्य है। मोहनदास ने सहर्ष अपनी स्वीकृति दे दी और पहले दर्जे का टिकट ले अप्रैल मास १८९३ में जहाज द्वारा बड़ी उमग से अपना भाग्य परखने के लिए दक्षिण अफ्रीका को प्रस्थान किया।

दक्षिण अफ्रीका में

पहिला बदर लामू मिला। कप्तान शतरंज का प्रेमी था पर वह अभी नौसिखिया था। लगभग तेरह दिनों मे वहाँ पहुँचे। मार्ग में कप्तान से घनिष्ट परिचय हो गया था। उसको अपने से कमजान-कार खिलाड़ी की आवश्यकता थी। और गाधी जी को खेलने के लिए बुला लिया करता था। इन्होंने शतरज का खेल कभी न देखा था। हाँ इसके सम्बध में सुन पर्याप्त रक्खा था। खेलने वाले कहा करते कि इसमें बुद्धि का बड़ा उपयोग करना पड़ता है। कप्तान ने कहा,—"मैं तुम्हें सिखादूँगा।" धैर्य शील होने से गाँधी जी कप्तान को मन चाहे ही शिष्य मिले। गाँधी जी हारते ही रहे।

लामू बदर आया। जहाज तीन-चार घण्टे ठहरने वाला था। गाँधी जी बन्दर देखने उतरे। कप्तान भी गया था। पर उसने इन्हें शीघ्र लौटने के लिए कहा था—'यहाँ का बदर दगाबाज है। तुम जल्दी आ जाना।'

गाँव छोटा सा था। वहाँ डाक घर में गए। कुछ भारत-

वासी मिले। प्रेमपूर्ण वार्तालाप हुआ। डेक के अन्य यात्री भी वहाँ आ गए थे। उनसे परिचय हो गया था। वे भोजनार्थ उतरे थे। गाँधी जी उनकी नाव पर जा बैठे। नाव जहाज़ के पास पहुँच कर फिर लौट आती। जहाज़-प्रस्थान की प्रथम सीटी बजी। अब तो गाँधीजी घबराए। कप्तान देख ही रहा था। उसने जहाज़ ५ मिनट रोकने के लिए कहा। जहाज़ के पास एक मछवा था। उसे १०) देकर एक मित्र ने उन्हें नाव में से उठवाया। जहाज़ की सीढ़ी ऊपर चढ़ चुकी थी। रस्सी के बल से ऊपर खींचे गए। शेष यात्री रह गए।

लामू से मोंबासा और वहाँ से जंजीबार पहुँचे। जंजीबार में बहुत ठहरना था—८ या १० दिन यहाँ से नए जहाज़ में बैठना था।

कप्तान से प्रेम बढ़ता गया।

कप्तान और उनके एक मित्र के साथ उनके बुलाने पर सैर करने के लिए गए। इस भ्रमण के रहस्य का तनिक भी इन्हें पता न था। न ही कप्तान समझता था कि ऐसी बातों से ये परहेज करते हैं। हबशी औरतों के मुहल्ले में जा पहुँचे। एक दलाल उन्हें वहाँ ले गया। तीनों एक एक कमरे में प्रविष्ट हुई। बिचारे साधुवृत्ति के मोहन तो सिकुड़कर ही कमरे में बैठे रहे। वे लिखते है, "उस बेचारी बाई के मन मे क्या-क्या विचार आये होंगे, यह तो वही जानती होगी। थोडी देर मे कप्तान ने आवाज़ लगाई। मैं तो जैसा अन्दर घुसा था, वैसा ही वापस बाहर आ

गया। यह देख कर कप्तान मेरा भोलापन समझ गया। इनके जीवन में इस प्रकार की यह तीसरी परीक्षा थी। इस बचाव में भी वे ईश्वर का ही हाथ मानते थे और इस घटना से उनमें ईश्वर विश्वास और भी दृढ़ होगया। "सो मेरे इस बचाव के लिए तो एकमात्र ईश्वर का ही उपकार मानना चाहिए। इस घटना से ईश्वर पर मेरी आस्था दृढ़ हुई और झूठी लज्जा छोड़ने का साहस भी कुछ आया।"

जंजीबार में मोजीबिक और वहाँ से लगभग मई के अंत तक नेटाल के डरबन बंदर पर पहुँचे। इन्हें लिवाने के लिये अब्दुल्ला सेठ आए थे। जहाज़ से उतरते ही लोगों के व्यवहार को देख समझ गये कि यहाँ हिंदुस्तानियों का विशेष आदर नहीं। अब्दुल्ला तो ऐसी बातों के थे ही आदी अस्तु, अब्दुल्ला सेठ के बंगले पर गए। सेठ ने अपने कमरे के पास ही इन्हें कमरा दिया।

प्रथम रसास्वादन दूसरे या तीसरे दिन की बात है कि अब्दुल्ला सेठ इन्हें डरबन की अदालत दिखाने ले गये और कई व्यक्तियों से इनका परिचय कराया। अदालत में अपने वकील के पास इन्हें बिठाया। मजिस्ट्रेट इन्हें कुतूहल-पूर्ण दृष्टि से देखता रहा। फिर इनसे पगड़ी उतारने को कहा। आत्माभिमानी मोहन ने इन्कार किया और अदालत से बाहर चले आए। यहाँ भी इनके भाग्य में लड़ाई ही बदी थी।

पगड़ी वाली घटना को लेकर इन्होंने समाचार पत्रों में आँदोलन प्रारम्भ कर दिया। दक्षिण अफ्रीका मे उन दिनों भारत-

वासियो को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। अब भी दशा में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। गाधो जो को भी अग्रेज 'कुली बैरिस्टर' कहते। इस घटना को लेकर पत्रो में खूब चर्चा होने लगी। किसी ने तो इस पक्ष की पुष्टि की और किसी ने भरपेट निन्दा की। इतना अवश्य हुआ कि सारे दक्षिण अफ्रीका में विद्युद्गति से इनकी ख्याति का प्रसार होने लगा।

परिचय

ज्यों ज्यों समय बीतता गया, लोगों से परिचय बढ़ता गया। डरबन के ईसाई भारतीयों के सम्पर्क में आये। डरबन न्यायालय के दुभाषिया श्रीपाल रोमन (जो कैथोलिथे) तथा प्रोटेस्टेण्ट मिशन के शिक्षक गाउफ्रे से भी इनका परिचय हुआ। फारसी रुस्तम जी और आदम जो मिया खान से भी जान पहिचान होगई। ये लोग पहले आपस में बहुत कम मिलते थे, पर इनके प्रयत्न से अब अक्सर मिलने लगे थे। इसी समय दुकान के वकील का एक पत्र पहुँचा कि मुकदमे की तैयारी के लिए या तो अब्दुल्ला सेठ का प्रिटोरिया जाना आवश्यक है या किसी दूसरे व्यक्ति को भेजना चाहिए। अब्दुल्ला सेठ ने गुमाश्तों को बुलाकर कहा कि गाँधी को सब मामला समझा दिया जाय। मामला समझकर इन्होने प्रिटोरिया की तैयारी की। जाते समय अब्दुल्ला को इतना अवश्य सुझा गए कि यदि सम्भव हुआ तो मै समझौता कराने का प्रयत्न करूंगा। क्योंकि आप दोनों के निकट के सम्बन्धी है अतः व्यर्थ वकीलो के घर भरना उचित नहीं। एक वकील के मुख से ऐसी बाते

सुन इनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। पर चिरपरिचय से ये गॉधी के स्वभाव से परिचित हो गए थे। इस प्रकार आवश्यक बातें समझा बुझा गॉधी जी को प्रिटोरिया को चलता कर दिया और उनके ठहरने आदि का प्रबन्ध करने के लिए अपने वकील को लिख दिया।

गाडी मे अपमान

मोहनदास जी के लिए रेल की प्रथम श्रेणी का टिकट लिया गया। सोने के लिए एक और टिकट लेना पडता था। अब्दुल्ला सेठ के बहुत कहने सुनने पर इन्होंने सोने का टिकट भी लेलिया। अब्दुल्ला सेठ ने चलते हुए चेताया। देखना, यह हिन्दुस्तान नहीं है। खुदा की मेहरबानी है। आप पैसे का ख्याल न करना और अपने आराम का सब इन्तजाम कर लेना रात को ६ बजे ट्रेन नेटाल की राजधानी 'मेरित्सबर्ग' पहुँची। उस समय की घटना का वर्णन महात्मा जी न आत्म-कहानी मे इस प्रकार से दिया है "यहाँ सोने वाले को बिछौने दिए जाते है। एक रेलवे नौकर ने आकर पूछा—"आप बिछौना चाहते है?" मैने कहा—"मेरे पास मेरा बिछौना है।" वह चला गया। इस बीच एक यात्री आया। उसने मेरी ओर देखा मुझे हिंदुस्तानी देखकर चकराया। बाहर गया और सहसा एक दो कर्मचारियों को लेकर आया। किसी ने मुझसे कुछ न कहा। अत को एक अधिकारी आया। उसने कहा—'चलो, तुमको एक दूसरे डब्बे मे जाना होगा।' मैंने कहा—'पर मेरे पास पहले दरजे का टिकट है।' उसने उत्तर

दिया—'परवा नहीं, मै तुमसे कहता हूँ कि तुम्हें आखिरी डब्बे मे बैठना होगा।' 'मै कहता हूँ कि मै डरबन से इसी डब्बे में बिठाया गया हूँ और इसी में जाना चाहता हूँ।'

अफसर बोला—'यह नही हो सकता। तुम्हें उतरना होगा, नहीं तो सिपाही आकर उतारेगा। मैने कहा—'तो अच्छा, सिपाही आकर भले ही मुझे उतारे, मैं अपने आप न उतरूंगा।' सिपाही आया। हाथ पकड़ा और धक्का मार कर मुझे नीचे गिरा दिया। मेरा सामान नीचे उतार लिया। मैंने दूसरे डिब्बे मे जाने से इन्कार किया। गाड़ी चल दी। मैं वेटिंगरूम मे बैठा। हैंडबेग अपने साथ रक्खा। दूसरे सामान को मैने हाथ न लगाया। रेलवे वालों ने सामान कहीं रखवा दिया। मौसम जाड़े का था। दक्षिणी अफ्रीका मे ऊंची जगह पर बड़े जोर का जाड़ा पड़ता था। मेरित्सबर्ग ऊंचाई पर था। इससे खूब जाडा लगा। मेरा ओवरकोट मेरे सामान मे रह गया था। सामान मांगने की हिम्मत न हुई कि कहीं फिर बेइज्जती न हो। जाड़े मे सिकुड़ता और ठिठुरता रहा। कमरे मे रोशनी थी। आधी रात के समय एक मुसाफिर आया। ऐसा जान पड़ा मानो वह कुछ बात करना चाहता हो, पर मेरे मन की हालत ऐसी न थी कि बातें करता। मैंने सोचा मेरा कर्त्तव्य है—"या तो मुझे अपने अधिकारों के लिये लड़ना चाहिये, या वापिस

लौट जाना चाहिए। अथवा जो बेइज्जती हो रही है, उसे सहन कर प्रिटोरिया पहुचू और मुकदमे का काम समाप्त कर देश चला जाऊं। मुकदमे को अधूरा छोडकर भाग जाना तो कायरता होगी। मुझ पर जो बीत रही है वह तो ऊपरी चोट है, वह भी भीतर के महा रोग का बाह्य लक्षण है। वह महारोग है—वर्ण-द्वेष। यदि इस गहरी बीमारी को उखाड़ फैंकने की सामर्थ्य हो तो उसका उपयोग करना चाहिये। इसके लिए जो कुछ कष्ट दुःख सहन करना पड़े सहना चाहिए। इन अन्यायों का विरोध उसी हद तक करना चाहिए, जिस हद तक उसका सम्बन्ध वर्ण-द्वेष दूर करने से हो। ऐसा सकल्प करके मैंने जिस तरह हो दूसरी गाड़ी से आगे जाने का निश्चय किया। प्रातः ही मैंने जनरल मैनेजर को तार द्वारा लम्बी शिकायत लिख भेजी। अब्दुल्ला सेठ तुरन्त जनरल मैनेजर से मिले। जनरल मैनेजर ने अपने आदमियों का पक्ष तो किया, पर कहा कि मैंने स्टेशन मास्टर को लिखा है कि गाधी को सुरक्षा-पूर्वक अपने घर पहुचा दो। अब्दुल्ला सेठ ने मेरित्सबर्ग के हिन्दू व्यापारियों को भी मुझ से मिलने तथा मेरा प्रबन्ध करने के लिए तार दिया तथा दूसरे स्टेशनों पर भी ऐसे तार दे दिए। इससे व्यापारी लोग मुझसे स्टेशन पर मिलने आये। उन्होंने अपने पर होने वाले अन्यायों का जिक्र मुझसे किया, और कहा कि आप पर जो कुछ बीती है, वह कोई नई बात नहीं। पहिले दूसरे दर्जे मे जो हिन्दुस्तानी सफर करते है, उन्हे क्या कर्मचारी और क्या

मुसाफिर दोनों सताते हैं। सारा दिन इन्हीं बातों के सुनने में गया। रात हुई गाड़ी आई। मेरे लिए जगह तैयार थी, डरबन मे सोने के लिए जिस टिकट को लेने से इंकार किया था, वही मेरित्सबर्ग में लिया। ट्रेन मुझे चार्ल्सटाउन ले चली।

घाव पर नमक

इतने मात्र से भी पीछा छूटता तो कोई बात न थी। मोहनदास प्रातःकाल चार्ल्सटाउन पहुँचे। वहाँ से जोहन्सबर्ग तक उन दिनों ट्रेन न थी। घोड़ागाड़ी जाती तो थी, परन्तु स्टैंडर्टन मे एक रात ठहरना पड़ता था। मोहनदास जी के पास इस गाड़ी का टिकट था। एक दिन का बिलम्ब हो जाने पर भी वह बेकार न होता था। पर उसने इन्हें अपरिचित समझ कर कहा—

"तुम्हारा टिकट तो रद्द हो गया है।" यह बहाना-मात्र था और इसका अभिप्राय था यह कि गोरे यात्रियों के साथ इन्हें न बिठाना पड़े तो अच्छा। घोड़ागाड़ी के दाए-बाएं दो स्थान थे। उनमे से एक पर घोड़ागाड़ी कम्पनी का एक गोरा अधिकारी बैठा करता था, परन्तु इन्हे गोरों के साथ न बैठाने के विचार से वह स्वय अन्दर बैठा और इनको बाहर बिठाया। इसमे गाधी जी को अपमान का अनुभव तो हुआ, पर उस समय झगड़ा करने से कोई लाभ विशेष न देख वे बैठ रहे।

अभी भी अपमान की इति श्री न हुई थी। रात को ३ बजे के लगभग उस गोरे अधिकारी को बाहर (जहाँ ये बैठे

थे) वैठकर सिगरेट पीने की इच्छा हुई । उसने इन्हें पॉव रखने के तख्ते पर वैठने को कहा। यह अपमान इनसे न सहा गया। इन्होंने इसका विरोध किया । उधर उसने कई थप्पड़ जमाए और हाथ पकड़कर नीचे खींचने लगा। अन्त.स्थ यात्रियों को दया आई। उनके झिडकने पर वह ग़ुर्राता हुआ अपने स्थान पर जा वैठा।

रात को स्टैंडर्टन पहुँचे। वहाँ ईसा सेठ के आदमी आए थे। उन्हें अब्दुल्ला सेठ ने तार द्वारा सूचित कर दिया था। उनके साथ ये दुकान पर चले गए । मोहनदास जी ने मार्ग मे घटित सारी घटनायें ईसा सेठ से सुनाईं । उन्हें बड़ा दुःख हुआ, पर उन्होंने यह कहकर कि ऐसी घटनाएें तो यहाँ के लिये कोई नई वात नहीं, इन्हें आश्वासन दिया । तत्पश्चात् गाधी जी ने घोडागाडी के मैनेजर के नाम पत्र लिखा । उसने सदेश भेजा कि यहाँ से वडी घोडागाडी जाती है । आपको उसमे सवके साथ ही स्थान मिलेगा। वहाँ से चलकर रात को जोहन्सवर्ग पहुँचे। स्टैंड पर मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन का आदमी आया तो था, पर इन्होंने उसे न पहिचाना, न ही उसने पहिचाना। कुछ देरी वाद लौट गया। मोहनदास जी एक होटल मे पहुँचे, पर वहाँ स्थान खाली न मिला । इसके वाद दूसरी गाडी मे वैठकर कमरुद्दीन की दुकान पर आये और उनसे होटल की वात कही। वे हसने लगे और वोले 'गोरे लोग अपने होटलों मे हमे स्थान नहीं देते। यहाँ वर्ण-द्वेप अत्यधिक है।

आज कल प्रिटोरिया जायेंगे,पर हम लोगों को पहले या दूसरे दर्जे का टिकट ही नहीं मिलता। आपको तीसरे दर्जे मे जाना पड़ेगा।' इन्होंने मगाकर रेल के नियम देखे। उसमे ऐसी कोई रोक न थी। इस पर हठी प्रणवीर मोहन ने प्रथम दर्जे मे ही यात्रा करने का निश्चय प्रगट किया। स्टेशन मास्टर को पत्र लिखा—

"मैं बैरिस्टर हूँ—सदा पहले दर्जे मे यात्रा करने का आदी हूँ। आशा है, मुझे टिकट मिल जायेगा। मै स्वयं स्टेशन पर मिलूंगा।"

आघात पर आघात

ठीक समय पर अंग्रेजी फैशन मे स्टेशन पर पहुँचे। स्टेशन मास्टर को इनकी करुण-कहानी से दया आई। उसने इनके साथ सहानुभूति प्रगट की और इस शर्त पर टिकट दिया कि यदि मार्ग मे गार्ड उतार बैठे, तो आप रेलवे कम्पनी पर अभियोग न चलाये। उसे धन्यवाद दिया और प्रथम श्रणी के कमरे मे जा बैठे। थोड़ी ही देर बैठने के उपरात गार्ड आ धमका। इन्हे देखते ही आगबगूला हो गया और इन्हें भर्त्सना-पूर्वक तीसरे दर्जे मे बैठने को कहा। इन्होंने टिकट दिखाया, विरोध किया, पर उसने एक न सुनी—'टिकट है तो क्या? तुझे तीसरे दर्जे मे बैठना पड़ेगा।' इस डिब्बे मे केवल एक ही अंग्रेज यात्री बैठा था। उसने गार्ड को डाटा और इनसे आराम के साथ बैठने को कहा। गार्ड यह

कहता और वड़वडाता हुआ चल दिया, 'तुझे कुली के साथ बैठना हो, तो बैठ। मेरा क्या ?'

राम राम करते वडी ही कठिनाई से आठ वजे रात को मोहनदास प्रिटोरिया पहुचे और एक अमेरिकन होटल मे रात व्यतीत की। दूसरे दिन अब्दुल्ला सेठ के वकील श्री वेकर से मिले और उनकी सहायता से ३५ शिलिंग प्रति सप्ताह पर एक वाई के घर रहने का प्रवन्ध किया। श्री वेकर कट्टर पादरी थे। इनका एक प्रार्थना-समाज था। श्री वेकर ने ईसाई धर्म की ओर आकर्षित करने के विचार से इनको भी उसमे आमन्त्रित किया। गाधी जी को मुक्ति और मार्ग-प्रदर्शन के लिये सव ने प्रार्थना की। धीरे धीरे यहाँ कुमारी हैरिस, गेव एव मि० कोट्स से परिचय हुआ। दोनों महिलाये साथ रहती थीं। उन्होंने हर रविवार को ४ वजे चाय पीने के लिये अपने यहा निमन्त्रित करना आरभ किया। ये सव गाधी जी को ईसाई वनाने के हेर-फेर कर रहे थे। श्री कोट्स ईसा एव ईसाई धर्म-सवधी अनेक पुस्तकें इन्हे पढ़ने को दिया करते, परन्तु इनकी युक्तिया मोहनदास को विशेष सारयुक्त तथा प्रभावशाली न लगीं और फिर वचपन के सस्कार अपने धर्म का त्याग कैसे करने देते।

भारतीयों से परिचय

प्रिटोरिया के भारत निवासियों मे सेठ तैय्यव हाजी खान मुहम्मद का वडा आदर था। वहाँ कोई भी सार्वजनिक कार्य विना उन के सम्पन्न ही न हो पाता। मोहनदास ने इनसे वहा जाने पर

शीघ्र ही परिचय कर लिया और भारतीयो की स्थिति को समझने मे उससे सहायता मागी। उन्होंने यह सहायता देना सहर्ष स्वीकार किया।

इनकी तथा अन्यान्य महानुभावों की सहायता से भारतीयों की एक सभा आयोजित की गई। इस सभा के सामने भाषण देने म मोहनदास जीवन मे प्रथम बार सफल हुए। मोहनदास ने उन्हे समझाया कि "व्यापार मे भी सत्य को न छोड़ना चाहिए। विदेश मे आप को देखकर भारतीय सभ्यता का अनुमान लगाया जाता है। इसलिए आपकी जिम्मेदारी और बड़ी है। इसके अति-रिक्त इस सभा में सफाई, हिंदू मुस्लिम, एकता, गुजराती,मद्रासी, पजाबी, हिंदू, मुस्लिम, ईसाई आदि का भेद भुला देने की अपील की गई। यह भी सुझाया गया कि एक मण्डल की स्थापना करके भारतीयो के दुःख कष्ट दूर करने का उपाय अधिकारियों से मिलकर एवं प्रार्थनापत्र इत्यादि के द्वारा करना चाहिए। इस के लिए अपना समय भी देने का वचन दिया। लोगो को अग्रेज़ी पढ़ाने के लिये अपनी सेवाए समर्पण कीं। कुछ लोग तैयार हुए और कार्य चल पड़ा।

पीछे यही सभा नियमित रूप से होने लगी। परस्पर परामर्श होते। धीरे-धीरे प्रिटोरिया की स्थिति का भी पूरा ज्ञान हुआ। ब्रिटिश एजेन्ट से भी मेल मिलाप किया। उन्होंने यथाशक्ति सहायता का बचन दिया। रेलवे अधिकारियों से भी गाधी जी

ने लिखा पढ़ी की और उन्हें दिखाया कि हिंदुस्तानियों की यात्रा मे जो रुकावटें की जाती हैं वे उनके नियमों के अनुसार अनुचित हैं। उत्तर में पत्र मिला कि साफ सुथरे वस्त्रधारियों को तो ऊपर के दर्जों के टिकट देने में कोई आपत्ति न होगी।

भारतियों की दुर्दशा

औरेंज फ्री स्टेट में सन् १८८२ ई० मे अथवा उसके पहिले एक कानून बनाकर भारतीयो को सब प्रकार के अधिकारों से वाचित कर दिया गया था। जो भारतीय व्यापारी वहा थे, उन्हें नाममात्र के लिए मुआवजा देकर वहाँ मे हटा दिया गया। उन्हों ने प्रार्थनापत्र तो भेजे, पर अरण्य-रोदनवत उनसे कोई लाभ न हुआ।

ट्रांसवाल मे सख्त कानून बना। १८८६ मे उसमें कुछ सुधार हुआ, जिसके फलस्वरूप यह नियम बना कि अखिल भारतवासी प्रवेशफीस के रूप मे ३ पौंड दें। ज़मीन को मलकीयत भी उन्हे उन्हीं स्थानों की प्राप्त हो सकती है, जो उन के लिए विशेप रूप से नियत किए गए हैं। पर सच तो यह था कि किसी को मालिकी देते ही न थे। मताधिकार किसी को दिया ही न गया। भारतवासी पगडडी (फुटपाथ) पर न चल सकते थे। रात को ६ वजे के वाद विना परवाने के वाहर न निकल सकते थे। एक दिन एक सन्तरीने विना मोहनदास को यह चिताए कि फुटपाथ से उतर जाओ, उन्हे धक्का दे दिया, लात मारी और

फुटपाथ से उतार दिया। गांधी जी भौचके रह गए। वे लिखते हैं—"ज्यों ही मैं संतरी से लात जमाने का कारण पूछता हूँ कि कोट्स ने जो घोड़े पर सवार होकर उस समय उसी मार्ग से जा रहे थे, आकर कहा—

"गांधी, मैंने यह सब कुछ देख लिया है। तुम यदि मुकदमा चलाना चाहो तो मैं गवाही दूंगा। मुझे बहुत अफ़सोस है कि तुम पर इस प्रकार का हमला हुआ।" मैंने कहा—"इसमें अफ़सोस की बात ही क्या है? संतरी बेचारा क्या पहचानता? उसके निकट तो काले २ सब बराबर हैं। हबशियों को फुटपाथ से इसी प्रकार उतारता होगा। इसलिए मुझे भी धक्का दिया। मैंने तो अपना यह नियम ही बना लिया है कि मेरे अपने ऊपर तो जो कुछ बीते, उसके लिए कभी अदालत न जाऊँगा, इसलिए इसे मुझे अदालत नहीं ले जाना है।" उसने सन्तरी को डाँटा। संतरी ने मोहनदास से क्षमायाचना की। पर ये तो क्षमा पहिले ही दे चुके थे। तब से ये कभी उस मार्ग से घूमने न निकले।

इस घटना से भारतवासियों के प्रति उनके मनो—भाव तीव्र हो गए। भारतीयों से गांधी जी ने दो बातों की चर्चा की: एक तो यह कि इन कानूनों के लिए ब्रिटिश एजेन्ट से बात करली जाय, और दूसरी बात यह कि मौका पड़ने पर नमूने के रूप में एक मुकदमा चलाया जाय। इस प्रकार इन्होंने भारतीयों के कष्टों,

अपमानों तथा घृणा की करुणा-भरी कहानियों का स्वयं अनुवभ किया। इन्होंने देखा कि आत्म सम्मान के इच्छुक भारतवासी का दक्षिण अफ्रीका मे रहना अति कठिन है। इस दशा को बदलने की धुन मे ही तब से गाँधी जी रहने लगे। परन्तु मुख्य काम दादा अब्दुल्ला का मुकद्मा-अभी अधूरा ही पड़ा था।

मुकदमे का समझौता

जिस मामले को लेकर ये दक्षिण अफ्रीका गए थे, उसका इन्होंने गम्भीर अध्ययन किया। उभयपक्ष के कागज पत्रों का अवलोकन किया। इससे इन्हें पूर्ण निश्चय हो गया कि उनके मुवक्किल का पक्ष बहुत दृढ़ है, पर इनमे स्वार्थभाव तो था नहीं। ये दोनों पक्षों का हित चाहते थे। मुकदमे का व्यय इतना बढ़ रहा था और परस्पर मनोमालिन्य दिन प्रति दिन इस प्रकार बढ़ता जा रहा था कि दोनों पक्ष शाँति के साथ दूसरा काम न कर पाते थे। उन्हों ने देखा कि मुकद्मे मे दोनों पक्षों की अपार हानि होगी। इसलिए ये विपक्ष के तैयब सेठ से मिले। उन्हें बहुत समझाया बुझाया। अन्त मे मामला पचायत मे गया। वहाँ जो फैसला हुआ, उसे दोनों पक्षों ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया। इस सफलता से गाँधी जी को अपार हर्ष हुआ। इन्होंने समझ लिया कि वकील का काम टके कमाना नहीं, वरन् दोनो पक्षों के बीच पडी खाई को भर देना है। यह निष्कर्ष इनके जीवन मे अंकित हो गया और जब तक इन्होंने वकालत की इसे न भुलाया। इससे न तो नैतिक दृष्टि से और न ही आर्थिक दृष्टि से ये कभी घाटे मे रहे।

४

दक्षिणी अफ्रीका में कार्य-क्षेत्र

नेटाल मे डेरा

मुकदमा लडने वाले दोनों दलों मे परस्पर समझौता हो ही गया था। अब वे डरबन चले गए और वहाँ से भारत वर्ष लौटने की तैयारी की। अब्दुल्ला सेठ ने विदाई के उत्सव का आयोजन किया। उसी अवसर पर एक समाचार पत्र के एक स्तम्भ मे प्रकाशित समाचार की ओर इनका ध्यान आकर्षित हुआ। उसका शीर्षक—हिन्दुस्तानी मताधिकार था। समाचार यह था कि भारतीयों को दक्षिण अफ्रीका मे जो धारा-सभा के सदस्यों को निर्वाचित करने का अधिकार प्राप्त है, वह छीन लिया जाय। इसके लिए धारा-सभा मे बिल पेश था और उसपर विचार हो रहा था। इन्होंने समझा कि इस बिल द्वारा तो भारतीयों का अस्तित्व ही मिटा डालने की कामनाएँ की जा रही हैं। ये सारी बाते इन्होने उत्सव मे एकत्रित हुए भारतीयों को समझा दी। इन्होंने गाँधी जी से दो-चार मास वहीं ठहरने का आग्रह किया और वचन दिया कि उनके नेतृत्व में वे लोग सब प्रकार का विरोध करने को तैयार रहेगे। भला परोपकारी मोहन इस सेवा के सुवर्णावसर को कब खो सकते थे? इन्होंने सहर्ष अपनी स्वीकृति दे दी। और नेटाल मे ही अपना प्रथम डेरा लगया।

भारतीयों में जागृति

सभा का प्रथम अधिवेशन मुहम्मद दादा के सभापतित्व मे अब्दुल्ला सेठ के मकान पर हुआ। इसम नेटाल मे जन्मे सभी प्रकार के हिन्दुस्तानी-ईसाई भी आमन्त्रित किए गए थे। डरबन न्यायालय के दुभाषिये श्री पाल और मिशन स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री गाडफ्रे तथा उनके साथ साथ बहुत से ईसाई नवयुवक भी आये थे। स्थानीय सभी प्रतिष्ठित व्यापारी लोग विद्यमान थे। इस अधिवेशन मे एक प्रस्ताव पास हुआ जिसमें भारतीयों को मताधिकार से वञ्चित करने के बिल का विरोध किया गया था। साथ ही लोगों ने अपने नाम स्वयसेवकों की सूची मे लिखवाए। धारा-सभा के प्रधान सर जान राबिंसन थे। उनके और मि० एस्कम्ब के पास बिल पर विचार स्थगित करने के लिए तार भेजे गए। उत्तर आया कि बिल पर दो दिनों के लिये विचार न किया जाएगा। इससे लोगों को सन्तोप हुआ। प्रार्थना-पत्र की रूपरेखा निर्धारित की गई। रातों रात तीन प्रतियाँ तैयार की गई। एक अखबारों को भेजी गई। धारा सभा में इसकी चर्चा हुई। इस पर अनुकूल टिप्पणियाँ भी हुईं। परतु यह सब कुछ होने पर भी प्रस्ताव पास हो गया।

प्रस्ताव पास होने में तो इस आन्दोलन से कोई विशेष अन्तर न पडा, पर इसका एक महान लाभ यह हुआ कि वहाँ के भारतीयों मे आपसी भेदभाव मिट गए। सब मे राष्ट्रीय तथा एकता की भावना जगृत हो उठी। किसी उद्देश्य-विशेष को लद्दर

मे रखकर संगठितरूप से किस प्रकार लड़ना चाहिये—इसके 'क' 'ख' से वे अब परिचित होने लगे थे।

आन्दोलन

बिल पास होने के उपरान्त यह निश्चय हुआ कि एक प्रार्थना-पत्र उपनिवेशमंत्री लार्ड रिपन के पास भेजा जाय। इस प्रार्थना-पत्र पर लगभग दस हज़ार व्यक्तियों के हस्ताक्षर कराए गए। एक सहस्र प्रतिया छपवा कर भारतवर्ष के समाचार पत्रो तथा नेताओ के पास भेजी गई। उधर विलायत के भिन्न २ दलों के नेताओं के पास भी कापियाँ पहुचाई गई। प्रमुख भारतीय व इङ्गलैण्ड के पत्रों ने उसका समर्थन किया। इससे उपनिवेश-मत्री द्वारा अपने विशेषाधिकार से बिल के अस्वीकृत किये जाने की कुछ कुछ आशाए होने लगी। इसका श्रेय मोहनदास जी को ही था। इनका नाम सर्वत्र विख्यात होने लगा। अब तो वहाँ के भारतीयों ने इन्हें और अधिक देर तक अफ्रीका मे रहने के लिए आग्रह किया। परतु प्रश्न व्यय का था। लोगों ने व्यक्तिगत रूप से आर्थिक सहायता देने के वचन दिए, परतु सच्चे परोपकारी गाधी सार्वजनिक कार्य के लिए कोई पारितोषिक स्वीकार नहीं कर सकते थे। वे तो निष्काम सेवक बनना चाहते थे। अंत तः गत्वा निश्चय यही ठहरा कि मोहनदास जी अपनी वकालत चलाएँ और लोग मुकदमे दिलाने मे सहायता दे। सबने सहर्ष स्वीकृति दी और इस प्रकार गाधी जी वहीं रहने लगे।

वकालत

नेटाल मे वकालत करने के लिए वहाँ का प्रमाण-पत्र लेना आवश्यक था। वर्णद्वेप बड़े जोरों पर था। वकीलसभा मे मोहनदास का प्रार्थना-पत्र पहुँचा। उन्होंने इसे अदालत से अस्वीकृत कराने मे भरसक प्रयत्न किया। वहाना यह था कि मोहनदास के पास असली प्रमाण-पत्र न था। उनका प्रमाण-पत्र वम्बई न्यायालय मे रह गया था। परन्तु प्रधान न्यायाधीश ने अपना निर्णय गान्धी जी के पक्ष मे दे दिया। इस प्रकार वकीलों की सूची मे इनका नाम आ गया। कितने ही पत्रों ने इन पर वकील – सभा मे किए आक्षेपों की निन्दा की और वकीलो को ईर्ष्यालु और पक्षपाती ठहराया। इस प्रसिद्धि से उनका काम किसी अश तक अपने आप सरल हो गया।

नेटाल इडियन कांग्रेस

वास्तव म वकालत करना तो इनके लिए था ही गौण। मुख्य ध्येय ता भारतीयों की सेवा और उनका सङ्गठन था। भारतीय मताधिकार-प्रतिरोधक कानून के विरोध मे आवाज उठाकर प्रार्थनापत्रमात्र भेजकर चुप बैठना तो ठीक नहीं था। उसके लगातार आदोलन होते रहने से ही औपनिवेशिक मन्त्रियों पर कुछ प्रभाव की सभावना की जा सकती थी। इसके लिये एक सस्था स्थापित करने की आवश्यकता अनुभव हुई। इसलिये परस्पर परामर्श कर एक महती सभा हुई और २२ मई १८६४ को नेटाल इण्डियन कॉग्रेस का जन्म हुआ। इसमे समय-समय पर लोग एकत्रित होकर परस्पर विचार-विनमय

करते। प्रचार के उद्देश्य से गांधीजी ने दो पुस्तके लिखी। पहिली में दक्षिण अफ्रीका के प्रत्येक अंग्रेज से अपील की गई थी और भारतीयों की स्थिति दर्शाई गई थी। दूसरी में भारतीय मताधिकार के लिये अपील की थी। इनसे अच्छा प्रचार हुआ और इसका प्रभाव भी बड़ा ही अनुकूल पड़ा। अंग्रेजों की सहानुभूति इस कार्य मे मिलने लगी। उधर भारतवर्ष के सब दलों से भी सहायता मिलनी आरभ हो गई।

इसी प्रसङ्ग मे औपनिवेशिक - भारतीय - शिक्षा समिति की भी स्थापना की गई। इस सभा में अधिकतर वाद-विवाद हुआ करते थे। एक छोटा पुस्तकालय भी इसके लिये खोल दिया गया। इस प्रकार वहां के भारतीय युवकों के लिये विचार, विस्तार व प्रकाशन के साधन भी जुटने लगे।

मजदूरों से सम्पर्क

'नेटाल इण्डियन कांग्रेस' की स्थापना तो हो चुकी थी। परन्तु उसके सदस्य थे अधिकतया धनी मानी व्यापारी, क्लर्क या शिक्षित युवक ही की थी। मजदूर या गिरमिटिया अभी इसमे सम्मिलित न हुए थे। गिरमिटिया उन्हे कहा जाता था जो कई एक शर्तों (एग्रीमेण्ट) पर मजदूरी के लिए लाये जाते थे। 'एग्रीमैण्ट' का ही अपभ्रंश गिरमिटिया शब्द है। 'नेटाल इण्डियन कांग्रेस' के सौभाग्य से ऐसा अवसर स्वतः ही आ गया। एक दिन 'बालासुंदरम्' नामक एक मद्रासी गिरमिटिया रोता धोता मोहनदास जी के पास पहुंचा। उसके

मुख से रुधिर निकल रहा था। उसके गोरे स्वामी ने उसको इस निर्दयता से पीटा था कि उसके दो दांत टूट गये थे। मोहनदास जी ने डाक्टरी प्रमाणपत्र उपस्थित कर अदालत मे अभियोग चलाया। मजिस्ट्रेट ने मालिक को बुलाया। परंतु गांधीजी उसे भी दण्ड नहीं दिलवाना चाहते थे। वे केवल उस गिरमिटिए को उस गोरे के अधिकार से छुडाना चाहते थे। पर तात्कालिक कानून यह था कि गिरमिटिया बिना स्वामी की इच्छा के या बिना गिरमिटिया-अधिकारी द्वारा अधिकारपत्र (licence) रद्द किये नौकरी नहीं छोड सकता था। इसलिये मोहनदासजी उस गोरे से मिले। वह दण्ड से भयभीत था ही। उसने बिना किसी तर्क-वितर्क के गाधीजी की बात मान ली और बालासुदरम को अपने अधिकार से मुक्त कर दिया। इस घटना से गिरमिटियों मे एक नये उत्साह का सचार हुआ। गाधीजी के कार्यालय मे उनकी भीड रहने लगी। मोहनदासजी को भी ऐसे व्यक्तियों के सम्पर्क मे आने से वहाँ के भारतीयों के बारे मे अधिकाधिक अनुभव होने लगे।

वे इस बात से बडे प्रसन्न और प्रभावित थे कि कोई व्यक्ति तन, मन से अपने अधिकारों की सुरक्षा करने की इच्छा रखता है।

इस अवसर पर एक अन्य समस्या आ खडी हुई। सन् १८९४ मे नेटाल सरकार ने गिरमिटिया भारतीयों पर प्रतिवर्ष २५

पौंड (लगभग ३७५ रु०) का कर लगाने का बिल के रूप मे प्रस्ताव रखा। इस बिल की मुख्य धाराएँ ये थीं :—

(१) मजदूरी की अवधि पूरी होने पर गिरमिटिया भारतवर्ष लौट जायें। अथवा

(२) प्रत्येक गिरमिटिया हर दो वर्ष के बाद नये शर्तनामे पर हस्ताक्षर करे और इस शर्तनामे के नवीनकरण के समय ही उसे वेतन-वृद्धि दी जाय।

(३) यदि गिरमिटिया भारत वापिस न जाय और फिर मजूरी का इकरार भी न करे तो प्रतिवर्ष २५ पौंड का कर दे।

यह अन्याय की सीमा थी। इसमे भारतीयों का अफ्रीका में पांव ही जमने न देने का रहस्य छुपा था। उस समय भारत के वायसराय लार्ड एलगिन थे। उनके सामने भी नेटाल सरकार ने यह सुझाव रक्खा। उन्होने यह कर २५ पौण्ड से घटाकर ३ पौण्ड कर दिया, परन्तु अकिंचन मजदूरों के लिये तो यह भार भी शक्ति से अधिक था। इसलिए आन्दोलन शिथिल न हुआ। बढ़ते-बढ़ते इस आन्दोलन ने एक ऐतिहासिक सत्याग्रह का भीषण रूप धारण कर लिया, जो भारतीयों के इतिहास मे अत्यन्त गौरव का स्थान पाएगा।

भारत मे

दक्षिण अफ्रीका मे मोहनदास जी का काम सुचारु रूप से चलने लगा था। भारतीयों की सेवा का भी सौभाग्य मिल रहा था। एक पन्थ दो काज वाली कहावत

चरितार्थ हो रही थी। विचार आया घर वालों को भी क्यों न यहाँ लेते आये। साथ ही भारत में ३ पौण्ड वाले कर के आन्दोलन को भी उत्तेजना देने की आवश्यकता समझी। अतएव सन् १८६६ ई० के मध्य मे मोहनदास पैगेला जहाज से कलकत्ता चल दिये। वहा से बम्बई को प्रस्थान किया। मार्ग मे प्रयाग मे 'पायोनियर' के सम्पादक श्री चैस्ने जूनियर से मिले। 'पायोनियर' था तो साधारणतया भारतीय आकॉक्षाओं का विरोधी, परन्तु सम्पादक ने वचन दिया कि 'जो कुछ आप लिखेंगे मैं, उसपर तुरन्त टिप्पणी करूँगा।' तदुपरान्त बबई होते हुए राजकोट पहुँचे। वहा दक्षिण-अफ्रीका के भारतीयों की स्थिति के सम्बन्ध मे एक पुस्तक लिखी। इसका मुख पृष्ठ हरे रग का था। इस का नाम ही 'हरी पुस्तक' प्रसिद्ध हुआ। दस सहस्त्र कापियॉ छपीं और वे भारतवर्ष के सभी समाचारपत्रों तथा प्रतिष्ठाप्राप्त सज्जनों मे वितीर्ण की गईं। 'पायोनियर' ने इस पर एक लेख लिखा। इससे पुस्तक का प्रभाव विलायत एव नेटाल मे पर्याप्त पड़ा। अन्य मुख्य २ सभी पत्रों ने इस पर टीका टिप्पणी की।

प्रचार तथा आन्दोलन

वे चाहते थे कि भारतवर्ष के बडे २ नगरों मे फिर कर सभाएँ करें और दक्षिण-अफ्रीका की स्थिति से लोगों को पूर्ण रूपेण अवगत करें। निजी कार्य-क्रम के अनुसार बम्बई पहुँचे। वहाँ जस्टिस रानाडे और बदरुद्दीन

तैयब जी से मिले। उन्होने सहानुभूति तो दर्शाई, परन्तु सार्व-जनिक कार्य मे भाग ले सकने में विवशता प्रगट की। साथ ही गांधी जी को यह परामर्श दिया कि वे फीरोज़शाह मेहता से मिले। तदनुसार गॉधी जी मेहता जी से भी मिले। उनसे परामर्श करने के उपरान्त सभा का दिन नियत हुआ। कार्य व्यस्तता के कारण वे सभा के लिए भाषण की तैयारी न कर सके। फीरोजशाह से मिलते ही उन्होंने इनसे पूछा,— "गॉधी, तुम्हारा भाषण तैयार है न ?"

"नहीं तो। मैंने जबानी ही भाषण देने का विचार किया है।"

"बम्बई मे ऐसा न चलेगा। यहॉ का रिपोर्टिङ्ग खराब है और यदि हम चाहते हों कि इस सभा से लाभ हो तो तुम्हारा भाषण लिखित ही होना चाहिए और रातों-रात छपा लेना चाहिए। रात ही को भाषण लिख सकोगे ?"

"प्रयत्न करूँगा।"

"तो मुन्शी तुम से कब भाषण लेने आए ?"

"ग्यारह बजे।"

इस प्रकार भाषण लिखा गया। रातों-रात प्रकाशित हुआ। दूसरे दिन जब सभा हुई तो हाल खचाखच भरा था। गॉधी जी ने भाषण पढ़ा। उनकी आवाज ने साथ न दिया, तो श्री० वाछा ने शेष भाग पढ़ा। लोगो ने खूब तालियॉ पीटी। भाषण का प्रभाव मनोवांछित हुआ। सर फीरोज़शाह बहुत प्रसन्न हुए। इससे गॉधी जी का उत्साह बहुत बढ़ा।

वहाँ से गाँधी जी ने पूना को प्रस्थान किया। पूना मे दो दल थे—एक लोकमान्य का और दूसरा गोखले महाराज का। पर इन्हे तो सब के सहयोग और सहायता की आवश्यकता थी। पहिले पहल लोकमान्य से मिले। उन्होंने कहा—"सब दलों की सहायता प्राप्त करने का आपका विचार बिलकुल ठीक है। आपके प्रश्न के सम्बन्ध मे मतभेद हो ही नहीं सकता, परन्तु आपके काम के लिये किसी तटस्थ सभापति की आवश्यकता है। आप प्रोफेसर भाँडारकर से मिलिए। यों तो वे आज कल किसी हलचल मे पडते नहीं हैं, पर शायद इस काम के लिए 'हा' कर लें। उनसे मिलकर परिणाम से मुझे सूचित कीजिए। मैं आपको पूरी २ सहायता देना चाहता हूँ। आप प्रोफेसर गोखले से भी अवश्य मिलिएगा। मुझ से जब कभी मिलने की इच्छा हो अवश्य आइए।"

गाँधी जी इस प्रथम परिचय के सम्बन्ध मे लिखते हैं, "लोकमान्य के यह मुझे पहिले दर्शन थे। उनकी लोकप्रियता का कारण मैं तुरन्त समझ गया।"

यहाँ से गोखले के पास गये। वह फर्ग्यूसन कालिज मे थे। बडे प्रेम से इनसे मिले और गाधी जी पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे उन्हीं के बन गए। गाधी जी लिखते हैं— "उनका भी यह प्रथम ही परिचय था, पर ऐसा प्रतीत हुआ मानो हम पहिले मिल चुके हों। सर फिरोजशाह तो मुझे हिमालय-जैसे मालूम

हुए, लोकमान्य समुद्र की तरह मालूम हुए। गोखले गंगा की भांति दीखे, उसमें मै नहा सकता था। हिमालय पर चढ़ना कठिन है, समुद्र में डूबने का भय रहता है, पर गंगा की गोदी मे खेल सकते है, इसमे डोंगी पर चढ़कर तैर सकते हैं। गोखले ने खोद खोदकर बाते पूछीं, जैसा कि विद्यालय में भरती होते समय विद्यार्थी से पूछी जाती हैं। किस २ से मिलूं और किस २ प्रकार मिलूं—यह बताया और मेरा भाषण देखने के लिये मांगा। मुझे अपने कालेज की व्यवस्था दिखाई। कहा—"जब मिलना हो, खुशी से मिलना और डाक्टर भाण्डारकर का उत्तर मुझे जताना।" फिर मुझे बिदा किया। राजनीतिक क्षेत्र मे गोखले ने जीते जी जैसा आसन मेरे हृदय मे जमाया और जो उनके देहान्त के बाद अब भी जमा हुआ है, वैसा फिर कोई न जमा सका।"

भाण्डारकर के मेल के सम्बन्ध मे गॉधी जी लिखते हैं- "रामकृष्ण भाण्डारकर ने मुझसे उसी प्रकार व्यवहार किया, जिस प्रकार पिता पुत्र से करता है। मैं दोपहर के समय उनके पास गया था। यह बात इस परिश्रमी शास्त्रज्ञ को प्रिय मालूम हुई और तटस्थ अध्यक्ष बनाने के मेरे आग्रह पर 'यही ठीक है' 'यही ठीक है' उद्गार सहज ही उनके मुँह से निकल पड़े।"

बिना किसी आडम्बर के, एक सादे से मकान मे पूना के इन विद्वान त्यागी मण्डल ने सभा की और गान्धी जी को पूरा पूरा प्रोत्साहन दिया।

यहाँ से गाँधी जी मद्रास गए। मद्रास तो पागल ही हो उठा। वालासुन्दरम् की कहानी का वड़ा गहरा प्रभाव पड़ चुका था। इन्होंने लिखित भाषण दिया। सभा के अन्त में उस हरी पुस्तिका पर लोग टूट पड़े। कुछ संशोधन, परिवर्तन व परिवर्धन कर वहाँ दस हजार का एक और संस्करण प्रस्तुत किया।

यहाँ वड़ी से वडी सहायता स्वर्गीय जी० परमेश्वरन पिल्लजी से मिली। वह 'मद्रास स्टैण्डर्ड' के सम्पादक थे। उन्होंने इस प्रश्न पर अच्छा अध्ययन कर लिया था। वह वार वार इन्हे अपने कार्यालय मे वुलाते और सम्मति देते।

मद्रास के लोगों के प्रेम से मोहनदास जी वहुत प्रभावित हुए।

फिर दक्षिण अफ्रीका में

इधर भारतवर्ष में मोहनदास जी प्रचार कार्य मे व्यस्त थे, उधर दक्षिण अफ्रीका मे पार्लियामेंट की बैठक की तैयारियाँ हो रही थीं। एक दिन गांधी जी को कलकत्ते मे डारवन से तार मिला—"पार्लियामेंट की बैठक जनवरी मे होगी, जल्दी आइए।" गाँधी जी ने अपना दक्षिण अफ्रीका जाने का समाचार पत्रों मे प्रकाशित कराया और कलकत्ता से राजकोट आए। दादा अब्दुल्ला को तारद्वारा सूचित किया कि पहिले जहाज् द्वारा जाने का प्रबन्ध करें। दादा अब्दुल्ला ने इसी बीच 'कुरलैंड' जहाज खरीद लिया था। इसी से सन् १८९६ ई० के दिसम्बर के आरम्भ मे ही अपनी धर्मपत्नी, दो बच्चों और स्वर्गीय वहनोई के एकलौते पुत्र को साथ लेकर

दुबारा अफ्रीका को प्रस्थान किया। इस जहाज के साथ 'नादरी' नामक एक और जहाज था, जिसके एजेन्ट दादा अब्दुल्ला थे। उनमे ८०० के लगभग यात्री थे।

१८ या १६ दिसम्बर को दोनों जहाज डरबन बन्दर पर जा पहुँचे। लंगर डाला। उन दिनों बंदरगाहों पर यात्रियों का डाक्टरी परीक्षण हुआ करता था। उन जहाजों पर भी डाक्टर आए। जॉच पड़ताल की और बोले, "अभी यात्री पाँच दिन जहाज पर ही रहेंगे, क्योंकि बम्बई से चलते समय सम्भव है ये प्लेग के किटाणु साथ लाये हों। इसके लिए २३ दिन तक सूतक रखना ही चाहिये। अभी १८ दिन ही हुए हैं।"

गोरों मे तूफान

यह सब तो बहाना था। वस्तु स्थिति यह थी कि गाँधी जी के भारत मे दक्षिणी गोरों के विरुद्ध प्रचार करने के कारण वहाँ के गोरो मे तूफान सा मच गया था। वे भारत से किसी को भी अफ्रीका नहीं आने देना चाहते थे। उनके इस विरोध का मध्य-बिन्दु गाधी जी थे। उन पर दो प्रकार के आरोप थेः—

(१) भारतवर्ष मे इन्होंने गोरों की अनुचित निन्दा की है।

(२) गाधी जी नेटाल को भारतीयो से भर देना चाहते है। "कुरलैड' और 'नादरी' मे विशेपरूप से नेटाल मे बसाने के लिए भारतीयों को भर लाने का भी अपवाद चल रहा था। इन बातों से गाँधी जी को अपने उत्तरदायित्व का ध्यान आया।

यात्रियों, तथा उनके परिवार के लोगों के प्राण संकट में थे। दादा अब्दुल्ला को गोरों ने अनेक धमकियाँ दीं। यात्रियों को भी धमकाया गया। हाँ, यदि वे लोग जहाज द्वारा वापिस लौट जावें तो उनका सारा व्यय भी देना स्वीकार किया गया। गाधीजी की आत्मा निर्दोष थी। वे उक्त दोनों बातों के लिये उत्तर दायी न थे। इसलिये ये अविचल रहे और यात्रियों को ढाढ़स बधाने लगे। २३ दिनों के पश्चात् यात्रियों को उतरने की आज्ञा दिली। मुसाफिर उतरे, पर सरकारी वकील श्री एस्कब ने कप्तान को कहला दिया कि गाधी जी तथा उनके बाल-बच्चों को शाम को उतारना, क्योंकि गोरे इस समय बहुत बिगडे हुए हैं। इनका जीवन संकट में है। थोडी देर बाद दादा अब्दुल्ला के वकील श्री लाटन आए और कहा कि इस प्रकार चोरों की तरह नगर में प्रवेश करना शोभा नहीं देता। फिर गोरे भी तितर बितर हो गये हैं।

लाटन साहब की सम्मति से गाधी जी ने धर्मपत्नी एव बच्चों को गाडी में रुस्तम सेठ के घर भेज दिया और आप उनके साथ पैदल चल पडे।

मार पिटाई

ज्योंही गान्धी जी जहाज से उतरे, कुछ छोकरों ने इन्हें पहिचान लिया और वे 'गाधी-गाधी "चिल्लाने लगे। तत्काल ही दो-चार व्यक्ति इकट्ठे हो गये और इनका नाम ले-लेकर जोर से कोलाहल करने लगे। मि० लाटन ने देखा कि भीड बढ जाएगी, इन्होंने रिक्शा मगाई।

गान्धी जी रिक्शा मे बैठने के विरुद्ध थे, पर परिस्थितिवश बैठने को उद्यत हुए। किन्तु छोकरो ने रिक्शेवाले को धमकाकर भगा दिया। आगे क्या हुआ इसे गान्धी जी के अपने शब्दों मे सुनिये: –

"हम आगे चले। भीड़ भी बढ़ती जा रही थी। काफी भीड़ हो गई। सर्वप्रथम भीड़ ने मुझे मि० लाटन से पृथक कर दिया। फिर मुझ पर ककड़ और सड़े अडे बरसाने लगे। किसी ने मेरी पगड़ी भी गिरा दी और मुझ पर लातो, घूसो से प्रहार शुरू हो गये।

मैं अचेतनवत् हो गया। निकटवर्ती घर के सींकचे को पकड़ कर मैंने सांस लिया। खड़ा रहना तो असम्भव ही था। अब धक्कों, मुक्कों की नौबत आई।

इतने मे पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट श्री अलेक्जेण्डर की पत्नी उधर से आ निकली। वह इनसे परिचित थी। देखते ही इनके पास आ गई। अपनी छतरी इन पर ओढ़ी। उसे बीच मे पड़ते देख कर भीड़ कुछ रुकी। इसी बीच किसी भारतीय ने पुलिस को सूचना दे दी थी। पुलिस की एक टुकड़ी इनकी रक्षा के लिए आ गई। उसके सरक्षण मे ये पारसी रुस्तम जी के घर पहुँचे। वहाँ इनकी चिकित्सा हुई। पर गोरों को अभी भी सन्तोष नहीं हुआ था। उन्होंने घर को भी घेर लिया। मौका बेढब देख पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट श्री अलेक्जेण्डर वहाँ पहुँच गए और इन्हें गुप्त

संदेश भेजा कि इस समय आप वेश बदल कर घर से निकल जायँ। अन्यथा आपके साथ आपके मित्र के प्राण या सम्पत्ति भी खतरे मे है। ऐसा ही किया गया। ये वेश बदल कर थाने मे चले गए। पीछे शिकार निकल जाने का समाचार पा भीड़ भी तितर बितर हो गई।

अद्भुत क्षमा-शीलता

स्वर्गीय मि० चेम्बरलेन ने तार दिया कि गाधी पर आक्रमण करने वालों पर अभियोग चलाया जाय और ऐसा किया जाय कि इन्हें न्याय मिले। मि० एस्केम्ब ने इन्हे बुलाया। उनकी चोटों के लिए दुःख प्रदर्शित करते हुए कहा "अब यदि आप आक्रमण-कारियों को पहिचान सकें, तो मैं उन्हें गिरफ्तार करके मुकदमा चलाने के लिए तैयार हूँ। मि० चेम्बरलेन भी ऐसा ही चाहते हैं।"

उत्तर मे गाधी जी ने कहा—"मैं किसी पर मुकदमा चलाना नहीं चाहता। आक्रमणकारियों मे से एक दो को पहिचान भी लूं तो उन्हें दण्ड दिलाने मे मुझे क्या लाभ? फिर मैं तो इन्हे दोषी भी नहीं मानता हूँ, क्योंकि उन बिचारों को तो यह कहा गया है कि हिन्दुस्तान मे मैंने नेटाल के गोरों की भरपेट और बढ़ा चढा कर निंदा की है। इस बात पर यदि वे विश्वास करले और बिगड पडे तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है? दोष तो ऊपर के लोगों का, और आपका भी, माना जा सकता है। आप लोगों को ठीक सम्मति दे सकते थे,

पर आपने रूटर के तार पर विश्वास किया और कल्पना करली कि मैंने अत्युक्ति से काम लिया होगा। मैं किसी पर मुकदमा चलाना नहीं चाहता। जब वास्तविकता लोगों पर प्रगट हो जायगी और लोग जान जायेंगे तब स्वयमेव पछतायेंगे।"

"तो क्या आप मुझे यह बात लिखकर देंगे ? मुझे चेम्बर लेन को इस आशय का तार देना पड़ेगा।"

उत्तर में गांधी जी ने कहा, " इस सम्बन्ध में मेरे विचार निश्चित हो चुके हैं। यह तय है कि मै किसी पर मुकदमा नहीं चलाना चाहता,इसलिए मै यहीं का यहीं आपको लिख देता हूँ।"

यह कह कर महामना मोहनदास ने पत्र लिख दिया। इस प्रकार इन्होने अपनी अहिंसा एवं क्षमा-वृत्ति का अपूर्व परिचय दिया। इसका अंग्रेजों पर भी उत्तम प्रभाव पड़ा। समाचार पत्रों ने गाधी जी को निर्दोष बताया और आक्रमणकारियो की घोर निन्दा की। इसीसे भारतवासियों की प्रतिष्ठा भी बढ़ी और आगे का मार्ग खुला।

भारतीयों के विरुद्ध दो और प्रस्ताव

तीन चार दिन मे सारा कार्यक्रम पुनः पूर्ववत चलने लगा। यह घर आगए इस घटना से ये आकर्षण के केन्द्र और सर्वप्रिय से बन गए थे। वकालत पर भी इसका अच्छा प्रभाव पड़ा। खूब मुकदमे आने लगे। यह सब कुछ होने पर भी गोरो का भय तथा रोप सर्वथा घटा नहीं। इसी अवसर पर नेटाल की धारा सभा में दो बिल और पेश हुए। इनमें से एक

का उद्देश्य तो दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों के व्यवसाय को आघात पहुँचाना था तथा दूसरे से इनके नेटाल आने जाने में बाधा डालना था। उनकी भाषा तो ऐसी हेर फेर की थी कि सब पर लागू होने वाली दीखती थी, पर वास्तव में बिल भारतीयों को कुचलने के ही प्रयोजन से बनाए गए थे। इस सम्बन्ध में भी गान्धी जी ने बहुत आन्दोलन किया। विलायत तक मामला पहुँचा। बिल तो स्वीकृत होने ही थे, पर ढोल की पोल भी साथ ही खुल गई।

पारिवारिक जीवन

इन झगडों के परिणाम-स्वरूप अफ्रीका निवासी भारतीयों मे जागृति का सचार हुआ। नेटाल इण्डियन कांग्रेस का कार्य भी इससे जोरों से चलने लगा। पैसों की भी कमी न रही। भवन भी अपना बन गया। ज्यो-ज्यों कार्य बढ़ा, इनका अधिकाश समय सार्वजनिक कार्यों मे ही व्यय होने लगा। दूसरी ओर धर्म का गूढतर अनुशीलन हुआ ही करता था। अब गम्भीर विचार के उपरान्त ये इस परिणाम पर पहुँचे कि जिस प्रकार एक म्यान मे दो कृपाणों का रहना असभव है, उसी प्रकार एक ही व्यक्ति मे सेवा-भाव और विषयवासना भी नहीं रह सकते। अत. वे पति-पत्नी सम्बन्ध मे विशुद्धता तथा निर्मलता लाने के लिए पवित्र गृहस्थाश्रम में से विषयवासना के कीचड को निकाल फैंकने की ओर प्रयत्न-शील हुए। आत्म-सयम के लिए सरल सात्विक भोजनों की बडी आवश्यकता हुआ करती है। सादे भोजनों से अभ्यास प्रारम्भ

हुआ। ठीक भी है, ब्रह्मचर्य का स्वादों से विरोध है। ब्रह्मचर्य के साथ-साथ स्वावलम्बन के भाव का उदय हुआ। घर मे कपड़े धोना, हजामत करना इत्यादि काम अपने हाथों से करने लगे। सार्वजनिक कार्यों तथा सादगी ने मुख्य स्थान पाया। शेप निजी कार्य गौण रूप से चलने लगे।

सेवा धर्म

गाधी जी में प्रारम्भ से ही सेवा-भाव कूट कूट कर भरा था। माता-पिता की सेवा से आरम्भ कर आजीवन पड़ोसियों, देशवासियों, अपाहिजों, रोगियो, पशुओं आदि की सेवा ही आजीवन करते रहे। गाँधी जी सेवा का रहस्य समझते थे। वास्तव मे इस रहस्य को कोई-कोई ही समझ पाता है। इसी लिये नीतिकार कहते हैं—

"सेवा धर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः"

अब इनकी इच्छा शारीरिक सेवा करने की हुई। संयोग-वश एक दिन एक अपग कोढ़ी घर पर आ पहुँचा। उसे कुछ खाने को देकर हटा देने को जी न चाहा। उसे एक कमरे मे रक्खा, उसके घावो को धोया और उसकी शुश्रूषा की। इतने से भी सन्तोष न हुआ। अब नियमित रूप स डाक्टर वूथ की देख-रेख मे रोगी-परिचर्या मे दो घण्टे प्रतिदिन देने लगे। इससे रोगियों की सेवा तथा परिचर्या-शैली का इन्हें अच्छा बोध हो गया, जो कालान्तर मे होने वाले बोअर युद्ध में घायलों की सेवा शुश्रूषा मे उपयोगी सिद्ध हुआ।

बोअर युद्ध में सेवा कार्य

इसी समय १८९७ में बोअर युद्ध छिड़ पड़ा। बोअरों का संक्षिप्त सा परिचय यह है कि सोलहवीं शताब्दी तक दक्षिण अफ्रीका में विदेशियों का प्रवेश नहीं होने पाया था। सोलहवीं शताब्दी में डच लोग प्रथम बार दक्षिण अफ्रीका गए इन्होंने अपने राज्य का विस्तार करना आरम्भ कर दिया। डचों की देखादेखी अंग्रेज भी वहां पहुँचे। दोनों के स्वार्थों में सघर्ष होना स्वाभाविक सी बात थी। अंग्रेजों और डचों में लड़ाई छिड़ गई। अंग्रेज हार गए। यह डच जाति ही बाद में 'बोअर' के नाम से पुकारी जाने लगी। समय ने पलटा खाया। अंग्रेज बलशाली होते गये। इन्होंने बोअरों से प्रतिशोध लेना चाहा। फिर युद्ध छिड़ा। बोअर भी युद्ध-कला में निपुण थे। यह तुमुल युद्ध १८९९ तक चलता रहा।

गाँधी जी का अभी तक ब्रिटिश शासन की न्यायशीलता में पूरा विश्वास था। इस लिये उन्होंने युद्ध में घायलों की सेवा-शुश्रूषा के लिए एक सेवा-दल की योजना की। डा० बूथ ने लोगों को आवश्यक शिक्षा दी और डाक्टरी प्रमाण पत्र भी दिला दिए।

उस समय तक भारतीयों के प्रति अंग्रेज यही धारणा रखते थे कि ये लोग अपने आपको खतरे में नहीं डाल सकते। गांधी जी ने सेवा के इस स्वर्णावसर को हाथ से न जाने दिया। दूसरे वे भारतीयों के प्रति अंग्रेजों की भीरुता सम्बन्धी धारणा

को भी निराधार सिद्ध करना चाहते थे। सरकार ने संकट काल मे गांधी जी की यह सहायता सहर्ष स्वीकार की। इस सेवा-दल मे लगभग ११०० व्यक्ति इनके पास थे। ४० कैप्टेन (मुखिया), ३०० स्वतंत्र हिंदुस्तानी और शेष गिरमिटिया थे। डाक्टर बूथ भी साथ थे। इस दल ने प्राणपण से अपना कर्त्तव्य निभाया। बहुश युद्धक्षेत्र मे भी कार्य करना पड़ा। घायलों का उठा उठाकर डोलियों मे युद्धक्षेत्र से लाने का काम भी इन्हें हीं सौंपा गया। इन घायलों में कई प्रतिष्ठित व्यक्ति भी थे। इस निष्काम सेवा की सर्वत्र भूरि भूरि प्रशंसा होने लगी। जनरल बुलर ने भी इसकी स्तुति की। मुखियो को लड़ाई के पदक (तमगे) भी दिए गए। भारतीय जहा अधिक प्रतिष्ठा के पात्र बने, वहाँ गोरों के व्यवहार में भी परिवर्तन आया।

नगर-सुधार तथा अकाल-फण्ड

समाज के एक भी अङ्ग की ख़राबी गाँधी जी को सदा अखरा करती थी। लोगों की बुराइयों को ढककर उनका बचाव करना अथवा उन्हें दूर किये बिना अधिकार प्राप्त करना इन्हे अरुचिकर लगता था। दक्षिणी अफ्रीका के भारतीयो पर गन्दे रहने तथा घरो आदि को साफ सुथरा न रखने का दोष सदा लगाय जाता था। इसमे कुछ सचाई भी थी। इस गन्दगी को दूर करने के लिए गाँधी जी ने बहुत प्रयत्न किया। ऊँचे घरों मे तो शीघ्र ही सफाई की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ, परन्तु घर-घर जाकर इसका

प्रचार तभी आरम्भ हुआ, जब डर्बन मे प्लेग का प्रवेश हुआ। थोड़ी सी असावधानी से इसके प्रकोप के बढने का भय था। म्युनिसिपैलिटी के अधिकारियों का काम था कि रोग के प्रसार के निरोध के लिए घर तथा नगर की सफाई का समुचित ध्यान रखते। उन्होंने तो यथा सम्भव अपना कर्त्तव्य निभाना ही था, परन्तु गॉधी जी ने भी घर घर जाकर लोगो का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। इस सफाई के आन्दोलन से अफ्रीका के भारतेतर निवासियों पर गॉधी जी का अच्छा प्रभाव पडा। वे समझने लगे कि ये केवल बातें ही बातें करने वाले नहीं, वरन् कर्म-सुधारक भी हैं।

गाधी जी का दूसरा कर्त्तव्य यह रह गया था कि वहॉ के भारतीयों मे अपने देश की समय-समय पर सहायता करने की भावना भरते रहें। इसके सम्बन्ध मे वे लिखते हैं, "भारत-वर्ष तो कङ्गाल है। लोग धन कमाने के लिये विदेश जाते हैं। मैंने सोचा उनकी कमाई का कुछ न कुछ अ श भारतवर्ष को आपत्ति के समय मिलना चाहिये। भारत मे १८९७ ई० मे तो अकाल पड़ा ही था। १८९९ मे एक और भारी दुर्भिक्ष पडा। दोनों अकाल के समय दक्षिण अफ्रीका से पर्याप्त सहायता गई थी।" इस प्रकार वे दक्षिण अफ्रीका के विविध कार्य क्षेत्र मे कर्मण्य नेता का कार्य कर आगामी जीवन के लिये अनुभव सामिग्री भी संचित कर रहे थे। जैसा कि उन्होंने आत्म-कथा मे प्रतिपादन किया है—"इस तरह दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों

की सेवा करते हुये मैं स्वयं बहुतेरी बातें एक के बाद एक अनायास ही सीख रहा था। सत्य एक विशाल वृक्ष है। उसकी ज्यों-ज्यों सेवा की जाती है, त्यों-त्यों अनेक फल आते हुए दिखाई देते हैं। उनका अन्त ही नहीं होता। ज्यों ज्यों हम गहरे पैठते है त्यों-त्यों उसमे रत्न निकलते है, सेवा के अवसर हाथ आते रहते हैं।"

त्याग-भाव

इनका दक्षिण अफ्रीका का बहुत कुछ कार्य पूरा हो चुका था। अब इन्होंने भारत लौटने का निश्चय किया। लोगों ने वहीं ठहरने का आग्रह किया। अन्ततः इस शर्त पर अवकाश मिला कि यदि आवश्यकता हुई तो वर्ष के भीतर फिर दक्षिण अफ्रीका लौट आएँगे। विदाई का उत्सव हुआ। इस अवसर पर इन्हे तथा इनकी पत्नी को हीरे, जवाहर, सोना-चाँदी आदि की मूल्यवान वस्तुएँ उपहार रूप मे दी गईं। 'क्या ये हमारी है ?' इस प्रश्न पर सारी रात हृदय मे संघर्ष चलता रहा। अन्ततोगत्वा सत्य का प्रकाश हुआ। विवेक जागा। तदनुसार निश्चय किया कि एक ट्रस्ट नियत किया जाय, जो इन वस्तुओं को सम्भाले रक्खे तथा सार्वजनिक कार्य मे इनका उपयोग करे। पत्नी ने विरोध भी किया, पर निष्काम सेवक सेवा के लिए कब कोई उपहार ले सकता था ? तभी से इनका निश्चित मत हो गया कि जन-सेवक को जो उपहार मिले वे उसकी निजी सम्पत्ति नहीं हो सकते।

५

मातृ-भूमि के दर्शन
तथा
अफ्रीका में पुनरागमन

कांग्रेस अधिवेशन

दक्षिण अफ्रीका से छुट्टी पा गांधी जी १६०१ ई० मे भारत आये। भारतवर्ष पहुचने पर कुछ काल इधर-उधर भ्रमण करते रहे। इस वर्ष राष्ट्रीय महासभा-कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता मे होने वाला था। कांग्रेसमे इनका यह प्रथम ही अनुभव था। दीनशा एदलजी वाच्छा सभापति थे। यह दो-तीन दिन पूर्व ही कलकत्ता पहुचे और स्वय सेवको की दशा सुधारने मे सलग्न हो गये। यहाँ का प्रवन्ध इन्हें अच्छा न लगा।

प्रतिनिधियों की दशा भी सन्तोपजनक नहीं कही जा सकती थी— जो स्वय सेवकों का हाल था, वही प्रतिनिधियों का था। उन्हें भी तीन ही दिन तालीम मिलती थी। वे अपने हाथों कुछ भी नहीं करते थे, हर बात मे आज्ञा से काम लेते थे। 'स्वय सेवक, यह लाओ' और 'वह लाओ—' आदेशो की झड़ी लगी रहती।"

छुआछूत का भूत भी कइयो पर सवार था। द्राविडी रसोईघर बिलकुल अलग-थलग था। ये तो दृष्टिदोष भी सह

नहीं सकते थे। चारों ओर गन्दगी भी बहुत थी। सफ़ाई का समुचित प्रबन्ध नहीं था। गांधी जी ने एक स्वय-सेवक का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहा, परन्तु उसने झट रूखा सा प्रत्युत्तर दिया—'यह तो भगी का काम है।' इस पर गाधी जी ने झाडू मंगाई। स्वय-सेवक मुँह ताकता रह गया। अन्ततः गांधी जी को स्वयं झाड़ू खोजकर लानी पड़ी। पाखाना साफ किया। कभी-कभी बरामदे मे ही कोई टट्टी कर जाता, वह भी गाधी जी को ही साफ़ करनी पड़ती।

काग्रेस के अधिवेशन के अभी एक दो दिन शेष रह गये थे। इन्होने सोचा अपनी सेवाए समर्पित करनी चाहिये। श्री भूपेन्द्रनाथ वसु और श्री घोपाल मन्त्री थे। वे घोपाल बाबू के पास गए और सेवा पूछी। उन्होने इन्हे सिर से पॉव तक देखा और मुस्कराते हुए बोले—"मेरे पास क्लर्क का काम है—करोगे ?" "अवश्य करूंगा। यथाशक्ति सब कुछ करने के लिए मै तुम्हारे पास आया हूँ।"

"नवयुवक, सच्चा सेवा कार्य इसी को कहते है।" इस प्रकार बिना अपना परिचय दिये ही आफ़िस मे क्लर्क का काम करने लगे। इनके व्यक्तित्व तथा काम-धामकी कहानी का पता लगाने पर मंत्री आदि झेंपने लगे, पर इन्होंने अपने कर्त्तव्य को न छोड़ा।

अधिवेशन की बैठक

कांग्रेस की बैठक आरम्भ हुई। मण्डप के भव्य दृश्य, स्वय सेवकों की कतार, मञ्च पर वडे-बूढों के समुदाय को देखकर गॉधी जी चकरा गए। सोचा, भला इनमे मेरी तूती कौन सुनने लगा ?

सभापति का भाषण हुआ।

विषयनिर्वाचिनी समिति के सदस्यों का निर्वाचन हुआ। गोखले इन्हें भी उसमे ले गए। इनका प्रस्ताव भी प्रस्तावों की सूची में रख दिया गया। अब इन्हें अपना प्रस्ताव इस विशाल सभा मे रखते झेंप हुई। सारी कार्रवाई अंग्रेजी में होती थी। उत्साह न हुआ। पाँच मिनट बोलने का समय मिला था। सारी रात इसी उधेड़ वुन मे कटी। अतत. प्रस्ताव का समय आ गया। इनका नाम बुला। खड़े हुए। सिर चक्कर खाने लगा। ज्यों त्यों कर दक्षिण अफ्रीका सम्बंधी अपना प्रस्ताव पढ़ा। प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ। इससे इन्हें अपार हर्ष हुआ।

कांग्रेस अधिवेशन की समाप्ति पर भी अफ्रीका के काम से गान्धी जी एक मास कलकत्ता ही ठहरे। गोखले भी वहा ठहरे थे। गोखले गाधी जी की सादगी,—सेवाभाव, स्वावलम्बन, और उद्योग-शीलता आदि गुणों से बहुत प्रभावित हुए। उधर गाधी जी को गोखले की निष्काम-सेवा-वृत्ति ने मुग्ध सा कर दिया। गोखले को सेवा कार्य से एक भी मिनट का अवकाश न मिलता था। घूमना तथा व्यायाम करना आदि भी समयाभाव से

छूट गए थे। इनका व्यवहार भी निष्कपट तथा स्पष्ट होता। भारत वर्ष की निर्धनता और पराधीनता का घुन इन्हे अन्दर-अन्दर ही खाये जा रहा था। इन बातो की गांधी के हृदय पर अमिट छाप पड़ी।

कलकत्ता मे रहते हुए अन्य भी कई नेताओ से परिचय हुआ। अब इन्हो ने अपने कार्य के दो भाग बना लिए—दक्षिण अफ्रीका सम्बन्धी कार्य और धार्मिक तथा समाज के कार्य। आधे दिन दक्षिण अफ्रीका के सम्बन्ध मे मिलते रहते,और आधा दिन धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं की देखभाल मे व्यतीत करते। इस प्रकार उन्होने बगाल के लोगो के जीवन का अच्छा घनिष्ट परिचय प्राप्त कर लिया।

काशी मे

गांधी जी कलकत्ता से राजकोट को चल दिए। उन्होंने काशी, आगरा,जयपुर और पालमपुर होते हुए राजकोट जाना था। प्रत्येक स्थान पर एक-एक दिन ठहरे। अधिक ठहरने का समय न था।

यह सारी यात्रा तीसरे दर्जे मे ही करनी पड़ी। तीसरे दर्जे की गन्दगी तथा अन्य असुविधाएँ इन्हे बहुत चुभी। यात्रियों की बुरी आदतो से तथा रेलवे कर्मचारियो की अनवधानता से तीसरे दर्जे की दशा नर्क से कम नहीं थी। चाहे जहा थूक दिया, जहॉ चाहा कचरा फैक दिया, जब जी मे आया और जिस स्थान पर चाहा बीड़ी फूकने लगे, पान और ज़रदा चबा कर जहॉ बैठे हो

वहीं पिचकारी छोड़ दी, जूठन वहीं फर्श पर डाल दी। जोर-जोर से बातें करना, पास बैठे हुए मनुष्यों की परवाह न करना और अश्लील भाषा बोलना आदि उनके तीसरे दर्जे के साधारण अनुभव थे।

प्रात काल ही वे काशी पहुँचे। किसी पंडे के यहाँ उतरना चाहते थे। कई ब्राह्मणों ने इन्हें पहुँचते ही घेर लिया। उनमें से एक साफ़सुथरे व्यक्ति के घर में चले गए। पण्डे ने स्नानादि कराने की खूब तैयारी कराई, पर इन्होंने उसे पहिले से ही सचेत कर दिया था कि १।) रु० से अधिक दक्षिणा की आशा न करनी चाहिये। पण्डा मान गया। स्नान से निवृत्त हो गान्धी जी काशी विश्वनाथ के दर्शन करने गए। वहा जो कुछ इन्होंने देखा उससे मन में दुख हुआ। उस घटना का वर्णन इन्हीं के शब्दों में पढ़िये:-

"मन्दिर पर पहुँचते ही मैंने देखा कि दरवाजे के सामने सड़े हुए फूल पड़े थे और उनमें से दुर्गन्ध निकल रही थी। अन्दर बढ़िया संगमर्मर का फर्श था। उस पर किसी अन्ध श्रद्धालु ने रुपये जड़ रक्खे थे और उनमें मैला कचरा फंसा रहता था।

मैं ज्ञानवापी के पास गया। यहाँ मैंने ईश्वर की खोज की। पर मुझे न मिला। इससे मैं मन ही मन घट रहा था। ज्ञानवापी के पास भी गन्दगी देखी। पैर रखने की मेरी तनिक भी इच्छा न हुई। इस लिए मैंने तो सचमुच ही एक पाई चढ़ाई। इस पर पण्डा जी उखड़ पड़े। उन्होंने पाई फैंक दी और दो चार गालियाँ सुनाकर बोले-"तू इस प्रकार अपमान करेगा तो नरक में पड़ेगा।"

इस से मुझे क्षोभ नहीं हुआ। मैंने कहा—"महाराज, मेरा तो जो होना होगा वह होगा, पर आपके मुँह से हलकी बात शोभा नहीं देती। यह पाई लेनी हो तो लें, अन्यथा इससे भी हाथ धोना होगा।"

"जा, तेरी पाई मुझे नहीं चाहिए।"—कहकर पण्डा जी ने और भी भलाबुरा कहा। मै पाई लेकर चलता हुआ। मैंने सोचा महाराज ने पाई गवाई और मैंने बचाली। पर महाराज पाई खोने वाले न थे। उन्होंने मुझे फिर बुलाया और कहा-"अच्छा रख दे, मै तेरा अनुकरण नहीं करना चाहता। मै स्वीकार नहीं करूँगा तो तेरा अनिष्ट होगा।" मैंने पाई देदी और चुपचाप चलता बना।

इन अनुभवों के उपरान्त वे मिसेज़ बेसैंट से मिलने गए। वह बीमारी से उठी ही थी। इन्होंने अपना नाम लिख भेजा। वह तुरन्त मिलने आई। स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे पूछ ताछ करने के उपरान्त उनसे विदा ली।

बम्बई में

गांधी जी काशी से राजकोट आए। वहा दो एक मुकदमों की पैरवी की, पर मित्रों के अनुरोध से पुनः बम्बई जा डटे। वहाँ भी सिलसिला ठीक जमने लगा। हाईकोर्ट के पुस्तकालय से कानून की पुस्तकों का अध्ययन करने मे व्यस्त रहते। गोखले से भी मेल-मिलाप समय समय पर होता ही रहता था।

ईश्वर-विश्वास की परीक्षा

इसी अवसर पर उनका लड़का मणिक-लाल ज्वराक्रान्त हो गया। डाक्टरों की चिकित्सा थी। जब उन्होंने अण्डे और शोरवे का सेवन सुझाया, तो गॉधी जी के होश उड गए। उसके लिए साफ २ निषेध कर दिया। अन्ततोगत्वा स्वय जल-चिकित्सा द्वारा ज्वर से मुक्ति दिलाई। इस प्रकार अंहिसा के पुजारी को पुत्र की प्राणरक्षा के लिए जीवहिंसा न करनी पडी।

पुन दक्षिण अफ्रीका में

मणिकलाल अच्छा हो गया था। एक दिन गाधी जी के पास अफ्रीका से तार आया—"चेम्बरलेन यहा आ रहे हैं, तुम्हे शीघ्र आना चाहिए।" तार पढ़ते ही इन्हे अपने वचन की स्मृति आ गई। उन्होंने भी तुरन्त तार दिया—"खर्च भेजिए, मैं आने को तैयार हूँ।" तत्काल रुपये भेजे गए और गॉधी जी अपना आफिस समेट कर अफ्रीका चल दिए। बाल बच्चों को बम्बई मे ही रखा।

१ जनवरी १६०३ को प्रिटोरिया पहुॅचे और वहॉ पहुंचते ही चेम्बरलेन से मिलने वाले शिष्टमण्डल के लिए प्रार्थना-पत्र की रूपरेखा निर्धारित करने आदि कामों मे संलग्न हो गए।

डेपुटेशन

यद्यपि नेटाल के गोरों का भारतीयो से विरोध बढ़ता ही जा रहा था तथापि अधि-कारीवर्ग मे गॉधीजी के प्रति पर्याप्त मान था। इस कारण से डेपु-टेशन को मिलने की आज्ञा मिल गई। चेम्बरलेन ने मीठी मीठी बातें कर उलझाए रक्खा और वास्तविक प्रश्न को टाल ही दिया।

232

जब ट्रॉसवाल मे चेम्बरलेन के पास शिष्टमण्डल ले जाने का निर्णय हुआ तो वहाँ के एशियाटिक एमीग्रेशन के अधिकारियों ने उनके कार्य मे बड़ी बाधा डाली और उन्हें शिष्टमण्डल मे रखने से निषेध कर दिया। गाधी जी के अनुरोध से अनिच्छापूर्वक शिष्टमण्डल श्री गाडफ्रे के नेतृत्व मे चेम्बरलेन से जा मिला। परतु ऐसे आवेदन-पत्रों से क्या आशा की जा सकती थी ? इधर भारतीयों के कष्टों की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही थी। लोगो के आग्रहानुसार अंततः गांधी जी को वही ठहरना पड़ा और वे आजीविका के लिए ट्रासवाल के सुप्रीम कोर्ट के वकीलों मे भरती हुए। इसी समय कुछ मित्रो के सहयोग से 'ट्रासवाल ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन' की स्थापना की गई।

साप्ताहिक इण्डियन ओपीनियन

इस प्रकार दक्षिण अफ्रीका मे दिन प्रति दिन भारतीयो की कठिनाइयॉ बढ़ती जा रही थी, पर उनकी सुनवाई कही भी नही होती थी। हॉ, एक लाभ अवश्य हो रहा था और वह था, भारतीयो मे जागृति। इसलिए प्रचार के उद्देश्य से एक पत्र की बड़ी आवश्यकता थी। इसी समय श्री मदनजीत ने 'इण्डियन ओपीनियन' नामक समाचार पत्र निकालने का विचार किया। गॉधी जी से सम्मति मागी। मुद्रण-यन्त्र तो उनका अपना था ही। गॉधी जी इस विचार से सहमत हो गए। १९०४ मे पत्र निकाला। मनसुखलाल सपादक बने। पर धीरे धीरे इसका अधिकतर भार गांधी जी पर ही पड़ता गया, क्योंकि दक्षिण

अफ्रीका के जटिल प्रश्नों पर गाधी जी की विद्यमानता मे स्वतन्त्र रूप से लेख लिखने मे उनका उत्साह न होता। गान्धी जी की विवेकशीलता पर उन्हे विश्वास था। अतः उत्तरदायित्व तथा महत्त्वपूर्ण लेख गाधी जी को ही लिखने पड़ते थे। निस्सन्देह इससे भारतीय विचारो का अच्छा प्रचार हुआ। पर लेखो के साथ साथ गाधी जी को अपनी बचत के पैसे भी इसी पर लगाने पडते थे। पहिले तो यह पत्र हिंदी, तामिल, गुजराती और अंग्रेजी में निकला करता था, पर पीछे गुजराती और अंग्रेजी मे ही निकलता रहा।

महामारी का प्रकोप

सन १६०४ मे जोहन्सवर्ग मे महामारी (प्लेग) फैल गई। इसका अधिक प्रकोप भारतीयों की वस्ती पर ही रहा। इसका कारण कुछ तो भारतीयों की स्वास्थ्य-अवहेलना था और कुछ म्युनिसिपल कमेटी की उपेक्षावृत्ति। वार वार ध्यान दिलाने पर भी सफाई का समुचित प्रवन्ध न होता। अब जाति के सच्चे कर्णधार गाधी जी कमर कस कर रणक्षेत्र मे निकले। दो चार साथी साथ लिए और सेवा कार्य मे जुट गए। प्राण विपद्ग्रस्त थे, पर वे समझते थे कि उनके प्राण अपने लिए नहीं, वरन् अन्यो के लिए हैं। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

तरुवर फल नहिं खात है, नदी न सचै नीर।
परमारथ के कारने, साधुन धरा शरीर॥

कई स्थानों पर काली प्लेग हो गई थी। प्लेग के रोगि-

यों मे ही दिन रात रहना, गन्दगी साफ करना, रोगियों की परिचर्या करना—यही कुछ अनेक दिनों तक होता रहा। डाक्टर तक भी जहा छूत से घबराते, वहा कर्मण्य गाधी सब से आगे मिलते। प्लेग जैसे संक्रामक रोगों से भी इन्हे हुआ कुछ नहीं। और हो क्या सकता था —जब कि वे प्रभु की छत्रछाया मे थे —

"जाको राखे साईंया मार सके न कोय।"

अनटु दिस लास्ट का प्रभाव

'इण्डियन ओपीनियन में उत्तरोत्तर घाटा देख कर उन्होंने श्री वेस्ट नामक अंग्रेज सज्जन को उसका कार्य-भार वहन करने को कहा, क्योंकि तात्कालिक पत्र-संचालक श्री मदन लाल जी प्लेग की परिचर्या मे व्यस्त थे। उन्होंने रिपोर्ट भेजी कि पत्र का कार्य अव्यवस्थित है और आगे भी लाभ के स्थान हानि की ही अधिक सम्भावन है। पत्र की व्यवस्था की जांच पड़ताल के लिए ये नेटाल चल पड़े। चलते समय स्टेशन पर पोलक (एक यहूदी सज्जन) ने इन्हें विदा किया और 'अनटू दिस लास्ट' नामक रस्किन की पुस्तक इनके हाथों मे रखकर कहा—"यह पुस्तक मार्ग में पढ़ने योग्य है। आपको अवश्य भाएगी।" पुस्तक इन्हें इतनी रुचिकर लगी कि समाप्त किए बिना न छोड़ा। यह इनका रस्किन की कृति का अध्ययन करने का प्रथम ही सु-अवसर था। इस पुस्तक ने इनके अन्तःकरण मे उथल पुथल सी मचा दी। आत्मकथा मे ये लिखते हैं—"मेरे जीवन में यदि किसी पुस्तक ने तत्काल महत्त्वपूर्ण रचनात्मक परिवर्तन कर डाला तो

वह यही पुस्तक है। मेरा यह विश्वास है कि जो चीज मेरे अन्तरतर मे बसी हुई थी उसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब मैंने रस्किन के इस ग्रन्थ-रत्न मे देखा और इस कारण मुझपर इसने अपना साम्राज्य स्थापितकर लिया एव अपने विचारों के अनुसार मुझसे आचरण करवाया।" इसमे से इन्हों ने सर्वोदय के निम्नलिखित सिद्धान्त निकाले:—

(१) सबके भले मे अपना भला है।

(२) वकील और नाई दोनों के काम का मूल्य समान ही होना चाहिए, क्योंकि आजीविका का अधिकार दोनों को एक सा है।

(३) मजदूर और किसान का सादा जीवन ही सच्चा जीवन है।

पहली और दूसरी बात तो इन्हें विदित थी, पर तीसरी बात अभी तक इनके विचार में न आई थी। इसको पढ़ते ही इसकी उपयोगिता समझ गए। अब ये इस निर्णय पर पहुँचे कि सत्य के साधक के लिए सादा जीवन तथा शरीरश्रम अनिवार्य है।

फिनिक्स बस्ती की स्थापना

(इण्डियन ओपीनियन) पत्र अभी तक नगर से ही निकला करता था। इससे व्यय भी अधिक हो रहा था। उधर 'अनटू दिस लास्ट' के विचारों का गाधी जी के हृदय पर गहरा प्रभाव पड ही चुका था। इन सब बातो का परिणाम यह हुआ कि पत्र के प्रकाशन को ग्राम में ले जाने का विचार ठहरा। वेस्ट से परामर्श हुआ। उन्होंने इस

विचार से सहमति दर्शाई। सारी बातों पर विचार हुआ। फिनिक्स नामक स्थान इस कार्य के लिए नियत हुआ। १०० एकड़ भूमि खरीदी गई। भवन तैयार हुए। मुद्रण-यंत्र तथा पत्र वहां लाये गए। अब इनका विचार स्थायी रूप से वहा ठहरने का हुआ। रस्किन के 'अनटूदिस लास्ट के अनुसार सीधा साधा परिश्रममय जीवन यहीं बिताया जा सकता था। जोहान्सबर्ग स लौटते हुए इन्होंने पोलक से उस पुस्तक की उन पर गहरी छाप और तदनुसार स्थापित नवीन सस्था का जिक्र किया। पोलक बड़ा प्रसन्न हुआ और वह भी 'क्रिटिक' पत्र की नौकरी छोड़कर फिनक्स मे रहने लगा। परन्तु गांधीजी को एकान्तवास का सुख कहा बदा था ? सार्वजनिक – कार्यवश उन्हें शीघ्र ही जोहान्सबर्ग आना पड़ा और साथ ही पोलक को भी बुला लिया। पर डेरा फिर भी फिनक्स में ही रक्खा।

फिनिक्स एक छोटा सा गाव

सार्वजनिक कार्य के साथ ही साथ गांधी जी का मानसिक तथा नैतिक विकास होत रहा। स्वार्थभाव छूटता जा रहा था, धनोपार्जन का भाव भी ह्रास को प्राप्त होता जा रहा था। प्रेम और सहानुभूति उत्तरोत्तर अधिकाधिक विकसित होते जा रहे थे।

जो लोग उनके निकट सम्पर्क मे आते उनसे कुटुम्ब का सा व्यवहार करते। उनके शुद्ध हृदय और श्रेष्ठ चरित्र से अंग्रेजी, यहूदी आदि भी इनकी ओर खिचे आ रहे थे। इनमें जाति,पॉति का भेद भाव न था।

"जाति पाँति पूछे न कोय,
हरि को भजे सो हरि का होय।"

ऑफिस में कार्य अधिक बढ़ गया था, इसलिए एक स्काच कुमारी मिस डिक को स्टैनो के कार्य पर नियुक्त किया। गांधी जी के विशुद्ध चरित्र का उस पर गहरा प्रभाव पड़ा। गांधी जी इसे पुत्रीवत मानते। परिणय के अवसर पर जब वह मिसेज मेक्डानल्ड बनी, तो इन्होंने कन्या दान किया।

गांधी जी, पोलक तथा अन्य सहकारी परिवार के समान मिल जुल कर रहने लगे। परस्पर अद्भुत प्रेम व सहानुभूति थी। विजातीय कुटुम्ब इतने प्रेम से रह सकते हैं—यह एक गाँधी जी के विश्वबन्धुत्व सिद्धान्त का साक्षात् प्रमाण था। सच है—उदारचरितों के लिए तो पृथ्वी ही कुटुम्ब है। वे लिखते हैं,—"बात यह है कि सजातीय-विजातीय, यह तो हमारे मन की तरंगे हैं। वास्तव में तो सब एक ही परिवार के लोग हैं।"

परिवार के मुखिया के समान गांधी जी को सब का ध्यान रहता। पोलक की विवाह चिन्ता दूर हुई तो वेस्ट को अविवाहित देख पैतृक चिन्ता ने घेरा। "अब तो वेस्ट का विवाह भी यहीं क्यों न मना लूँ?" तदनुसार वेस्ट जब घर गए तो लेस्टा की एक सुन्दरी विवाह लाए। अब फिनिक्स बन सबका घर हो गया था और वे सब किसान हो गए थे। इसलिए वंशवृद्धि उनके लिए भय का विषय न था। इस प्रकार फिनिक्स छोटा सा गाँव बन गया। जैसा कि गांधी जी ने लिखा है:—

"इधर तो मैने गोरे मित्रों का विवाह कराया, उधर भारतीय मित्रों को अपने बाल बच्चों को बुलवा लेने को उत्साहित किया। इससे फिनिक्स एक छोटा-सा गाँव बन गया था। वहाँ पांच सात भारतीय-परिवार रहने और वृद्धि पाने लगे।"

जुलू विद्रोह

जोहान्सबर्ग मे अभी गाँधी जी जमने भी न पाये थे कि नेटाल मे जुलू लोगों के विद्रोह का समाचार आया। 'जुलू' वहाँ की एक वीर जाति है। गाँधी जी को 'जुलू' लोगों से कोई द्वेष न था, क्यों कि इन्होंने कभी भारतीयों की कोई हानि न की थी। वस्तुतः अंग्रेजों का पक्ष अन्याय पूर्ण था। पर उस समय गाँधीजी पर अंग्रेजी राज्य की न्यायपरायणता का प्रभाव-सा पड़ा हुआ था। इसलिए इन्होंने नेटाल के गवर्नर को पत्र लिखा कि यदि आवश्यकता हो तो मै घायलों की सेवा-शुश्रूषा के करने के लिये भारतीयों की एक टुकड़ी लेकर जाने को तैयार हूँ।" गवर्नर ने आर्पित सेवाएं सहर्ष स्वीकार की। कस्तूरबाई फिनिक्स रहने लगीं। पोलक का प्रबन्ध और स्थान पर कर दिया। मकान मकान मालिक के हवाले किया। स्वय नेटाल की ओर २८ स्वयं सेवकों के दल के साथ चल दिए। गाँधी जी को 'सार्जेण्ट मेजर' का अस्थायी पद प्रदान किया गया। इस दल ने ६ सप्ताह तनमन से सेवा-कार्य किया। पर यह वस्तुतः विद्रोह न था। 'जूलू' निरपराध थे। उनके एक सरदार ने जुलू लोगो पर लगाए गए कर को न देने की सम्मति दी थी और कर-प्राप्ति के लिए भेजे एक सार्जेण्ट की हत्या की

थी। इस पर गोरों ने आक्रमण ही बोल दिया था और उन्हें कुचल देने पर कटिबद्ध हो गए थे। गाँधी जी को जब 'जूलू' घायलों की सेवा का काम सौंपा गया तो इन्हे अपार हर्ष हुआ। इस सेवादल को दिन मे २५-२५, ३० ३० तथा ४०-४० मील चलना पडता, क्योंकि सैनिक अपनी कार्यवाही भिन्न भिन्न स्थानों मे करते थे। सेवा-कार्य इतना स्तुत्य रहा कि गवर्नर ने स्वयं इनकी पूरी पूरी प्रशसा की और पदक भी दिए।

आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत

'जूलू' लोगो की सेवा करते समय गाँधी जी को आत्मचिन्तन का सुअवसर मिला। "मीलों तक जब हम बिना बस्ती के प्रदेश मे लगातार किसी घायल कोलेकर अथवा खाली हाथ मजिल तय करते तब मेरा मन भाँति भाति के विचारों मे डूब जाता।"

यहाँ ब्रह्मचर्य विषयक इनके विचार पूर्ण परिपक्व अवस्था को पहुँचे। वे जानते थे कि "इस प्रकार की सेवाएं मुझे दिनों दिन अधिकाधिक करनी पड़ेगी और यदि मैं भोगविलास मे, प्रजोत्पत्ति मे, और सतति पालन मे लगा रहा तो मै पूर्णतया सेवा न कर सकूगा। मैं दो घोड़ों पर सवारी नहीं कर सकता। यदि पत्नी गर्भवती होती,तो मैं निश्चिन्त होकर आज इस सेवा कार्य मे नहीं कूद सकता था। यदि ब्रह्मचर्य का पालन न किया जाय,तो कुटुम्ब-वृद्धि मनुष्य के उस प्रयत्न की विरोधक हो जाती है, जो उसे समाज के अभ्युदय के लिये करना चाहिये। पर

यदि विवाहित होकर भी ब्रह्मचर्य का पालन हो सके तो कुटुम्ब-सेवा समाज-सेवा की विरोधक नहीं हो सकती।"

इन विचारों के भवर मे डूबते उभरते गांधी जी इस निर्णय पर पहुँचे कि अब तो आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत लिए ही काम चलेगा। शास्त्र-प्रतिपादित ब्रह्मचर्य की महिमा अब इन्हें बड़ी महत्वपूर्ण दीखी। अन्ततः इन्होने यह भीष्म-प्रतिज्ञा कर ली कि मैं जीवन-पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करूगा।

इस ब्रह्मचर्यव्रत का फल यह हुआ कि इन्होंने तपस्वी और त्यागी बनकर जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया। खान पान में सात्विकता तथा सादगी का और भी अधिक समावेश आता गया। आत्मसयम की दृष्टि से उन दिनों दूध, दाल, और नमक का भी परित्याग कर दिया। इस प्रकार लोक-सेवा की पावन वेदी पर सच्चे सेवाव्रती ने गृहस्थ का सुख भी सदा के लिये समर्पण कर दिया।

सत्याग्रह की उत्पत्ति] 'सत्याग्रह' शब्द से पूर्व 'सत्याग्रह' सिद्धान्त की उत्पत्ति हुई। प्रश्न उठा इसे क्या कहके पुकारा जाय? 'पैसिव रेजिस्टैंस' का प्रयोग सकीर्ण अर्थ मे किया जाता था। अन्ततः समुचित नाम जानने के लिए पत्र में विज्ञापन दिया गया। पारितोपिक भी रक्खा। फलस्वरूप मगनलाल गाँधी ने 'सत्+आग्रह' सदाग्रह' शब्द बनाकर भेजा। उन्हें पारितोपिक मिला, परन्तु इसको भी अस्पष्ट समझ गाँधी जी ने 'य' वर्ण
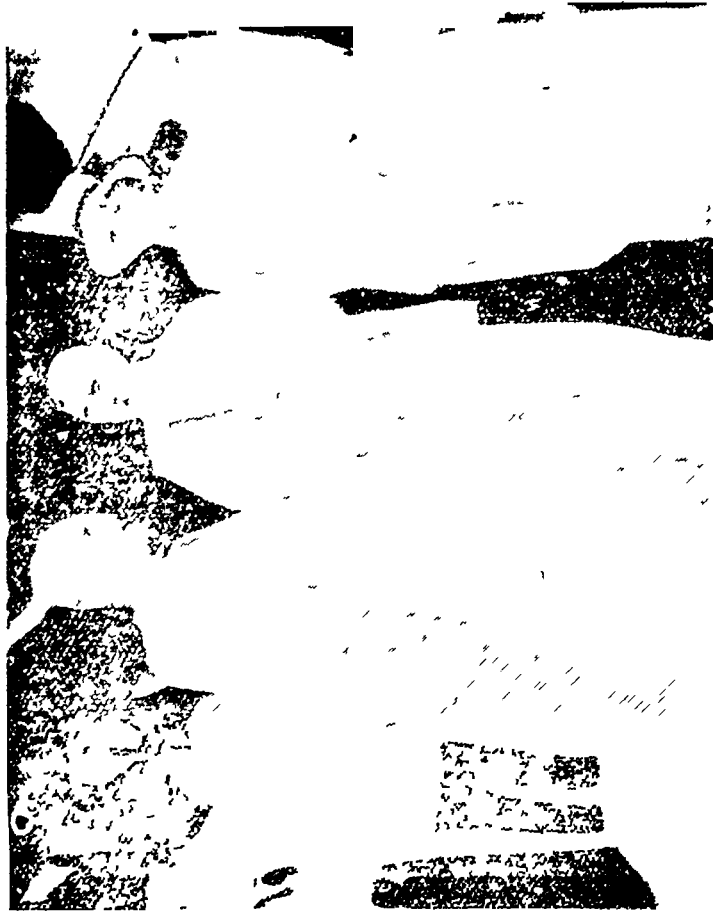
दक्षिण अफ्रीका के अन्तिम सत्याग्रह के समय कैलनबक श्री आइजक और श्रीमती पौलक के साथ गाँधी जी सत्याग्रही के वेश मे

जोडकर 'सत्य+आग्रह' सत्याग्रह शब्द बनाया। वह संग्राम तब से इसी नाम से पुकारा जाने लगा। अब तो यह शब्द प्रत्येक व्यक्ति की जिह्वा पर चढ़ गया है।

सत्याग्रह का प्रारम्भ :—दक्षिण अफ्रीका मे गोरे भारतीयों का वास नहीं देख सकते थे। वे भला उनका फलना फूलना कैसे सह सकते थे? उनकी प्रत्येक चेष्टा भारतीयों को अफ्रीका से उखाडने की ही होती। बोअर युद्ध के समय वचन दिया गया था कि युद्ध समाप्ति पर भारतीयों की माँगे पूरी की जाएंगी, पर काम निकल जाने पर स्वार्थी लोग कब अपने उपकारी का उपकार माना करते हैं? रहीम ने ठीक ही कहा है—

रहिमन वरियाँ रहट की, ज्यों ओछे की डीठि।
रीती सनमुख होत हैं, भरी दिखावै पीठि।

शान्ति-रक्षा का अड़ंगा खडा करके भारतीयों के वहाँ जाने मे अनेक वाधाएं खड़ी की गईं। १८८५ के रजिस्ट्री कानून पर ज़ोर दिया जाने लगा। इसके अनुसार भारतीय कुछ विशिष्ट स्थानों में ही विशेष प्रतिबन्धों से वद्ध होकर रह सकते थे। सुप्रीम कोर्ट मे अपील की गई। पुराना निर्णय रद्द हुआ। तदनुसार भारतीय इच्छानुसार जहाँ चाहे रह सकते थे। इससे गोरों का द्वेष व ईर्ष्या और भी प्रचण्ड हो गई। अब तो सदा भारतीयों का मूलोन्मूलन करने के लिये भरसक प्रयत्न करने लगे। १९०६ मे उनका षड्यन्त्र फलीभूत हुआ।

नया बिल

ट्रांसवाल सरकार ने "ड्राफ्ट एशियाटिक ला अमेण्डमेण्ट" बिल धारा-सभा मे उपस्थित किया। इसके अनुसार ट्रांसवाल मे रहने वाले भारतीय स्त्री पुरुष और आठ वर्ष से अधिक आयु के लड़के लड़कियाँ को एशियाई कार्यालय मे अपना नाम लिखवाना पड़ता तथा प्रमाणपत्र लेना पड़ता। नाम लिखने वाले अधिकारी को आदेश दिए गये थे कि प्रार्थी के शरीर के मुख्य चिन्हों को नोट करले और उसकी उगलियों अथवा दोनों अगूठो की छाप लेले। जो नियत समय मे ऐसा न कर सके उसका वहाँ रहने का अधिकार छीन लिया जाता। उसे देश से निर्वासित भी किया जा सकता था। इत्यादि बातें उस बिल मे निहित थीं।

विश्व के इस भयानकतम तथा घोर अपमानजनक बिल से भारतीयों मे क्रोध की मात्रा अन्तिम सीमा तक पहुँची। उनमें खलबली-सी मच जाना सर्वथा स्वाभाविक था। इस उपलक्ष में ट्रांसवाल मे एक विशाल सभा का आयोजन किया गया। सबने ईश्वर को साक्षी मान इस बिल का अन्त तक विरोध करने का प्रण किया। अन्यत्र भी विरोध के लिए सभाएँ की गई। अन्त मे सरकार ने औरतों के सम्बन्ध की धाराएँ तो वापिस ले लीं, पर अन्य धाराओं को पूर्ववत् ही रहने दिया।

विलायत को डेपुटेशन

व्यापक विरोध के होते हुए भी बिल पास हुआ। पुनः विचार ठहरा कि अभी और वैध प्रयत्न करने चाहिएँ। ट्रांसवाल साम्राज्य-सरकार के

आधीन उपनिवेश होने से किसी भी बिल की स्वीकृति के लिए सम्राज्य सरकार की स्वीकृति लेनी आवश्यक थी। निश्चय हुआ कि एक डेपुटेशन इङ्गलैण्ड भेजा जाय। गाँधी जी और हाजी वज़ीर अली इस कार्य के लिये चुने गये। समय पर इङ्गलैण्ड पहुँचे। प्रार्थना-पत्र मार्ग में ही तैयार कर लिया था। लन्दन में दादा भाई नौरोजी से मिले। पुनः सलेपेल ग्रिफिन से डेपुटेशन के नेतृत्व के लिए प्रार्थना की। उन्होंने प्रार्थना स्वीकार की। इसके उपरान्त कई पार्लियामेण्ट के सदस्यों से मिले और अपना उद्देश्य समझाया। लार्ड मार्ले से भी मिले। गांधी जी ने पार्लियामेण्ट के दीवानखाने में सदस्यों की एक सभा में भाषण भी दिया। कइयों की सक्रिय सहायता मिली। पर परिणाम वही ढाक के तीन पात हुआ। जोहान्सबर्ग पहुँचने पर विदित हुआ कि १९०७ की पहली जनवरी को ट्रांसवाल को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन मिल जाएगा। इसलिए तब तक के लिये यह प्रश्न स्थगित कर दिया गया।

पहली जनवरी १९०७ को ट्रांसवाल को स्वतन्त्रता मिली। बजट के बाद उक्त बिल भी पास हो गया। भारतीयों के प्रार्थना पत्रों की कोई सुनवाई न हुई। १ अगस्त १९०७ का दिन आज्ञा-पत्र लेने के लिए नियत हुआ। भारतीयों ने उन्हें लेना अस्वीकार किया और सत्याग्रह आरम्भ हो गया। स्थान २ पर सभायें हुईं, खूब प्रचार किया गया। जुलाई का मास समाप्त हुआ। आज्ञा-पत्र लेने के लिए कार्यालय खुले। परतु प्रत्येक कार्यालय

के सम्मुख पिकटिंग करने वाले स्वय सेवकों की टोलियाँ ही मार्ग रोके खड़ी मिलती। सरकार की ओर से व्यापारियों को घरों पर आज्ञा-पत्र भेजने की व्यवस्था की गई, पर इसका भंडा-फोड होने पर इस युक्ति से भी लाभ न हुआ। केवल ५०० आज्ञा-पत्र बट सके। 'इण्डियन ओपीनियन्' ने प्रचार मे बड़ी सहायता की।

गिरफ्तारियाँ व सन्धि

अब सरकार ने चिढ़कर पं० रामचंद्र नामक एक सज्जन को गिरफ्तार किया। परतु अदालत मे उनके साथ अच्छा वर्ताव किया गया। इसके उपरांत दिसम्बर मास मे गांधी जी तथा कुछ अन्य कार्य कर्ताओं को गिरफ्तार किया गया। इससे आदोलन का ज़ोर बढ़ने लगा। सप्ताह भर मे १०० सत्याग्रही जेल गये। सज़ा कड़ी होने लगी। इससे आंदोलन का वेग और भी बढ़ा।

विवश हो सरकार ने सधि चर्चा छेड़ी। एक दिन सुपरिण्टेंडैण्ट गाधी जी को जनरल स्मट्स के पास ले गए। उनमें इस बात पर समझौता हो गया कि भारतीय स्वेच्छापूर्वक परवाने बदलवा लें और आगे को कानून रद्द कर दिया जायगा। गांधी जी छोड़ दिये गये। सभा हुई। समझौता एक दो को छोड सबको मान्य था। सारे बदी मुक्त कर दिये गये।

एक दुर्घटना

संधि तो हो चुकी थी, परंतु कुछ लोगो ने कुछ पठानों को भड़का दिया कि गाधी जी तो रिश्वत खा गये हैं। उन्होने विश्वास कर लिया और पीटने

को सन्नद्ध हो गये। १० फरवरी १९०८ को गांधी जी, ईसपमियाँ तथा नायडू नामक तीन नेता आज्ञा-पत्र लेने के लिये उद्यत हुए। जब ये एशियाटिक आफिस की तरफ जा रहे थे, तो कुछ पठानों ने लाठी से इन पर आक्रमण किया। गांधी जी संज्ञाहीन हो गए। इसी बीच उधर से कुछ गोरे आए। उन्होंने पठानों को पकड़कर पुलिस को सौंप दिया। सम्भवतः रेवरेण्ड डोक गांधी जी को उठाकर अपने घर ले गये और सेवा-शुश्रूषा की। तत्पश्चात गांधी जी ने तार देकर पठानों को छोड़ देने की प्रार्थना की।

अच्छे होने पर फिर ये डरबन गये। एक सभा की समाप्ति पर रात को एक पठान ने फिर मंच पर पहुंचकर आक्रमण किया। लोगों ने इन्हें बचा लिया। तब तक पुलिस आ गई। दूसरे दिन गांधी जी ने पठानों को एकत्रित कर उनका भ्रम दूर करना चाहा, पर संदेह न मिटा। वे फिनिक्स चले गये।

राजनैतिक चाल

जनरल स्मटस पैंतेबाज राजनीतिज्ञ हैं। समय तथा परिस्थिति के अनुसार अपने शब्दों को बदलकर मनचाहा अर्थ लगाने की कला में वे बड़े निपुण हैं। दक्षिण अफ्रीका में उनका नाम 'स्लिमजेनी' 'पकड़ में न आसकने वालाजेनी' पड़ गया। 'जेनी' उनका वास्तविक नाम है। अपने नामानुसार ही उन्होंने काम भी किया। उक्त कानून को उठाने का जो वचन दिया था, उसे इन्होंने भंग किया। यह विश्वासघात की पराकाष्ठा थी। उससे भारतीयों में

उत्तेजना फैल गई। पुनः सत्याग्रह का निश्चय हुआ। सरकार को भी सूचित कर दिया गया। सरकार न मानी। उसने और भी जले पर नमक छिड़कने का काम किया। इसी समय 'इमीग्रेंटस् रजिस्ट्रेशन ऐक्ट' पास हुआ। इसका उद्देश्य भारत से नवागन्तुकों को रोकना था। सत्याग्रह की शक्ति दुगनी हो गई। जब सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ तो इसमें छोटे बड़े सब सम्मिलित हुए। गांधी जी भी जेल गए। वैरिस्टरों ने कुलियों का काम किया। थोड़े दिनों में गांधी जी रिहा हुए। वे विलायत गए। वहुत कुछ कहा सुना, पर कोई लाभ न हुआ। फिर वापिस आकर सत्याग्रह को बल देने का विचार किया, पर समस्या वन्दियों के परिवारों को अपेक्षित आर्थिक सहायता के लिए धन की थी। व्यय मे कमी तथा पारिवारिक प्रेम जगाने के लिए सबको एकत्र रखना अच्छा समझा गया।

टालस्टाय फार्म

इस प्रकार जब सहायता की बहुत आवश्यकता हुई, तब ईश्वर-कृपा से श्री कैलेनबैंक नामक एक जर्मन साथी ने गाधी जी को ११०० एकड़ भूमि दान दी। यह स्थान जोहासबर्ग से २१ मील—स्टेशन से एक मील की दूरी पर था। "आगे पीछे हर खड़े जब चाहे तब दे" के विश्वासी गाधी जी का ईश्वर विश्वास और दृढ़ हो गया। अस्तु, इस स्थान मे लोगों ने स्वय अपने अपने मकान तैयार किए। रस्किन के परिश्रम के सिद्धान्तो को दृष्टि मे रख इसकी रचना हुई। इस प्रकार 'फिनिक्स' और 'टॉलस्टाय फार्म' ये

दोनों स्थान इनके विचारों के इतिहास के प्रतीक है। अन्त मे भारत मे इन्हीं का विकसित रूप साबरमती आश्रम मे दृष्टि-गोचर हुआ।

इस अद्भुत नए स्थान मे नौकर का कोई स्थान न था। अपना अपना काम सबको स्वय करना होता। कोई भी काम निन्द्य नहीं समझा जाता था। रद्दी साफ़ करना, झाड़ू लगाना आदि से कोई घृणा न कर सकता। गुजराती, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई-सभी के मेल व शान्ति का यह अद्भुत ही स्थान बना। सीधा साधा रहन सहन और सादा खान पान। किसी से न ईर्ष्या, न द्वेष। हाँ, सत्याग्रह की शिक्षा का अनुपम केन्द्र था ही।

गोखले से मिलाप

इन्हीं दिनों गोखले इङ्गलैण्ड से दक्षिण अफ्रीका आए। भारतमन्त्री ने उनके काम धाम तथा वक्तृत्व के सम्बन्ध मे यूनियन सरकार को पहिले ही अवगत करा दिया था। भारतीय जनता पहिले ही श्रद्धालु ठहरी। अतः गोखले का सरकारी तथा जनता दोनों की ओर से अपूर्व ठाठ बाठ से स्वागत हुआ। उन्होंने भारतीयों की स्थिति का सिंहावलोकन किया। वे सरकारी अधिकारियों से भी मिले। काला क़ानून, तीन पौण्ड वाला कर, इमीग्रेशन क़ानून आदि को यथाशीघ्र रद कर देने के लिए सरकार ने पुनः वचन दिया। गोखले को तो विश्वास हो गया। पर दूध का

जला छाछ को भी फूंक फूंक कर पीता है। अतः गान्धी जी का सन्देह तो बना ही रहा। अन्त मे हुआ भी ऐसा ही।

अपमान

अब भारत-स्थित वायसराय लार्ड हार्डिंग, नेताओं तथा समाचार पत्रों ने इन समस्त पक्षपात-पूर्ण बिलों का घोर विरोध किया। यूनियन सरकार की चारों ओर निन्दा होने लगी। १२ सितम्बर १९१३ को सत्याग्रह की घोषणा की गई। अबके स्त्रियां और बच्चे भी सत्याग्रह में सम्मिलित थे। आन्दोलन ट्रांसवाल और नेटाल दोनो स्थानो मे व्यापक रूप से फैल गया। खानों के मज़दूरों ने काम छोड़ दिया। हज़ारों की संख्या मे लोग जेलों के लिए तैयार हो गए। ट्रांसवाल की सीमा मे बिना आज्ञा-पत्र (परवाना) के प्रवेश निषिद्ध था। गान्धी जी ने २०२७ पुरुष १२७ स्त्रियों तथा ५७ बच्चो को साथ ले ट्रांसवाल की ओर बिना आज्ञा पत्र के ६ नवम्बर १९१३ को विजय-यात्रा प्रारम्भ करदी। मार्ग मे सर्वप्रथम गाधी जी तथा कुछ अन्य महानुभाव पकड़े गए। पुन छोड़ दिए गए। वे फिर आकर टोली मे मिले। इस प्रकार मज़दूरो की सारी टोली गिरफ्तार हो गई। उधर श्री पोलक, केलेने, वेक आदि भी गिरफ्तार हुए। अब के इस पावन युद्ध में अंग्रेज़ तथा अन्य यूरोप वासियों ने भी सक्रिय सहयोग दिया। जेल मे गए। स्त्रियों पर भी दया नही दिखाई गई।

सन्धि-चर्चा

भारत से रुपयों की सहायता तो आ ही रही थी। साथ ही सत्याग्रह के इस अनोखे ढग को देखकर सबकी दृष्टि इसके अन्तिम परिणाम की ओर लगी हुई थी। गोखले के कथनानुसार श्रीएण्डरूज् और पियर्सन अफ्रीका गए। अब यूनियन सरकार को स्थिति की गम्भीरता का भास होने लगा। आत्माभिमान की रक्षा के लिए उसने एक कमीशन नियुक्त किया। गाधी, पोलक तथा केलेनबेक मुक्त कर दिए गए। एण्डरूज के भागीरथ प्रयत्न से दोनों दलों मे समझौता हो गया। फलतः २१ जनवरी १६१४ को गांधी जी ने निम्नलिखित शर्तें स्वीकृति के लिए सरकार के पास लिख भेजीं :—

(१) तीन पौण्ड का कर उठा लिया जाय।

(२) हिन्दू, मुसलमान इत्यादि के धार्मिक विधि से किए गए विवाह वैध समझे जाय।

(३) शिक्षित भारतीय इस देश मे प्रवेश पा सकें।

(४) यह विश्वास दिलाया जाय कि प्रचलित कानूनों पर इस प्रकार अमल किया जाएगा जिससे वर्तमान अधिकारों की हानि न हो।

शीघ्र ही उक्त पत्र का उत्तर मिला। उत्तर अधिकांश में सन्तोष-जनक था। बन्दी तुरन्त मुक्त कर दिए गए। कमीशन रिपोर्ट निकली। उसके अनुसार फलस्वरूप सरकार ने कानून बना कर—

(१) तीन पौण्ड कर वाला कानून रद्द कर दिया।

(२) जो विवाह भरत में वैध माने जाते थे वे यहां भी मान्य हुए।

(३) अन्य बातों का लिखित विश्वास दिलाया गया।

इस प्रकार १९०६ से जो कार्य गांधी जी के कुशल नतृत्व में चलहार था। वह १९१४ में सफलता के साथ समाप्त हुआ।

———

६

भारत में कार्य क्षेत्र

१६१४ मे दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह सग्राम को समाप्त कर गोखले की इच्छा से गान्धी जी ने इङ्गलैण्ड होकर घर जाने का विचार किया। जब ये मदिरा मे पहुँचे तो समाचार मिला—विश्वयुद्ध छिडने वाला है। इङ्गलैण्ड की खाडी में पहुँचते पहुँचते समाचार मिला कि युद्ध आरम्भ हो गया है। इन्हे रोक लिया गया। जल मे स्थान स्थान पर गुप्त मार्ग बनाए गए थे। उनमे से होकर उन्हे साऊथैम्टन पहुँचते हुए एक दो दिन की देरी हो गई। युद्ध का घोषणा ४ अगस्त को हुई। ये लोग ६ अगस्त को विलायत पहुँचे।

युद्ध मे भाग

गोखले इनके पहुँचने से पूर्व ही स्वास्थ्य सुधार के लिये इङ्गलैण्ड स फ्रास चले गए थे। पेरिस के साथ आवागमन का सम्बन्ध बद हो गया। बिना मिले ये आना नहीं चाहते थे। अब प्रश्न यह उठा कि इस बीच करें क्या ? इन्होंने सोचा विपत्काल मे सरकार की सहायता करनी चाहिये। भारतीय स्वयं-सेवक दल का सगठन किया और घायल सैनिकों की सेवा-शुश्रुषा मे व्यस्त हो गए। डाक्टरी शिक्षा के लिए डा० फेण्टली की देख रेख में क्लासें लगने लगीं। ८० स्वय सेवकों ने शिक्षा प्राप्त की। ६ सप्ताह के उपरात परीक्षा हुई। ७६ स्वयं-सेवक पास हुए। फिर उनको कवायद सिखाई गई।

भारत मे गोखले के साथ मातृभूमि में पदार्पण

गांधी जी जब बम्बई पहुँचे तो उनका धूम धाम से स्वागत किया गया। वहां से वह पूना गए। गोखले और भारत सेवक-समिति के सदस्यों ने उनका प्रेमपूर्ण स्वागत किया। सारे सदस्य पूना लाए गए। गोखले ने इच्छा प्रगट की कि ये भी महान् समिति के सदस्य बनें। ये तो चाहते ही थे। परन्तु कुछ सदस्यों की यह धारणा थी कि समिति के आदर्श और कार्य-प्रणाली इन से भिन्न हैं। इसलिये ये दुविधा मे पड़े कि गांधी जी को सदस्य बनाना चाहिये या नहीं। अस्तु, अभी सदस्यता स्थगित ही रही। गांधी जी ने पूना से राजकोट को प्रस्थान किया। उस समय वीरम गाव की ज़कात की जॉच से होने वाली कठिनाइयों की शिकायतें लोगों ने इन तक पहुचाई। वह बम्बई मे तात्कालीन गवर्नर और भावी भारत-वाइसराय लार्ड वेलिंगडन से इस सम्बन्ध में मिले। उन्होंने कहा—भारत सरकार की ओर से ही विलम्ब हो रहा है।" गवर्नर ने भारत सरकार से पत्र व्यवहार किया। बाद में ये वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड से मिले। वे इन बातों से सदा अनभिज्ञ रहते थे। उन्होंने तुरन्त टेलीफोन किया और वीरमगांव से काग़ज-पत्र मंगवाए और थोड़े दिनों बाद ज़कात रद्द कर दी।

गोखले का निधन

राजकोट से गांधी जी अपने साथियों से मिलने राजकोट गए। वे चाहते थे कि यहाँ कुछ अधिक काल तक निवास किया जाय। इसी अवसर

पर पूना मे गोखले के स्वर्गवास का हृदयविदारक समाचार प्राप्त हुआ। हृदय को अपार वेदना हुई। अपनी पत्नी तथा भतीजे स्व० मगनलाल के साथ पूना को चल पडे। कुछ काल वहाँ ठहर कर वे पुराने मित्र डा० प्राणजीवन मेहता से मिलने के निमित्त रंगून चले गये। वहाँ से आकर हरिद्वार मे कुम्भ के मेले पर स्वयं सेवक दल के साथ गए। महात्मा मुन्शीराम (सन्यासी होने पर स्वामी श्रद्धानन्द) जी को मिलने गए। उनसे और उनके गुरुकुल से बड़े प्रभावित हुए। इस सम्बन्ध मे वे लिखते हैं—

"पर्वत जैसे दीखने वाले महात्मा मुन्शीराम के दर्शन करने और उनके गुरुकुल को देखने जब मैं गया तो मुझे बहुत शान्ति मिली। हरिद्वार के कोलाहल और गुरुकुल की शान्ति का भेद स्पष्ट दिखाई देता था। महात्मा जी ने मुझपर प्रेमभरी दृष्टि डाली। ब्रह्मचारी लोग मेरे पास से हटते ही न थे।"

सत्याग्रह आश्रम की स्थापना

गाँधी जी के दक्षिण-अफ्रीका के फिनिक्स-आश्रम के साथी भारत वर्ष आ गए थे। गाँधी जी चाहते थे कि इनको साथ लेकर एक आश्रम स्थापित किया जाय। आश्रम के लिए स्थानों के सम्बन्ध मे अनेक व्यक्तियों से परामर्श होते रहे। स्वामी श्रद्धानन्द जी की सम्मति थी कि हरद्वार मे आश्रम खुले। कलकत्ते के कुछ मित्रो ने परामर्श दिया कि वैद्यनाथ धाम मे डेरा डाला जाय। परन्तु उनके अहमदाबादस्थ मित्रों की सम्मति हुई कि अहमदाबाद को आश्रम के लिए चुना जाय।

साथ ही उन्होने आश्रम के व्यय का भार अपने सिर ले लिया फलतः अहमदाबाद ज़िले के कोचरब नामक स्थान में मकान लिया और २५ मई १६१५ को आश्रम की नींव डाली। अब नाम रखने का प्रश्न खड़ा हुआ। सेवाश्रम, तपश्चर्याश्रम, आदि कई नाम सुझाए गए, परन्तु अन्त मे इसके खोलने के उद्देश्यानुसार 'सत्याग्रहाश्रम' नाम ही उचिम समझा गया। क्योंकि उनका उद्देश्य था। "सत्य की पूजा, सत्य का शोध करना और उसी का आग्रह रखना। दक्षिण अफ्रीका मे जिस पद्धति का उपयोग हम लोगों ने किया था, उसी का परिचय भारतवासियों को कराना। एवं हमे यह भी देखना था कि उसकी शक्ति और प्रभाव कहांतक व्यापक हो सकते हैं। इस लिए मैंने और साथियों ने 'सत्याग्रहाश्रम' नाम पसन्द किया। उसमे सेवा और सेवा-पद्धति दोनों का भाव स्वतः आ जाता था।"

आश्रम की आरंभिक स्थिति के सम्बन्ध मे महात्मा जी ने लिखा है—"आश्रम में इस समय लग भग तेरह तामिल लोग थे। मेरे साथ दक्षिण अफ्रीका से पॉच तामिल बालक आए थे। वे तथा यहा के लग भग पच्चीस स्त्री-पुरुष मिल कर आश्रम का आरम्भ हुआ था। सब एक भोजनशाला मे भोजन करते थे और इस प्रकार रहने का प्रयास करते थे, मानो सब एक कुटुम्ब के हों।"

इसमे अछूतों को भी प्रविष्ट किया जाता था। इस लिए सवर्ण हिन्दू लोगों द्वारा वहिष्कार इत्यादि की कितनी ही समस्याएं सुलझानी पड़ीं।

आर्थिक समस्या और ईश्वरीय सहायता

आश्रम के पास पैसा तो था ही नहीं, प्रभु भरोसे पर आश्रम की नाव निस्पन्द तथा निश्चल हो चल ही रही थी। अन्त मे एक दिन मगनलाल जी ने इन्हें नोटिस दिया कि अगले मास आश्रम के व्यय के लिए रुपये नहीं हैं। ईश्वर विश्वासी गाँधी ने धीरज से उत्तर दिया—"तो हम लोग अछूतों के मुहल्लों मे रहने लगेंगे।" प्रभु की इच्छा ऐसी हुई कि इस सूचना के कुछ ही दिन बाद प्रातःकाल के समय किसी बालक ने आकर सूचना दी कि बाहर एक मोटर खडी है। एक सेठ आपको बुला रहे हैं। गाँधी जी मोटर के पास गए। सेठ ने इनसे कहा—"मैं आश्रम को कुछ सहायता देना चाहता हू। आप लेंगे?" उत्तर मिला, "हाँ आप दें, तो मैं अवश्य लूंगा। और इस समय तो मुझे आवश्यकता है।"

"मैं कल इसी समय यहाँ आऊंगा, तो आप आश्रम में मिलेंगे?"

"हाँ"

सेठ घर गया। दूसरे दिन मोटर का भोंपू बजा। गाँधी जी बाहर गए। सेठ जी चुपके से १३०००) के नोटों की गठरी गाँधी जी को सौंप कर चलते बने। इस प्रकार एक वर्ष व्यय की निश्चितता हुई।

कुली प्रथा

१९१४ ई० म नेटाल के गिरिमिटियों पर से ३ पौण्ड का कर उठा लिया गया, परन्तु गिरमिट-प्रथा अभी भी नहीं हटी थी। १९१६ ई० मे भारत-भूषण महामना प०

मदनमोहन मालवीयजी ने इस प्रश्न को धारासभा मे उठाया था, और लार्ड हार्डिङ्ग ने उनके प्रस्ताव को स्वीकार करके यह घोषित किया था कि यह प्रथा 'समय आते ही' उठा देने का मुझे सम्राट् की ओर से वचन मिला है। परन्तु गान्धी जी चाहते थे कि यह कुप्रथा तो सहसा ही समाप्त हो जानी चाहिए। गान्धी जी ने देखा कि लोगो मे पर्याप्त जागृति है और अब यह प्रथा बन्द की जा सकती है। इन्होंने पत्रों मे इसके विरुद्ध प्रचार आरम्भ कर दिया और इधर सब नेताओं से परामर्श लेने लगे। इनके मन में प्रश्न उठा कि "क्या इससे सत्याग्रह का कुछ उपयोग हो सकता है ? मुझे उसके उपयोग मे तो कुछ सन्देह नहीं था, परन्तु यह बात मुझे नही दिखाई पड़ती थी कि उपयोग किया कैसे जाय ?" १९१७ मे महामना मालवीय जी ने गिरमिट प्रथा को सदा के लिए उठा देने के प्रस्ताव को धारा-सभा मे रखने की आज्ञा मांगी, परन्तु वायसराय ने स्वीकृति न दी। ३१ जुलाई तक की अवधि सरकार को दे दी गई। सरकार झगड़ा मोल लेना नहीं चाहती थी, इसीलिए उसने उक्त अवधि से पूर्व ही गिरमिटिया या कुली प्रथा को बन्द करने की घोषणा कर दो।

नील का दाग या 'तीनकठिया'

गान्धी जी के प्रयत्न से कॉंग्रेस क उभय--नरम और गरम दल मिलकर एक हो गए थे। १९१६ ई० के दिसम्बर मास मे लखनऊ मे महासभा के अधिवेशन मे दोनों का परस्पर समझौता

हो गया। इस समय बिहार मे 'चपारन' स्थान मे नील की खेती होती थी। वहाँ के किसानों को कानून से बाधित कर अपनी ही खेती मे से ३-२० भाग मे असली मालिक के लिए नील की खेती करनी पड़ती थी। नील की खेती करने वाले गोरे थे। इसे वहाँ 'तीन कठिया' कहते थे। २० कट्ठे का वहाँ एक एकड था और उसमे से ३ कट्ठे नील बोना पडता था। इसीलिए उस प्रथा का नाम 'तीन कठिया' पड गया था।

लोगों के अग्रह से गान्धी जी वहाँ पहुचे। गोरो के किसानों पर किए जाने वाले अत्याचारो की सूक्ष्मता से जाँच-पड़ताल की। विदित हुआ 'तीन कठिया' प्रथा से निर्धन किसान बहुत पीड़ित हो रहे हैं।

नोटिस

गान्धी जी पटना गए। वहाँ श्री राजेन्द्र बाबू और ब्रजकिशोर बाबू से परामर्श करने के उपरान्त १५ अप्रैल १६१७ ई० को यह मुजफ्फरनगर पहुचे। वहाँ इन्होने सार्वजनिक सभा में एक व्याख्यान भी दिया। १६ अप्रैल को तिरहुत ज़िले के चम्पारन नामक भाग को देखने गए। तिरहुत के मोतीहरा नामक नगर मे भी गए। उसके चारों ओर निर्धन किसानों की निर्धनता के नग्न दृश्य देख कर इनका हृदय करुणा से पसीज गया। इसी बीच पुलिस सुपरिन्टेण्डेण्ट का सिपाही जिला मजिस्ट्रेट का नोटिस लेकर गांधी जी के पास पहुचा। नोटिस चपारन छोडने के लिए निकाला गया था। नोटिस के उत्तर मे गाधी ने लिखा कि मैं चम्पारन छोड़ना नही चाहता, क्योंकि

मैने आगे जाकर विवरण-सहित जाच करनी है। आज्ञा उल्लघन करने के कारण दूसरे ही दिन न्यायालय मे उपस्थित होने का समन मिला। अभियोग चला। गाधी जी ने वायसराय तथा मालवीय आदियों को तार द्वारा सारी स्थिति से अवगत कर दिया। परिणामस्वरूप केन्द्रीय सरकार की आज्ञा मिली कि मुकद्मा वापिस ले लिया जाय और गाधी जी को स्वतंत्रता पूर्वक इलाके की देख भाल की छूट दी जाय। उन्होंने परिस्थिति का गहरा अध्ययन किया। लगभग ७००० किसानों के बयान लिए।

जांच कमेटी

गांधी जी के इस गोरों के विरुद्ध खड़े किए आन्दोलन से गोरो मे उत्तेजना फैल गई। गांधीजी के काम मे रोड़ा अटकाने की निष्फल कुचेष्टायें की गईं। गांधी जी का कार्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। वे इस संबध मे लैफ्टेनैंट गवर्नर सर एडवर्ड गेट से भी मिले। उन्होंने गांधी जी को जांच समिति की नियुक्ति का वचन दिया। परिणामस्वरूप सर फ्रैंक स्लाई की अध्यक्षता मे समिति का निर्माण हुआ। गांधी जी भी सदस्यों मे से अन्यतम सदस्य थे। पुनः जाच पड़ताल और छान बीन प्रारम्भ हुई। सचाई का सूर्य झूठ के कुहिरे से कब तक ढका जा सकता था? सचाई प्रगट हुई। समिति ने किसानो की सारी शिकायते यथार्थ बताईं। साथ ही सर्व सम्मति से यह सिफ़ारिश की कि अनुचित रीति से उपलब्ध रुपयों का कुछ भाग किसानों को लौटा दिया जाय और भविष्य

के लिए 'तीन कठिया' की प्रथा बन्द कर दी जाय। गोरों के कड़े विरोध के होने पर भी सर एडवर्ड गेट की दृढ़ता के कारण कानून बन गया। इस प्रकार चम्पारन के किसानों की समस्या सुलझी और उनके सारे कष्ट दूर हुए। इस आदोलन से वहां के किसानों मे उत्साह और जागृति का सचार हुआ। गोरो की अधेरगर्दी का अंत हुआ। गांधी जी की ख्याति का सारे भारत में प्रसार होने लगा और वे भारत के प्रथम श्रेणी के अनथक, निष्काम-सेवक नेताओं मे गिने जाने लगे।

मजदूरों से सपर्क

गान्धी जी चम्पारन जॉच-समिति का कार्य समाप्त कर ही रहे थे कि श्रीमती अनसूया बहन का पत्र उनके 'मजदूर-सघ' के सम्बन्ध मे प्राप्त हुआ। मजदूरो और मालिको मे मजदूरी के सम्बन्ध मे संघर्ष चल रहा था। मजदूरो को वेतन कम होने की शिकायत थी। मजदूरो का पथप्रदर्शन करने के लिये गान्धी जी को अहमदाबाद आमन्त्रित किया गया था। चम्पारन में अनेक पाठशालाए आदि खोली थीं। उनका सुचारु रूप से प्रबन्ध अभी नही होने पाया था कि अहमदाबाद को प्रस्थान करना पड़ा। कई पाठशालाएं चलती रहीं, परन्तु कुछ एक बन्द हो गईं।

अस्तु, गान्धी जी अहमदाबाद पहुंचे। मजदूरों का काम हाथ मे लिया। इन्होंने मजदूरों को हड़ताल कर देने की सम्मति दी। हड़ताल प्रारम्भ करने के पूर्व गान्धी जी ने निम्नलिखित शर्तें मजदूरों से मनवा लीं :—

(१) किसी भी अवस्था में शान्ति भंग न की जाय।

(२) जो काम पर जाना चाहें उनके साथ किसी प्रकार का बलात्कार न किया जाय।

(३) मज़दूर भिक्षान्न न खाएँ।

(४) हड़ताल चाहे कभी तक चले, पर वे दृढ़ रहें और जब रुपया-पैसा न रहे तो दूसरी मजदूरी करके पेट पाले।

अगुआ लोग इन शर्तों को समझ गए और उन्हें ये रुचिकर भी दीखी। गान्धी जी साबरमती के किनारे एक वृक्ष के नीचे सैकड़ों ही मजदूरों को एकत्रित कर अहिंसा के सिद्धान्तों के आधार पर हड़ताल के नियम आदि के सम्बन्ध में प्रतिदिन समझाया करते। इस हड़ताल के सिलसिले में इनका वल्लभभाई पटेल से भी परिचय हुआ। हड़ताल प्रारम्भ हुई। पहिले पहल तो मजदूरों ने बड़ा उत्साह दिखाया, पर उत्तरोत्तर शिथिलता आती गई। विवश हो गाधी जी को अपने अमोघास्त्र—उपवास—प्रयोग करना पड़ा। अब तो मजदूर और मालिक दोनों छटपटाए और सन्मार्ग की ओर आए। अन्त में हड़ताल के २१ वें दिन आनन्द शंकर ध्रुव को पंच नियत कर उभय पक्षों ने समझौता कर लिया और हड़ताल और उपवास दोनो समाप्त हुए। मिठाइया बटीं और सर्वत्र आनन्दोत्सव मनाए गए।

साबरमती आश्रम की स्थापना

इधर यह सब हो रहा था, उधर कोचरब (जहाँ सत्याग्रह आश्रम था) में महामारी का प्रकोप फैल रहा था। इसलिए

आश्रम को स्थानान्तरित करने की आवश्यकता अनुभव हुई। म० गान्धी जी लिखते हैं 'इस महामारी को मैंने कोचरब छोड़ने का नोटिस समझा।' कुछ प्रयत्न किया तो साबरमती जेल के पास आश्रम के लिए स्थान मिल गया। पहिले तो खेमे डालकर ही अस्थायी रूप से आश्रम की वहीं स्थापना की गई।

खेडा में सत्याग्रह

घटनाओं का चक्र कुछ विचित्र ही ढंग से चल रहा था। एक घटना के उपरान्त तत्काल ही दूसरी आन उपस्थित होती थी। गाधी जी को तनिक भी सम-लने या स्वास्थ्य सुधारने का अवसर न मिलता। इधर मजदूरों के काम से निवृत्त हुए ही थे कि खेड़ा जिले मे फसलों के नाश की समस्या सामने आई। किसानों की दशा शोचनीय थी। खाने के लाले पड़ रहे थे, इस पर भी भूमिकर अनिवार्यरूप से देना था। कष्टो की सीमा न रही। इस सम्बन्ध मे उन्हें अमृत-लाल ठक्कर ने जॉच करके रिपोर्ट की था। धारासभा मे भी इस प्रश्न पर विचार चल रहा था। सरकार के पास एकप्रतिनिधि मण्डल भी भेजा गया। इस समय गाधी जी गुजरात सभा के प्रमुख थे। सभा की ओर से उन्होंने कमिश्नर तथा गवर्नर को इस सवम्ध में प्रार्थनापत्र भेजे तथा तार दिए। उत्तर मे धमकिया मिलीं। लोगों की मागें उचित और स्पष्ट थीं। नियमानुसार फसल के चार आने से कम होने पर भूमिकर क्षमा कर देना चाहिए था। सरकारी अधिकारी झूठ-मूठ ही सिद्ध किया चाहते थे कि

फसल चार आने से अधिक हुई है। लोगों ने इसके प्रमाण दिए, पर अत्याचारीसरकार के कानों पर इतने से ही कब जूं रेंगने लगी। सारी दौड़धूप के उपरान्त गांधी जी ने सत्याग्रह की सम्मति दी।

लोगों ने सत्याग्रह के नियमानुसार कार्य करने की प्रतिज्ञा की। सदा की भांति ग्राम ग्राम मे घूम कर लोगों को इस अमोघ शस्त्र के चलाने के रग-ढंग तथा प्रभाव के सम्बन्ध मे समझाया गया। आन्दोलन शनैः शनैः उग्ररूप धारण करता गया। सरकार ने दमनचक्र के नीचे सबको रौदना चाहा। लोगों के ढोर वेचकर भूमिकर वसूल किया जाने लगा। घर का माल असबाव उठाया जाने लगा। कही कहीं थोड़ी बहुत जो कुछ फसल थी वह भी ज़ब्त की गई। लोगों की पकड़ धकड़ भी शुरू हो गई। किन्तु सत्याग्रह के सुदर्शनचक्र के सामने दमनचक्र की विफलता देख सरकार कुछ झुकी। समझौता हुआ। निर्धन किसान भूमिकर से सर्वथा मुक्त कर दिए गए और धनी किसानों को कर देना पड़ा। इस पर सत्याग्रह समाप्त हुआ। इससे गुजरात के किसानों में जागृति आई और वे संगठन की अद्भुत शक्ति समझ गए।

रंगरूटों की भर्ती

यह विश्व के प्रथम महायुद्ध का अवसर था। यूरोप जीवन-मरण के भयावह रण मे उलझा हुआ था। उसके सम्बन्ध मे वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड ने दिल्ली मे नेताओं की सभा बुलाई। गान्धी जी से भी सभा मे उपस्थित होने का आग्रह किया गया। ये भी सभा

मे उपस्थित हुए। वायसराय की यह तीव्र इच्छा थी कि वे सैन्य-भरती के सम्बन्ध मे प्रस्ताव का अनुमोदन करें। उन्होंने हिंदुस्तानी मे बोलना चाहा। वायसराय मान गए। लोगों ने ऐसे स्थान मे मातृभाषा के प्रयोग के प्रथम सफल प्रयास के लिए बधाई दी।

सभा मे लोकमान्य तिलक, अली भाई आदि नेताओं की अनुपस्थिति गाधी जी को खटकी। रगरूट भरती करने में सरकार की सहायता का निर्णय हुआ। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए देश को आपत्ति से बचाना आवश्यक है। इसलिए उसकी रक्षा के लिए अंग्रेजों की सैनिक व आर्थिक सहायता करना आवश्यक समझा गया। कइयों को तो यह बात बहुत ही बुरी लगी। वे अंग्रेजों की सहायता के विरुद्ध थे।

सर्व प्रथम गान्धी जी रगरूट भरती के लिए खेड़ा मे गए। यहाँ इनकी पुन वल्लभ भाई से भेंट हुई। इस कार्य मे लोगों ने बड़े सकोच के साथ गान्धीजी के कथनानुसार सैनिक व आर्थिक सहायता देना स्वीकार किया। कहीं कहीं ग्रामों मे लोग इतने बिगड़ बैठे कि इन्हें सवारी तक न मिली और पैदल ही बीसियों मीलों की यात्रा प्रति दिन करनी पड़ती। तथापि लग्न से कार्य किया तो सफलता भी मिली। साथ ही पत्र द्वारा सरकार से युद्धोपरान्त भारत को गृहस्वतन्त्रता (Home Rule) देने का वचन पक्का करवा लिया।

मृत्यु शय्या पर

रंगरूटों की भरती के कार्य में ये इतने थक गए थे कि स्वास्थ्य दिन प्रति दिन गिरता ही गया। दूसरे इन दिनों दूध घी आदि पशुओं से प्राप्य भोजन का भी परित्याग कर रक्खा था। कुछ फलाहार और भुनी हुई मूंगफली को कूट कर उसमे गुड़ मिला कर नीवू के पानी के साथ लिया करते थे। पेचिश से पीड़ित हो गए। उस पर त्योहार वाले दिन धर्मपत्नी के आग्रह से कुछ अपथ्य करने से पेट मे दर्द हो गया। पेट मे मरोड़ों के उठने के कारण शरीर इतना दुर्वल हो गया कि जीवन की आशा न रही। एक मैडिकल कालिज के विद्यार्थी ने हिम के वाह्य उपचार के द्वारा कुछ स्वस्थ किया फिर धीरे २ स्वास्थ्य ठीक होता गया। विश्व-युद्ध समाप्त हो चुका था। जर्मनी पूरी तरह परास्त हो गया था। इस लिये अब इनके कन्धो पर से सैन्य-भरती का का भार तो टल गया था।

बकरी का दूध आरम्भ

इनका स्वास्थ्य अभी भी चिन्ताजनक दशा मे था। इनका आहार पौष्टिक न था, इस लिये शारीरिक क्षति-पूर्ति कैसे हो सकती थी? अब इनके स्वास्थ्य की देख रेख का काम श्री शकरलाय जी ने अपने हाथ में लिया। उन्होने गान्धी जी को डा० दलाल को दिखाया। उनकी तत्काल निर्णय करने की शक्ति ने गान्धी जी को मोह लिया। डाक्टर महोदय वोले—जब तक आप दूध न लेगे तब तक आप का शरीर नहीं पनपेगा। शरीर की

पुष्टि के लिये तो आप को दूध चाहिए और लोहे व सखिये के इन्जैक्शन लेने चाहिये। यदि आप इतना करें, तो मैं आप का शरीर फिर से पुष्ट करने का वचन देता हूं।

"आप इन्जैक्शन भले ही दें, पर मैं दूध न लूंगा।"

"आप की दूध की प्रतिज्ञा क्या है ?"

"गाय-भैंस के फूंका लगाकर दूध निकालने की क्रिया की जाती है। इससे मुझे दूध के प्रति तिरस्कार हो आया, और यह तो मैं सदा मानता ही था कि वह मनुष्य का भोजन नहीं है, अतः मैंने दूध छोड़ दिया है।"

कस्तूरबा झट बोल पड़ीं, "तब तो बकरी का दूध लिया जा सकता है।"

डाक्टर ने कहा "बकरी का दूध लें, तो मेरा काम चल जायगा।"

इस प्रकार सत्याग्रह की लडाई के मोह ने गान्धी जी में जीवन का लोभ उत्पन्न किया। अभी भारत की नौका को पराधीनता समुद्र से पार लगाने का महान् कार्य अधूरा पड़ा था। अतः बकरी के दूध ने कुशल नाविक को जीवनदान दे उद्देश्य-पूर्ति मे बड़ी सहायता की।

रोलट एक्ट

इसी अवसर पर समाचार पत्र पढ़ते हुए गाँधी जी ने बड़े खेद के साथ रोलट समिति की रिपोर्ट पढ़ी। उसमे जो सिफारिशे की गई थी उनसे वे चौंक पड़े।

सरकार ने युद्ध में सेवाओं के 'पुरस्कार रूप से' हत्या-काण्डों तथा षड़यंत्रों का बहाना बना जनता के अधिकारों में और कमी करने का निश्चय किया था। रौलट कमेटी ने धारासभा में रौलट बिल रक्खा। जनता की आशालतिका पर यह हिमपात था। उसने आज के दिन की बड़ी प्रतीक्षा की थी। पर ऐसे ही समय में निरभ्र वज्रपात से जनता छटपटा गई। भारत को पुरस्कार मिलने के स्थान पर अनाशासित दण्ड मिला। ऐसे अत्याचार अन्याय और अविवेकशीलता के उदाहरण इतिहास में कदाचित ही मिलते हों। अस्तु।

"अब तो कुछ करना चाहिए," यही शब्द मुँह से निकले। "अब क्या किया जा सकता है?" पास बैठे बल्लभ भाई पटेल ने पूछा। "यदि समिति के परामर्शानुसार विधान (कानून) बन भी जाय, और इसके लिये प्रतिज्ञा लेने वाले थोड़े भी मनुष्य मिल जाँय तो हमें सत्याग्रह करना चाहिए। मै रोग शय्या पर न होता तो मै अकेला ही संघर्ष मे कूद पड़ता और यह आशा रखता कि पीछे से और लोग भी साथ मिल जायेंगे" दृढ़ता से गांधी जी ने कहा।

फलस्वरूप गान्धी जी के सम्पर्क मे आने वाले समान विचारो के व्यक्तियों की एक छोटी सी सभा निर्मित हुई। उस में मुख्य मुख्य बल्लभ भाई पटेल, श्रीमती सरोजनी नायडू, स्व० उमर सुवानी, श्री शकरलाल बैंकर, श्रीमती अनसूया बहन आदि थे। इन सब लोगो ने प्रतिज्ञापत्र भरे। सत्याग्रह समिति

का संगठन किया गया। पत्रपत्रिकाओं द्वारा द्रुतगति से प्रचार होने लगा। कार्यकेन्द्र बम्बई था। सत्याग्रह समिति के प्रधान गान्धी जी थे। सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों को दृढता से पालन करने को कहा गया। अन्य स्थानो में भी विरोध का सफल आयोजन किया गया। सरकार ने इस भारत-व्यापी विरोध की भी उपेक्षा की।

गान्धी जी ने वायसराय को लिखा, पर उनके कानों पर जूं तक न रेंगी। गान्धी जी ने जनता को जगाने के लिए देश पर्यटन प्रारम्भ किया। सभाओं की धूम थी। सत्याग्रह का रहस्य सबको समझाते, गान्धी आगे बढ़ते जाते। ६ अप्रैल का दिवस सत्याग्रह के लिए नियत किया गया। इस दिन के कार्य-क्रम मे हड़ताल रखना, उपवास करना, सभा करना तथा इस विधान के विरोध मे प्रदर्शन करना सम्मिलित थे। बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता आदि प्रमुख नगरों मे जनता-जनार्दन का उत्साह देखते ही बनता था। बम्बई मे स्थित केन्द्रीय सत्याग्रह समिति ने ज़ब्त पुस्तकें बेचकर विधान तोड़ा। गान्धी जी ने बिना आज्ञा लिए ही 'सत्याग्रही' नामक पत्र निकाला। गान्धी जी की सर्वोदय और 'हिन्द स्वराज्य' नामक पुस्तकों का पर्याप्त विक्रय हुआ। लोगों ने ५०-५० रुपयों मे इनकी एक २ प्रति खरीदी और यह आय सत्याग्रह के कोश मे गई।

पंजाब प्रवेश-निषेध

पहले सत्याग्रह के प्रारम्भ करने की तिथि ३० मार्च को निश्चित हुई थी, पर उसे बदल कर ६ अप्रैल रक्खी गई। तिथि-परिवर्तन की सूचना दिल्ली में देर से पहुंची। फलतः वहाँ प्रथम घोषित तिथि ३०-मार्च को ही हड़ताल हुई थी। तभी से दिल्ली और पंजाब के नेताओं ने आग्रहपूर्वक गान्धी जी को आने के लिए लिखा। तदनुरोध से गांधी जी ७ अप्रैल को बम्बई से दिल्ली को चल दिए। १० ता०को प्रातःकाल के समय कोसी में ट्रेन में ही शान्ति-भंग के भय के बहाने से पंजाब सरकार ने इन्हें पंजाब दिल्ली की सीमा में प्रविष्ट न होने का आज्ञा-पत्र दिया। उन्होंने आज्ञा भंग की। परिणामस्वरूप गिरफ्तार हुए और बंबई लाकर मुक्त कर दिए गए। अब उन्हें बंबई प्रांत तक ही अपना कार्य सीमित रखने का आदेश-पत्र मिला। परंतु इनकी गिरफ्तारी से देश में हलचल मच गई। कई स्थानों पर झगड़े भी हुए, जो इनके अहिंसा सिद्धांत के विरुद्ध थे। यह देख इन्होंने नियततिथि पर आंदोलन स्थगित कर दिया। इससे कई व्यक्ति अप्रसन्न भी हुए, पर ये सिद्धांतों के पक्के थे। आत्म-शुद्धि तथा लोगों को सुपथ पर लाने के उद्देश्य से छोटा सा तीन दिन का उपवास भी रक्खा।

———

पंजाब-दमन-चक्र

सैनिक शासन

अन्य भारतीय प्रांतों के अनुसार पजाब मे भी स्वतत्रता की लहर वेग तथा द्रुत गति चल रही थी। सरकार ने सैनिक बल का प्रयोग कर इसे जड़ से उन्मूलन करना चाहा। क्रिया और प्रतिक्रिया के निमयानुसार इसका परिणाम विकटतर सघर्ष हुआ। सरकार ने अत्याचारों के परीक्षणों मे कोई कसर उठा न रक्खी। अमृतसर में जलियाँवाला बाग मे शात नागरिकों की एक विशाल सभा हुई। निर्दोष आबालवृद्ध नर-नारी सभी उपस्थित थे। जेनरल डायर ने मशीनगन ला खड़ी की। निःशस्त्र युवक,युवतियों,बच्चों तथा दुग्धपान कराती माताओं तथा दूध पीनेवाले शिशुओं को गोलियो से भाड मे डाले चनों के समान भूनना आरभ किया। ऐसा प्रतीत होता था कि मध्ययुग का वर्बर शासन पजाब भूमिपर विकरालताका आकार धारणकर अवतीर्ण हुआ है। दुःशासनसे पीड़ित प्रजा द्रौपदीमोहन के आगमन की आशा लगा रही थी। ब्रिटिश सरकार और डायर की काली करतूतोंकी कालिख विश्वभर मे अमावस्याकी अर्धरात्रि के अधकार के समान फैल गई। आँसू पोंछने के लिए सरकारने जाँच कराने को 'हन्टर कमेटी' बिठाई। काँग्रेस ने इसका भी वहिष्कार किया। महासभा की ओर से स्व० मोतीलाल जी, देश बन्धु, गाँधी जी और अब्बास तैयब और श्रीजयकर की एक स्वतंत्र कमेटी हुई।

इस समिति की व्यवस्था का भार गांधी जी पर ही पड़ा। इसके सदस्य जॉच के लिए भिन्न भिन्न स्थानों मे बटे। इससे गॉधी जी को पंजाब के देहातों को देखने तथा लोगों से निकट सम्पर्क स्थापित करने का अच्छा अवसर मिला। इन्होने पजाब की स्त्रियों की श्रद्धा और सेवा-भाव की विशेष रूप से सराहना की है। अस्तु, गॉधी जी को जॉच समिति की रिपोंट तैयार करने का काम सौपा गया। यह रिपोंट अक्षरशः तथ्यानुसारिणी प्रमाणित हो चुकी है और अभी तक भी इसकी कोई बात असत्य सिद्ध नही हुई। इसके सैनिक-अत्याचारों के हृदय-विदारक दृश्यों के चित्र तो पाषाण-हृदयों को भी द्रवीभूत कर देते हैं। इसमें ऐसे ऐसे अमानुषिक और रोमाचकारी कृत्यो तथा अत्याचारों का पता लगाया गया था जो विश्व भर की मानव जाति के इतिहास मे घृणिततम घटनाए समझे जाएंगे।

अत्याचारी का सिर झुका

सैनिक शासन के अनुसार हजारों पजाबियों को जेलों में ठूसा गया। विविध प्रकार से आतंक जमाने के प्रयत्न परखे गए, पर दृढ़ जनता को झुकाने मे एक भी सफल न हुआ। सार्वजनिक विरोध के कारण सरकार को अपनी नीति मे परिवर्तन करना पड़ा। फलतः दिसम्बर के पूर्व ही बहुत से बन्दी मुक्त कर दिए गए। उधर नवीन सुधारो की घोषणा हुई। परन्तु वह कॉग्रेस को मान्य न थे। तथापि गॉधी जी का श्री माण्टेगू मे विश्वास था। इधर सरकार ने महा-

सभा के पहिले बंदी तथा अली-बधुओ को मुक्त कर दिया था। इससे महात्मा गाँधी जी ने समझा कि सरकार को अपने कार्यों पर पश्चात्ताप हो रहा है। इसलिए अमृतसर काँग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर सुधारों के अ र्याप्त होने पर भी उन्होंने उनका समर्थन ही किया। देशबन्धु तिलक आदि नेता थे तो विरुद्ध,पर प्रस्ताव मे कुछ सशोधन हो जाने से सब सहमत हो गए थे।

गाँधी जी का सरकार के पश्चात्ताप का विश्वास अधिक देर न रह सका। उन्होंने देखा कि खिलाफ़त के विषयमे मुसलमानों के साथ अन्याय किया गया है और दूसरी ओर मानव पिशाच डायर की नि दा के स्थान परविलायत मे प्रशसा की गई है। यही नहीं, वरन् उसका स्मारक बना कर उसे अमर बनाने के प्रयास किए जाने लगे। डायर को विलायत मे स्थान स्थान पर भारत मे िये कार्य के लिए थैलियाँ भेट की जाने लगीं। यह देख लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही। कांग्रेस का नए रूप से सगठन किया गया। १९२० मे महासभा का विशेप अधिवेशन कलकत्ते मे रक्खा गया। गाँधी जी ने उसमे असहयोग आदोलन का कार्य-क्रम उपस्थित किया। जो पास हो गया। दिसम्बर मे नागपुर में महा सभा का वार्पिक अधिवेशन हुआ। उसमे काँग्रेस ने असह-योग आँदोलन के कार्यक्रम पर अपनी स्वीकृति की मोहर लगा दी। परिणामस्वरूप १९२० से नागपुर काँग्रेस अधिवेशन के उपरॉत भारत की स्वतत्रता के इतिहास मे स्वावलम्बन के एक नवीन युग का श्री गणेश हुआ।

असहयोग-आन्दोलन

लोगो मे जागृति

खिलाफ़त आंदोलन मे सक्रिय व प्रमुख भाग लेने से गाँधी जी मुसलमानो में भी सर्वप्रिय वन गए थे। उनको हिन्दू मुसलमान दोनों का ही समर्थन प्राप्त था। इस प्रकार बिना किसी धर्म व जाति पाति के भेदभाव से महात्मा गांधी सबके माननीय नेता बन गए थे। उच्च आदर्श व धार्मिक जीवन और उनकेप्र भावशाली व्यक्तित्व ने लोगो को बलात् इनकी ओर आकृष्ट किया। अब वे प्रत्येक भारतवासी के प्रेम तथा श्रद्धा के पात्र बन गए थे। सभी देशो के व्यक्ति इनसे उपकृत हो चुके थे। इस निस्वार्थ निष्पक्ष सेवाभाव तथा उग्रतपस्या का प्ररिणाम यह हुआ कि जिस किसी आंदोलन मे इनका हाथ रहता, उसे देश वेद-वाक्यवत् प्रामाणिक समझने लगा। इनके आंदोलनों से सार्वजनिक जीवन मे गंगा की धारा-वत् जागृति प्रवाहित हुई। मृतप्राय-जाति जी उठी। जागृति को बाढ़ के आगे कोई टिक न सका। इसकेमोहक प्रभाव से कोई अछू-ता न बचा। त्यागी लँगोटीधारी जादूगर की वाणी मे वह मोहिनी शक्ति आई कि लोगों ने इनके कथन पर प्राणपण लगादेने तक की बाज़ी लगाई। अन्य वस्तुओं के त्याग की तो गणना ही क्या ? अनेक वकीलों ने वकालतों को ठुकराकर इनका अनुसरण किया, विद्यार्थियों ने स्कूल कालिजों को त्याग देश का काम प्रारम्भ

किया, सरकारी क्लर्कोंने नौकरिया छोड़ दी। सरकारी उपाधिप्राप्त महानुभावों ने उपाधियाँ लौटा दीं। इसी बीच प्रिंस ऑव वेल्सभारत आए। उस समय लोगों ने प्रदर्शन किए और हड़तालें हुईं। हजारों की सख्या मे सत्याग्रही बदी बनाए गए। गाधी जी के अहमदाबाद से निकलने वाले 'नवजीवन' और 'यंगइडिया' ने व अन्यान्य पत्रों ने इस सत्याग्रह का खूब प्रचार किया। सरकार के नाकों दम आ गए। असहयोग आदोलन जर्मन युद्ध से भी अजेय व भयानक बन गया। जेले बदियों से भर गई। कारा-गार घृणा के नहीं, वरन् पूजा के आश्रम बन गए। बदियो को पवित्र समझा जाने लगा।

इस बीच मालवीय जी ने वायसराय से मिलकर समझौते का प्रयत्न किया। परतु वायसराय अपने हठ पर डटे रहे। सधिचर्चा असफल रही। १६२१ मे कॉग्रेस का अधिवेशन अहम-दाबाद मे हुआ। उसमें महात्मा गाधी जी को सत्याग्रह आदोलन का सर्वेसर्वा (डिक्टेटर) बना दिया गया। १४ जनवरी १६२२ ई० को बम्बई मे नेताओ की कान्फरेस हुई। गाधी जी भी सम्मिलित हुए, पर विशेष लाभ इससे भी कुछ न हुआ। अतती-गत्वा गाधी जी ने बारदोली मे सत्याग्रह-सग्राम आरम्भ करने के निश्चय की सूचना देते हुए भारत सरकार को ललकारा।

बारदोली सत्याग्रह स्थगित

बारदोली मे सत्याग्रह की तैयारिया होने लगी। युक्तप्रात के गोरखपुर जिले मे हत्याकाड प्रारम्भ हो गए। उत्तेजित जनता

ने पुलिस के अत्याचारों से संत्रस्त होकर थानों को ही अग्निसात् करना आरम्भ कर दिया। पुलिस के २२ सिपाही जान से मारे गए। जनभावना के इंजन के पहिए कुछ पटड़ी से विच्युत देख दूरदर्शी संचालक (ड्राइवर) घबराए। वे नाश कब देख सकते थे जब कि सवार उनके भरोसे बैठे निश्चिंत थे? अन्तरात्मा ने विद्रोह किया। अहिंसा की गाड़ी के रोध के लिए पड़े हिंसा के पत्थर पटड़ी से हटाने होंगे। मनःशोध भी आवश्यक था। आदोलन रोक दिया। इस प्रकार बारदोली सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया।

गिरफ्तारी

१० मार्च, १६२२ को शुक्रवार के दिन साबरमती आश्रम मे 'यग इण्डिया' के प्रकाशक श्री शङ्करलाल जी बैंकर के साथ म० गाधी गिरफ्तार कर लिए गए। ११ तारीख को पेशी हुई। सेशन जज के न्यायालय मे अभियोग चला। १८ मार्च को सेशन जज श्री सी० एम० ब्रूमफील्ड के सामने इन्हे उपस्थित किया गया। वे इनके दर्शन से अपने आपको कृतकृत्य समझने लगे। इस अभियोग की तुलना ईसामसीह के अभियोग से की जाती है। महात्मा जी ने दोष स्वीकार किया। विवश हो अनिच्छा से ही जज को ६ वर्ष के कारावास का दण्ड देना पड़ा। अब गांधी जी ने कारावास को अपने पवित्र आचरण तथा सत्याग्रह की तपस्या से मंगलकारी तपोवन बना दिया। लोग दर्शनार्थ जाते। बापू के प्रति लोगों की श्रद्धा दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ गई।

BAPUJI
12 4 1930

दाण्डी कूच

७

दाँडी-कूच

स्वतन्त्रता दिवस

१९२९ के दिसम्बर मे लाहौर मे कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ था उसमे पूर्ण स्वराज्य की घोषणा कर दी गई थी। १ जनवरी १९३० को प० जवाहरलाल ने 'इन्किलाब जिन्दाबाद' के नारों के बीच मे स्वतन्त्रता का झण्डा लहरा दिया। जनता के उत्साह का पारावार न था। कांग्रेस ने निश्चय किया कि हर वर्ष २६ जनवरी का दिन "स्वतन्त्रता-दिवस" के रूप मे मनाया जाय और उस दिन स्वतन्त्रता की प्रतिज्ञा गम्भीरता से की जाया करे। सो २६ जनवरी १९३० को अपरिमित उत्साह के साथ देश भर मे स्वतन्त्रता-दिवस मनाया गया। हर भवन, हर घर, हर कुटिया स्वतंत्रता की प्रतिज्ञा ध्वनि से गूंज उठी।

लार्ड इरविन को पत्र

महात्मा गांधी ने लार्ड इरविन को एक पत्र मे लिखा कि यदि आप हमारी मांगों को स्वीकारकर लेंगे तो सविनय अवज्ञा की ध्वनि आपके कानों मे न पड़ेगी और कांग्रेस जी-जान से गोलमेज़ कान्फ्रेंस मे भाग लेगी। विशेष मांगें ये थीं —

१—शराब बन्द कर दी जाय।

२—एक्सचेंज का अनुपात घटा कर एक शिलिंग चार पेंस कर दिया जाय।

३—भूमि का लगान ५० प्रतिशत कम कर दिया जाय और इसे धारा-सभा के आधीन कर दिया जाय।

४. नमक का कर हटा दिया जाय।

५. आरंभ मे सेना का व्यय ५० प्रतिशत कम किया जाय।

६ बडे-बड़े वेतन पाने वालों के वेतनों मे आधे के लगभग कमी की जाय।

७. राजनीतिक वदियों को छोड़ दिया जाय।

८. खुफिया पुलिस का विभाग वंद किया जाय।

६ आत्म-रक्षा के लिए वंदूक आदि के लाइसेंस दिए जायं।

१०. विदेशी वस्त्र पर प्रतिवध लगाए जायं।

वाइसराय का उत्तर इतना असंतोपजनक था कि महात्मा जी ने लिखा—"मैंने घुटने टेक कर मॉगी तो रोटी थी परन्तु मिले पत्थर। अंग्रेज़ी राष्ट्र शक्ति से ही झुकता है, इसलिए वाइसराय के उत्तर से मुझे अचरज नहीं हुआ। हिंदुस्तान एक विशाल जेल बना हुआ है और यह मेरा पवित्र कर्तव्य है कि उस जबरी शाति को भग कर दू जो कि राष्ट्र के हृदय को कुचल रही है।"

फ़रवरी के मध्य मे कॉग्रेस की कार्य समिति ने सविनय अवज्ञा का प्रस्ताव पास कर दिया और महात्मा गाधी तथा उनके अनुयायियों को सविनय अवज्ञा आरम्भ करने का अधिकार दे दिया। इसके कुछ ही काल पीछे अहमदाबाद मे अखिल भारतीय कॉग्रेस कमेटी ने इस प्रस्ताव का समर्थन कर दिया और महात्मा जी ने नमक के भडारों पर हल्ला करने का निश्चय कर लिया।

घोर प्रतिज्ञा आवश्यक प्रबन्ध करने के लिए सरदार बल्लभ भाई पटेल पहले भेजे गए। उन्हें पकड लिया गया। महात्मा जी ने यह निश्चय किया था कि दॉडी तक पैदल ही यात्रा करेंगे। सो उन्होंने अपने ७६ आश्रमवासी साथ लेकर १२ मार्च १६३० को दॉडी-कूच आरम्भ किया। अहमदाबाद से चलते समय उन्होंने जो प्रतिज्ञा की वह ससार-भर के इतिहास मे अनुपम है। उन्होंने कहा "दर-दर भीख मॉगूँगा, कव्वे-कुत्ते की मौत मरूँगा परन्तु स्वराज्य लिए बिना इस आश्रम मे पैर न धरूँगा।

ऐसे गम्भीर अवसरों पर भी गाधी जी अपनी विनोद-प्रियता न छोड़ते थे। पहली रात को एक मित्र ने उनसे कहा—"कल एक लाख आदमी हमारा जत्था देखने के लिए आने वाले हैं।" वे बोले—"क्यों? हम लोगों के पास ऐसा देखने योग्य क्या है? हमें सींग आए हैं या पूंछ?"

जत्थे का प्रस्थान

दूसरे दिन जत्था 'वैष्णव जन तो तेने कहिए' का गीत गाता हुआ पैदल चल पड़ा। उस जत्थे की यात्रा के प्रभाव से गाँव के तीन सौ अधिकारियों ने त्याग पत्र दे दिए। भारत-भर के लोगों मे उत्साह का सागर ठाठे मारने लगा। लोग अनुभव करने लगे कि असहयोग और सविनय अवज्ञा वस्तुतः मुकाबले के सफल साधन हैं। सत्याग्रह के लिए एक प्रतिज्ञा तैयार की गई। उसके अनुसार प्रत्येक सत्याग्रही को कॉग्रेस के उद्देश्यों के अनुसार काम करते हुए हर प्रकार के कष्ट सहने के लिए तैयार रहना पड़ता था। जत्था प्रतिदिन कई मील पैदल चलता। रात को गॉव मे पड़ाव होता। प्रार्थना और प्रचार होता। जब लोग निमत्रण देते तो महात्मा जी लोगो से कहते—"हम तीर्थ-यात्रा पर जा रहे हैं। यह सहभोजों का समय नहीं है। खाना तो इतना ही खाना चाहिए जितने से शरीर और आत्मा इकट्ठे बने रहें।"

मार्ग मे लोगो ने उनका उत्साह से सत्कार किया। स्थान स्थान पर लोग पंक्तियॉ बॉध कर खड़े हो जाते, वे हर्ष के ऑसुओं से उनका स्वागत करते, मालाएं पहनाते, फूल बरसाते, सीस झुकाते और चरण चूमते थे। वह यात्रा चौबीस दिन जारी रही। जत्था ५ अप्रैल १९३० को दॉडी पहुचा। श्रीमती सरोजिनी नायडू पहले ही वहॉ पहुंची हुई थीं। महात्मा जी ने निश्चय किया कि हम अधिकारियों से नमक मॉगेंगे नहीं

वल्कि हल्ला बोल कर धरसाना के नमक-भण्डार पर अधिकार कर लेंगे। गाधी जी की युक्ति यह थी कि पवन और पानी के समान राष्ट्र का नमक भी जनता की सम्पत्ति है। और उसे लेने का हमे अधिकार है।

गिरफ्तारी

परन्तु सरकार इन अधिकारों पर विचार करने को तैयार न थी। सैकड़ों सशस्त्र सिपाही इस बात के लिए नियुक्त थे कि कोई सत्याग्रही भण्डार की ओर न वढ़े। चारो ओर काँटेदार तार लगा दिया गया था। पुलिस के वडे २ अधिकारी और कर्मचारी सावधान खडे थे। अहिसा और हिंमा का निर्णयात्मक युद्ध होने को था। पुलिस के अधिकारियों ने इन्हे कानून तोड़ने स रोका परन्तु वे उस अन्याय-विरोधी कानून को तोड़ने के लिए ही तो आए थे। कोमल प्रेरणाएँ और प्रवल धमकियाँ उन्हें पीछे न हटा सकीं। वे प्राण दे सकते थे परन्तु पीठ नहीं। लाचार पुलिस ने महात्मा जी को गिरफ्तार करके यरवदा जेल मे धकेल दिया। सारे देश मे २४ घण्टे की हड़ताल हो गई। गिरफ्तारी से पूर्व आन्दोलन के सचालन के सम्बन्ध मे उन्होंने निम्न लिखित बयान दिया—"मेरे पकडे जाने के पश्चात मेरे साथियो तथा जनता को डरना न चाहिए। युद्ध के सचालक भगवान है, मैं नहीं। वे सब के हृदयों मे विराजमान हैं। यदि हम आत्म-विश्वास से शून्य नहीं हैं तो भगवान् अवश्य हमे मार्ग दिखायेंगे। सब लोगों को नमक उठाना या वनाना चाहिये। स्त्रियाँ शराब, अफीम और विदेशी वस्त्रों

की दुकानों पर धरना दें। हर घर मे तकली चलने और ढेरों का सूत काता और बुना जाय। बच्चे बूढ़े सभी इस काम मे भाग लें। विदेशी वस्त्रों की होली जलाई जाय। छुआ-छूत का भूत भगाया जाय। बहुसंख्यक जातियाँ अल्पसंख्यक जातियों को प्रसन्न करें। और जो कुछ शेष बचे स्वयं संतुष्ट हो जायँ।

सत्याग्रहियों की परीक्षा

गांधी जी तो जेल में डाल दिए गए परन्तु पुलिस ने सत्याग्रहियों की खूब खबर ली। परन्तु वे वीर भी बला के पुतले थे। कड़ी धूप में भूखे प्यासे रहते थे। पुलिस के प्रहार और लाठियो के वार सहते रहते थे। घायल होकर पड़े रहते थे, परंतु धीरज न छोड़ते थे, हाय न करते थे और पग पीछे न हटाते थे।

कॉंग्रेस की कार्य समिति का वैठक प्रयाग में हुई और स्थिति पर विचार किया गया। यही निश्चय हुआ कि सत्याग्रह का क्षेत्र विस्तृत कर दिया जाय। अब श्रीमती सरोजनी नायडू स्वयंसेवकों के दल-बल सहित आगे बढ़ीं। उन्हे १६ मई को पकड लिया गया परन्तु पीछे छोड़ दिया गया। निहत्थे स्वयसेवकों के दल बार-बार नमक—भंडार पर अधिकार के लिये हल्ला बोल देते परन्तु पुलिस वाले उन्हें दण्डे मार मार कर घायल कर देते और भगाने का यत्न करते। यह आन्दोलन इतना बढ़ा कि पहली जून को बड़ाला मे १५ हजार स्वयं सेवकों तथा दूसरे लोगों ने नमक का कानून तोड़ा।

उन्हीं दिनो लंदन के 'डेली हेरल्ड' समाचार पत्र के प्रतिनिधि जार्ज स्लोकोम्ब ने महात्मा जी से जेल मे भेंट करने के वाद यह घोषित किया कि महात्मा जी निम्न लिखित शर्तों पर सत्याग्रह स्थगित करने के लिए तैयार हैः—

१ गोलमेज कानफ्रेंस मे भारत को स्वतन्त्रता देने के लिए विधान बनाया जाय।

२ नमक पर से कर हटाने, शराब—वन्द करने और विदेशी वस्त्रों पर रोक लगाने के विषय मे गॉधी जी को सतुष्ट किया जाय।

३. राजनैतिक कैदियों को सत्याग्रह बंद करने के साथ ही छोड़ दिया जाय।

४. वाइसराय को लिखी गई चिट्ठी में वर्णित शेप वातों पर विचार पीछे कर लिया जाय।

दमन-चक्र

महात्मा जी ने तो संधि का संकेत कर दिया परन्तु सरकार के कानों पर जूं न रेंगी। उलटा सरकार ने अपना व्यवहार उग्र कर लिया। सजाएं अधिक सख्त कर दी गईं। कैद के साथ जुर्माने भी होने लगे। निर्दयतापूर्वक लाठियॉ वरसाई जाने लगीं। उधर कॉग्रेस ने भी देश भर मे आंदोलन तीव्र कर दिया। विदेशी वस्त्रों का वहुत ही सख्त वायकाट कर दिया। पुलिस ने कालिजों मे घुस—घुस कर प्रोफेसरो और अध्यापकों को पढ़ाई के कमरे में पीट डाला। वारी-

सल मे एक ही दिन मे लाठी—प्रहार से ५०० व्यक्ति घायल कर दिए गए। २६ जून को कॉग्रेस की कार्य समिति कानून-विरुद्ध घोपित कर दी गई। ३० जून को पं० मोतीलाल नेहरू को भी पकड़ लिया गया और उन्हें छः मास का कारावास मिला। कहा जाता है कि एक स्थान पर पुलिस ने सत्याग्रहियों तथा उनके साथ हमदर्दी रखने वालों की सम्पत्ति जला डाली। अनेक स्थानों से स्त्रियो से किये गये अशिष्ट व्यवहारों के भी समाचार आने लगे।

देश में एक सिरे से दूसरे सिरे तक आग सी लग गई। सब बड़े—बड़े नगरों मे विराट सार्वजनिक सभाये हुई। कराची, शोलापुर, पटना, कलकत्ता, मद्रास, पिशावर तथा अन्य अनेक स्थानों पर गोली चलाई गई। पिशावर का किस्साख़ानी बाज़ार तो छोटा जलियाँवाला ही बन गया। सैकड़ों वीर पठान गोलियो से उड़ा दिये गये और सैकड़ा ही बुरी तरह घायल हुए। अनेक आर्डिनेन्सो के द्वारा समाचार-पत्रों, कारखानो और परस्पर मिलने-जुलने पर प्रतिवध लगा दिये गये।

कार्य समिति के प्रस्ताव

कार्य समिति का जो अधिवेशन इलाहाबाद मे हुआ था उसमे नीचे लिखे आशय के प्रस्ताव स्वीकृत किए गए। महात्मा जी तथा उनके सत्याग्रही वीरों को बधाई दी गई। सत्याग्रह को दुगने जोश के साथ जारी रखने का निश्चय किया गया। राष्ट्र के विद्यार्थियों, वकीलों, किसानो, मजदूरों, सौदागरो, कारखानो, सरकारी नौकरों तथा दूसरे देशो वाले लोगों को प्रेरणा की गई कि

वे इस समय अधिक से अधिक त्याग करें। कपड़े की दुकानों पर प्रबल धरना दिया जाय। पड़ा हुआ माल न बिकने दिया जाय। नए माल के आर्डर न दिए जाँय। दिए हुए आर्डर रद्द कर दिए जाँय। कताई—बुनाई के काम की गति तीव्र कर दी जाय। सूत के बदले में खद्दर दिया जाय। गुजरात, महाराष्ट्र आदि अनेक प्रांतों मे जहाँ पर रैयतवारी चलती है वहाँ लगान न दिया जाय। कानून तोड़ कर नमक खूब बनाया जाय। हर इतवार को काँग्रेस कमेटियाँ जनता द्वारा सगठित रूप से नमक का कानून तुड़वाया करें। अंग्रेजी-बैंकों, बीमा-कम्पनियों तथा जहाजी-कम्पनियों आदि का बायकाट किया जाय। शराब और ताड़ी की दुकानों पर कड़ा धरना दिया जाय। इनके अतिरिक्त समिति ने जनता द्वारा की गई हिंसा और आर्डिनेंसों की निन्दा की।

इस प्रस्ताव का प्रभाव बहुत पड़ा। स्थान स्थान पर कानून तोड़े जाने लगे। लोग समुद्र के तथा नदियों आदि के तीरों पर जा कर नमक बनाने और सरकारी कानून की धज्जियाँ उड़ाने लगे। वे दृश्य भी कैसे कुतूहल वर्धक थे। लोग बैल गाड़ियों पर बड़े—बड़े कडाहे, देगचे तथा दूसरे बर्तन लाद कर उन स्थानों पर चले जाते थे जहाँ के पानी वा मिट्टी मे नमक पाया जाता था। उससे नमक बनाते, भारत माता, महात्मा गाँधी तथा अन्य नेताओं की जय के नाद लगाते और विदेशी सरकार को इस प्रकार नीचा दिखाते थे।

१६३० के सारे वर्ष में यही कुछ होता रहा। सरकार ने भी आन्दोलन को कुचलने मे कोई कसर न छोड़ी। केन्द्रीय एसेम्बली में एस० सी० मित्र के प्रश्न के उत्तर मे श्री एच० जी० हेग को मानना पडा कि पुलिस ने विभिन्न प्रान्तों में दो दर्जन बार गोली चलाई जिस से सैकड़ों भारतीय सत्याग्रही हताहत हुए। एक लाख से अधिक आदमी जेलों में ठूंस दिए गए। कारागारों मे कैदियों के लिए जगह न रही। काँटेदार तार आदि के वेशुमार स्थायी कारागार तैयार किए गए और उन मे देश-भक्त वीरों को भेड़-बकरियों की तरह मार दिया गया। हज़ारों स्त्रियाँ और पंद्रह हज़ार मुसलमान काम-काज तथा घर-बार का मोह छोड़ कर जेलों मे जा बसे।

गांधी इरविन समझौता

१६ जनवरी को इंगलैंड के प्रधान मन्त्री श्री रैम्जे मैकडानल्ड काग्रस को ने गोलमेज़ कानफ्रेंस मे शामिल होने की प्रेरणा की। छः दिन बाद लार्ड इरविन ने एक घोषणा मे कहा—"प्रान्तीय सरकारों के साथ सलाह करने के पश्चात् मेरी सरकार ने उचित समझा है कि काग्रेस की कार्य-समिति के मेम्बरो को आपस में विचार-परिवर्तन करने के लिए पूरी स्वतन्त्रता दी जाय। इसलिए अब गांधी जी तथा कार्य समिति के दूसरे मेंम्बरों को छोड़ दिया जायगा और कार्य-समिति भी कानून-विरुद्ध नहीं मानी जायगी।" जनवरी में ही गांधी जी तथा इसके नेता मुक्त कर दिये गए।

पीछे कह चुके हैं कि प० मोतीलाल जी नेहरू भी इसी आन्दोलन मे ही मुक्त कर दिए गए थे। जेल मे उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया था इसलिए सरकार ने उन्हे छोड दिया। जब गाधी जी जेल से बाहर निकले तब पं० मोतीलाल जी की दशा चिन्ता जनक थी। महात्मा जी और प०जी उन्हें देखने को प्रयाग चले गये। कुछ ही दिन पीछे जब उन्हे प० मोतीलाल जी के स्वर्गवास का समाचार मिला तो उन्हे बहुत दुःख हुआ।

उन दिनों सर तेज बहादुर सप्रू तथा श्री जयकार ने सरकार और कांग्रेस में समझौता कराने के लिए कई दिन तक दौड़-धूप की और व इसमे सफल हुए। यह समझौता जो ४ मार्च को हुआ गाधी-इरविन समझौता कहलाता है। सत्याग्रह बंदी मुक्त कर दिये गए। गाधी जी इसे कांग्रेस और सरकार दोनों की विजय ही कहते थे।

कराची कांग्रेस

२५ मार्च १९३१ को कांग्रेस का अधिवेशन कराची में सरदार वल्लभ भाई पटेल के प्रधानत्व मे हुआ। साम्यवादी दल को कांग्रेस की समझौते की नीति पसन्द न थी। वीर भगतसिंह आदि की फासी से वे जोश मे थे। इस लिए जब कांग्रेसी नेता वहा पहुॅचे तो नौजवानों ने उनका लाल और काली झंडियों से स्वागत किया। प्रतीत होता था कि उस वर्ष वहॉ कांग्रेस का अधिवेशन सफल न हो सकेगा। उस समय महात्मा जी ने ५० सहस्र लोगों की भीड़ मे बेधड़क हो कर

कहा—"जब तक प्रभु मेरा रक्षक है,कोई भी मुझे मार नहीं सकता। नवयुवक कांग्रेस का अधिवेशन विफल करना चाहते हैं। परन्तु इस से वे भक्तसिंह को वापस नहीं ला सकते। मतलब यही है कि लोग मुझे नही चाहते। चाहते हैं तो यह कि मै कांग्रेस से अलग हो जाऊँ। मेरा विश्वास अहिंसा पर है। खाते-पीते सोते-जागते मै अहिंसा से ही स्वराज्य प्राप्त करने का स्वप्न देखता हूँ।"

इस के अनन्तर नवयुवकों के नेता, नेता जी सुभाषचन्द्र बोस ने महात्मा जी को विश्वास दिलाया कि हम कांग्रेस की हानि नहीं चाहते। सो कांग्रेस का अधिवेशन सफल हुआ। उस में यह प्रस्ताव भी पास हुआ कि गाधी जी गोलमेज़ कानफ्रैंस मे कांग्रेस के एक-मात्र प्रतिनिधि हो कर जायें और पूर्ण स्वराज्य के आधार पर समझौता करें। महात्मा जी ने जनता को विश्वास दिलाया कि मै हर प्रकार से कांग्रेस की मर्यादा की रक्षा करूँगा।

गांधी जी ने १८ अप्रैल को लार्ड इरविन को विदाई दी। जब कांग्रेस ने यह सधि स्वीकार की तब उसे बड़ी आशा थी। कि भारत की विभिन्न जातियों मे समझौता हो जाएगा और सरकार भी इस कार्य में सहायता देगी। परन्तु वह आशा मृग-तृष्णा सिद्ध हुई।

गाँधी जी ने कांग्रेसी कार्यकर्ताओं को चेतावनी दी कि वे कोई आन्दोलन आरम्भ करने मे पहल न करें, परन्तु यदि राष्ट्र के आत्मसम्मान के विरुद्ध सरकार कोई कार्यवाही करे तो

उसे न सहें। गाधी जी नैतिकपतन और भय के अत्यन्त विरुद्ध थे और उन्हे जीतने के लिए सदा जोर देते थे।

सधि-भंग

अभी बहुत दिन भी न बीते थे कि यह सिद्ध हो गया कि वाइसराय ने अपने व्याख्यानों द्वारा जो आशाएं दिलाई थीं, वे पूरी न होंगी। कारण, सरकार ने फिर सख्ती से काम लेना आरम्भ कर दिया था। हर ओर से शिकायतें आने लगीं कि सरकार अपनी प्रतिज्ञा भग कर रही है। महात्मा जी जब जुलाई के मध्य मे शिमले गए तो उन्होंने वे सब शिकायतें सरकार के सामने रख दीं। जब उत्तर अत्यन्त असन्तोप-जनक मिला तब महात्मा जी ने ११ अगस्त को लार्ड इरविन को लदन मे यह तार भेजा "आपको अत्यन्त खेदपूर्वक सूचित करता हूँ कि मेरा लदन आना असम्भव बनाया जा रहा है। यह घोपणा करने के पूर्व मै आपके उत्तर की प्रतीक्षा करूँगा।" लार्ड इरविन ने तार दिया—"मैं आशा करता था कि आपका ये साधारण शिकायतें न रोक सकेंगी और आप उस सवाद मे अवश्य भाग लेंगे जिसमे कि भारत के भविष्य के सम्बन्ध मे आवश्यक निश्चय किए जायँगे। यदि आप का यही निश्चय अन्तिम हो तो मै प्रधान-मन्त्री से कह दूँ ?" महात्मा जी ने खेद प्रकट किया कि मै निश्चय बदल नहीं सकता और लार्ड इरविन ने प्रधान-मत्री को यह बात बता दी।

महात्मा जी के लंदन जाने से इन्कार करने का एक कारण यह भी था कि भारत सरकार ने डा० अनसारी को वहाँ भेजने के लिए न चुना था। डा० अनसारी कांग्रेसी होने के अलावा राष्ट्रीय मुस्लिम पार्टी के भी प्रतिनिधि थे जिसका उद्देश्य पूर्ण स्वराज्य था। लार्ड इरविन ने प्रण किया था कि डा० अनसारी का नाम सूची मे लिखा जायगा परन्तु लार्ड विलिंगडन ने जान बूझ कर नाम हटा दिया ताकि गोलमेज कान्फ्रेंस में यह प्रतीत हो कि मुसलमान स्वराज्य के विरुद्ध हैं। सरकार जानती थी कि कांग्रेस के साम्प्रदायिक समझौते का समर्थन गांधी जी और डा० अनसारी दोनों ही करेंगे इसलिए वह डा० अनसारी को न भेज कर कांग्रेस के प्रभाव को कम करना चाहती थी।

लंदन को प्रस्थान

महात्मा गांधी जी ने जनता मे घोषणा कर दी कि सरकारी अधिकारी मेरे लंदन जाने का विरोध करते हैं। अन्त मे गुत्थी भली भाँति सुलझा ली गई और महात्मा जी कांग्रेस की ओर से गोलमेज कानफ्रेंस मे सम्मिलित होने के लिए २६ अगस्त १६३१ को एस एस. मलोजा जहाज पर सवार हो गए परन्तु उन्हे सफलता की कोई आशा न थी।

जिस जहाज पर गांधी जी लदंन जा रहे थे उसी पर एक दुष्ट स्वभाव का गोरा भी यात्रा कर रहा था। वह प्रतिदिन गांधी जी के पास आ कर कुछ कुवचन कह जाया करता था।

एक दिन उसने आकर स्व-रचित कविता गाधी जी के हाथ मे दे दी। गाधी जी ने वे पन्ने चुप-चाप फाड़ कर रद्दी की टोकरी में फेंक दिए और उनमे लगी हुई पिन को अपनी डिबिया मे डाल लिया। गोरा बोला—"उसमे कुछ तो सार था, पढ़ तो लिया होता।" गाधी जी ने उत्तर दिया—"जो सार था वह तो मैं ने संभाल लिया है।" सब हँस पड़े और वह लज्जित हो लौट गया।

आर्थिक सुधार

स्वराज्य प्राप्ति के सम्बन्ध मे महात्मा जी ने दिसम्बर १६२६ से अगस्त १६३१ तक जो कुछ किया उसका संक्षिप्त विवरण दिया जा चुका है। अब इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व हम इसी काल की एक दो ऐसी धटनाओं का उल्लेख करेंगे जिन से विदित होगा कि वे देश की दरिद्रता से कितने दुःखी होते थे और उसे दूर करने के लिए क्या कुछ करते रहते थे।

दिसम्बर १६२६ मे लाहौर कांग्रेस के अवसर पर चरखा संघ की तरफ से खादी प्रदर्शन किया गया था। उसमें खादी की महिमा को प्रकट करने वाले १२ चित्र लटकाए गए थे। प्रश्न के उत्तर में जब महात्मा जी को मालूम हुआ कि इन पर १२०) रु० खर्च हुए हैं, तब वे दुःखित होकर बोले—"ये चित्र तो किसी धनवान के घर को सुशोभित करने लायक है। धनिक लोग ही कलाकार या चित्रकार को इतने पैसे दे सकते हैं। हम तो दरिद्र

नारायण के प्रतिनिधि हैं। हमें इतना खर्च करके चित्र तैयार कराना अनुचित ही है।" दूसरा प्रश्न महात्मा जी ने यह किया कि ये सब चित्र कितने दिनों में तैयार हुए ?" उत्तर मिला—"बारह किनों मे ! तब वे बोले—"यों तो मेहनताना रोज १० रु० हुआ। आज हिन्दुस्तान मे कितने आदमियो को दस रुपए रोज मिलते हैं ! कातने वाले और वजारे को क्या मिलता है। यह तुमने किसी से पूछा है ? देखो, सारा दिन काम करने पर भी आठ आने से अधिक नहीं मिलते और एक चित्रकार को १० रु० मिल जाते है। यह कहाँ का उलटा इन्साफ है ? अगर मेरी चले तो मैं हर तरह के मजदूर की मजदूरी की दर एक आना घंटा ठहरा दूँ, फिर वह चाहे वकील, डाक्टर सरकारी अफसर या पुलिस का अधिकारी ही क्यों न हो। इस देश में हर एक व्यक्ति को आठ घटे काम करना चाहिए। घर में काम कर सकने वाले हर एक व्यक्ति को चाहे वह स्त्री हो वा पुरुप, आठ घटे काम तो करना ही चाहिए।"

१६३०-३१ मे जब गाधी जी यरवदा जेल में थे तब दिल खुश दीवान जी विलेपारले की सत्याग्रह छावनी मे खादी कार्य के अध्यक्ष थे। उसी के सम्बन्ध मे दीवान जी ने गाधी जी को जेल मे ही एक पत्र लिखा था। गाधी जी ने जो उत्तर ७-१-३१ को दिया वह यह है—"भाई दीवान जी, चरखे और तकुली का कैसा उपयोग होता है ? दोनों की औसत रफ्तार क्या और

कैसी है ? औसतन चरखा और तकली रोज दिन मे कितने वक्त तक जारी रहती है ? सूत की सख्या और मजबूती कैसी होती है ? खादी कितनी चौड़ाई की बुनवाते हो ? बुनवाने की दर क्या देते हो ? खादी वहीं धुल जाती है या किसी को देते हो ? करघे कितने हैं और कहा है ।

८

गोलमेज कन्फ्रेंस में

किंग्सली हाल में

पाडवो को उनका अधिकार दिलाने के लिए जब श्रीकृष्णचन्द्र हस्तिनापुर गये थे तब उन्होंने राजा दुर्योधन का शाही आतिथ्य-संस्कार स्वीकार न किया था और विदुर जी के यहाँ ही सात्विक भोजन पर सन्तोष किया था। इसी प्रकार जब महात्मा गाधी १६३१ मे लदन पहुँचे तो उन्होंने अंग्रेजी सरकार के ठाट बाट-पूर्ण आतिथ्य को छोड़ कर लदन के पूर्वी भाग मे मजदूरो की बस्ती मे किंग्सली हाल में ठहरना ही उचित समझा। वह हाल समाज-सेवा का एक केन्द्र है या यो समझिए कि एक आश्रम है। "गाधी जी के आश्रम और किंग्सली हाल के आदर्श और आकाक्षाओं मे बहुत समानता है। वहाँ कुमारी म्युरीएल लेस्टर ने गाधी जी की सेवा शुश्रूषा का भार अपने जिम्मे लिया।

समाचार-पत्रों के संवाद-दाता कुमारी लेस्टर के आगे पीछे फिरने लगे ताकि गाधी जी के सम्बन्ध मे नए से नए समाचार छाप कर पैसा बटोरा जाय। एक ने यह प्रस्ताव किया-"यदि आप श्री गाधीजी के मुलाकात-सम्बन्धी सभी समाचारो के अधिकार हमारी कम्पनी को दे दें तो उससे जो लाभ होगा उसमें से आधा भाग आपको दिया जायगा।" दूसरा आया

और बोला—"आप मुझे गांधी जी के नाम एक परिचयात्मक पत्र लिख दीजिए। जब वे मार्सेल्स मे उतरेंगे तो मै उन्हे वह भेंट करूँगा। इसके लिए मै आपको १०० पौंड दे सकता हूँ।" सिनेमा कम्पनी वालों ने तीन बार आकर किंग्सली हाल की फिल्म उतारी। सिनेमा के परदे पर कुमारी लेस्टर के चित्र दिखाए जाने लगे, उनके शब्द सुनाए जाने लगे।

परन्तु विरोधी विचार के लोगों की भी कमी न थी। उन्हें गाधी जी का कुमारी लेस्टर के यहाँ ठहरना न सुहाता था। उन्होंने कुमारी लेस्टर को लिखा—"देश-प्रेमी के नाते आप इस आदमी को अपने यहाँ कैसे ठहरा सकती है?" "आपको तो देश-निकाला देना चाहिए।" "मै यह कल्पना नहीं कर सकता कि एक अंग्रेज महिला अपने यहाँ एक नग्न भारतीय को ठहराने का विचार ही कैसे कर सकती है?"

कानफ्रेस में भाषण

गोलमेज कानफ्रेस मे भी सबकी दृष्टि उन्हीं पर लगी रहती थी। इसका कारण केवल यह न था कि वे भारत की सबसे शक्तिशाली राजनीतिक संस्था के इकलौते प्रतिनिधि थे और उसकी ओर से निर्णय करने का पूर्ण अधिकार लेकर आए थे बल्कि यह भी कि वह उस समय के सबसे महान् पुरुष थे। उन्होंने कानफ्रेस मे भारत की दु:खमयी स्थिति पर बड़े प्रभावशाली भाषण दिये जिनमे सरकार और कांग्रेस तथा काग्रेस और दूसरे राजनीतिक दलों के दृष्टिकोण मे

भेद का वर्णन किया। बुनियादी अधिकारों के सम्बन्ध मे उन्होंने कराची कांग्रेस का प्रस्ताव पढ़ कर सुनाया। और बताया कि प्रधान मंत्री का बयान भारतीय आदर्शों से बहुत पीछे रह जाता है। अल्प-सख्या वालों की कानफ्रेस मे उन्होने स्पष्ट रूप से कह दिया कि भिन्न-भिन्न जातिया अपना-अपना दृष्टिकोण प्रबल शब्दो द्वारा प्रकट कर रही है परन्तु यह तो लक्ष्य नही है। केन्द्रीय बात तो विधान तैयार करना है।

अंग्रेजी सरकार की नीति यह थी कि भारत वासियों का उत्तरदायी सरकार के अधिकार न सौंपे जायँ बल्कि नौकरशाही के अधिकारो द्वारा ही सतुष्ट कर दिया जाय। इस पर गाधी जी ने कह दिया कि कांग्रेस बरसो तक भले ही जंगलो मे भटकती रहे परन्तु ऐसे प्रस्ताव को स्वीकार न करेगी जिसके आधीन स्वतन्त्रता तथा उत्तरदायी शासन का पेड़ फल-फूल ही नहीं सकता।

अन्त मे उन्होंने एक ऐसी बात कही जिसे पूरी करने के लिए उन्होंने १६३२ मे यरवदा जेल मे आमरण व्रत धर लिया था। उन्होने कहा—"दूसरी जातियाँ अपने लिए जिन पृथक्-पृथक् अधिकारों को माँग रही है, उन्हे मै समझ सकता हूँ। परन्तु अछूतो की ओर से जो पृथक् अधिकार माँगे जा रहे हैं, वह मेरे हृदय पर सबसे भयंकर घाव है। हम नहीं चाहते कि अछूत एक अलग जाति बना दिए जायँ। सिक्ख, मुसलमान और ईसाई भले ही सदा के लिए सिक्ख, मुसलमान और ईसाई

बने रहें परन्तु अछूत सदा अछूत क्यों बने रहें ? मैं यह तो पसंद करूँगा कि हिंदू-धर्म मिट जाय परन्तु यह नहीं कि अछूतपन का कलंक बना रहे। मैं अपनी पूरी शक्ति से यह बात कहे देता हूँ कि चाहे सारा संसार विरोधी हो जाय मैं अछूतों को हिंदुओं से अलग न होने दूँगा और इसके लिए सिर धड़ की बाज़ी लगा दूँगा।"

वहाँ विभिन्न जातियाँ किसी समझौते पर न पहुँच सकीं। १ दिसम्बर १९३१ को गांधी जी ने प्रधान के लिए धन्यवाद का प्रस्ताव करते हुए कहा कि अब हमारे मार्ग अलग-अलग हैं। यह कह कर वे उठ पड़े।

विदेश में भी स्वदेशीव्रत

हमारे कई नेता स्वदेश में स्वदेशी और स्वदेशी ढंग पर सिले हुए वस्त्र पहनते हैं। परन्तु ज्यों ही विदेश-यात्रा के लिए जहाज़ पर पाँव रखते हैं, विदेशी पहरावा पहन लेते हैं। परन्तु गांधी जी जितने मास इंगलैंड तथा यूरोप के अन्य देशों में रहे, वहाँ जैसे ही वस्त्र पहनते रहे। वही खद्दर की चद्दर, वही लंगोट, और वही चप्पल। उन्होंने अपने शरीर को इतना सख्त बनाया हुआ था कि यूरोप की कड़ाके की सर्दी में भी खद्दर की चद्दरों और बिना-जुराब की चप्पलों से ही काम चला लेते थे।

बच्चों में प्रेम

किंग्सली हाल में भी भारत वर्ष का सा ही कार्य-क्रम चलाते थे। प्रार्थना प्रतिदिन होती थी, चरखा नियम पूर्वक चलता था और सैर में नाग़ा न होती थी।

गांधी जी बच्चों से लाड़ प्यार करके बहुत प्रसन्न होते थे। एक दिन गाधीजी से मिलने के लिए बच्चों को विशेष रूप से बुलाया गया। गाधी जी एक मित्र के समान इनसे निस्सकोच बात-चीत करते रहे। बड़े भाई अपनी छोटी बहिनों को और बड़ी बहिने अपने छोटे भाइयो को गांधी जी के पास सरकाने लगीं। सब की दृष्टि श्वेत-वस्त्रों वाली मूर्ति पर केन्द्रित हो गई। गाधी जी कोमल शब्दो मे उन से पूछने लगे -"जब कोई बालक तुम्हें मारता है तब तुम क्या करते हो ? उसके पीछे क्या होता है ? इस से अच्छा मार्ग कोई और हो सकता है ?"

चार बरस की जेन भी बालक-मण्डली मे थी। अगले सप्ताह उसके पिता ने आकर कहा, "मै आप से लडूँगा।" गाधी जी हँसते हुए बोले—"क्यो"। वह बोला-"देखिए न, मेरी छोटी लड़की जेन रोज़ बड़े सवेरे आकर मुझे मारती है और जगाती है। कहती है- "अव आप मुझे इसके वदले मारना नहीं क्योंकि गाधी जी ने हमे उस दिन कहा था कि यदि तुम्हे कोई मारे तो तुम्हे उसके बदले मे मारना न चाहिए।" सब बच्चों ने गाधी जी का पक्ष लेकर उस मनुष्य को उत्तर देना आरम्भ कर दिया।

सम्राट से भेंट

लन्दन मे महात्मा जी को बड़े-बड़े प्रतिष्ठित व्यक्तियों और छोटे छोटे मजदूरों तक ने निमन्त्रित किया। सब स्थानों पर वे अवसर के अनुसार अपने विचारों का प्रचार करते रहे। उन के व्याख्यानों मे इतनी भीड़ रहती थी कि सैकड़ो लोग टिकट न मिलने की शिकायतें ही करते रहते थे।

उन्हीं दिनों सम्राट जार्ज पंजम ने गांधी जी से मिलने की इच्छा प्रकट की। नियम के अनुसार सम्राट् को मिलते समय विशेष पहरावा पहनना आवश्यक था। अधिकारियों ने इस सम्बन्ध में गांधी जी से चर्चा की। गांधी जी बोले-"मैं तो नंगे-भूखे भारत का प्रतिनिधि हूँ। मैं इसी पहरावे में सम्राट से मिल सकता हूँ, दूसरे में नहीं। न तो सम्राट ने गांधी जी से मिलने की इच्छा का त्याग किया और न ही गांधी जी ने अपने वस्त्रों का। नया नियम बनाया गया और भारत के बेताज बादशाह ने मुकुटधारी सम्राट से उन्हीं खद्दर के वस्त्रोंमें भेंट की।

पैसे का सदुपयोग

गांधी जी का निवास पूर्वी लंदन में था परन्तु कार्यालय पश्चिमी लंदन में। दोनों में ७,८ मील का अन्तर था। गांधी जी दिन का भोजन कार्यालय में ही किया करते थे। एक दिन मीरा बेन भोजन के साथ वह शहद लाना भूल गई जो मिस्र वासियों ने गांधी जी को भेंट किया था। उन्होंने चार आने की शहद की एक शीशी मँगवा कर रखदी। जब पूछने पर गांधी जी को शीशी मँगवाने की आवश्यकता का कारण बताया गया तो बोले—"यह पैसे की बर्बादी क्यों? क्या लोगों के दिए हुए पैसे का हम इस तरह दुरुपयोग करते हैं? एक दिन शहद के बिना क्या मैं भूखा मर जाता?

पैरिस में

गाँधी जी ने बारह सप्ताह इङ्गलैण्ड में रहने के पश्चात् फ्रांस स्विटजरलैंड और इटली होते हुए भारत में आने का निश्चय किया। जब वे पैरिस पहुँचे तो दर्शनों की

प्यासी फ्रांसीसी जनता ने उन्हें घेर लिया। इंजनों, गाड़ियों तथा स्टेशनो की छतों पर लोगों का भारी जमघट था। सिनेमा वालों, समाचार-पत्रो के संवाददाताओं तथा फ़ोटोग्राफ़रों ने प्रकाश फेंक-फेंक कर उनके चित्र खींचे। भारी भीड़-भड़क्के मे भी गांधी जी शॉत और प्रसन्न-वदन रहे। पैरिसवासी भारतीयों ने एक होटल में उनके स्वागत-सत्कार का प्रबध किया था। जल-पान के पश्चात् एक महिला ने बन्देमातरम् का पुनीत गीत गाया और फिर कुछ भारतीयो ने महात्मा जी के चरणो मे श्रद्धा-जलियॉ भेट कीं। वे व्याख्यान तो यूरोपीय भाषाओ मे ही हुए परन्तु गाधी जी ने अपना व्याख्यान हिन्दी में ही दिया। पास ही बैठा हुआ एक ब्राह्मण गद्‌गद होकर धीरे से बोल उठा—'क्या खूब! कितने दिनों के बाद हिंदी सुनने को मिली।"

गांधी जी फ्रांस मे एक ही दिन ठहरे। और उस एक ही दिन मे उनको कई सभाओ में भाषण देने पड़े। वे मदामगीज़ के घर रहे थे और वहॉ जनता ने रात-भर इतना भीड़-भड़क्का रक्खा कि पड़ोसियों ने नींद खराब होने के कारण मदामगीज पर कई हजार का दाव कर दिया।

रोम्या रोला से भेट

स्विटजरलैंड से विलनव गॉव मे गांधी जी फ्रांस के प्रसिद्ध कलाकार और सन्त रोम्यां रोला के अतिथि के रूप में रहे। गॉव के प्रसिद्ध गवैयों और बजैयों ने उनके मनोरंजन के लिए गीत गाए और साज़ बजाए। यहॉ

तक कि स्वय रोम्या रोला ने भी एक- दो बार पियानो पर विथोवेन के गीत गाए और उनके आशय तथा स्वर से गाधी जी को प्रसन्न किया। रोम्या रोला फ्रास के विख्यात साहित्य-सम्राट उपन्यासकार, नाटककार, इतिहासकार और सगीत शास्त्री थे। उन्होंने १६३२ मे 'महात्मा गाधी' नामक ग्रथ लिखकर उन का नाम पृथ्वी के प्रत्येक कोने मे पहुँचा दिया। रोम्या रोला के कमरे मे जिन महापुरुषों की मूर्तियाँ पडी थी उनके नाम ये है—गेटे, विथोवेन, टालस्टाय, गोर्की, गाधी जी, रवीन्द्रनाथ, और आईन्स्टीन।

वहा गाधी जी ने पीयर सेरे सोल नामक प्रसिद्ध नेता से कहा कि यूरोप में मुझे वास्तविक नेता नजर नहीं आए। पीयर ने पूछा कि आपके विचार से आधुनिक नेता मे कौन कौन से गुण होने चाहिए ? गांधी जी ने कहा कि चौबीसों घण्टे परमात्मा से साक्षात्कार।

"कोई यह पूछे कि आप ईश्वर से क्या समझते है तो ?" "तो मै कहूँगा कि सत्य ही परमेश्वर है और अहिंसा उसकी प्राप्ति का साधन। नेता मे आत्म-विनय की पूरी शक्ति होनी चाहिए। उसे क्रोध, भय असत्य, जीभ के स्वाद तथा भोगविलास से दूर रहना चाहिए।"

स्विटजरलैण्ड मे बडी-बड़ी सभाओं मे महात्मा जी का स्वागत किया गया और उन्होंने भारत के स्वराज्य के संग्राम

तथा अहिंसा के महत्व आदि पर प्रकाश डाला। जिनेवा में जब उनसे रेड क्रास सोसाइटी की उपयोगिता के सम्बंध में प्रश्न किया गया तो उन्होने कहा—"लड़ाई में घायल व्यक्तियों की सहायता करना तो अच्छा है ही, परंतु मै तो उस समय की तरह राह देख रहा हूँ जब लड़ाइयाँ ही न हों और रेड क्रास की ज़रूरत ही न पड़े।

मुसोलिनी से मुलाकात

इटली मे भी गाधी जी की वड़ी आव-भक्त की गई। गांधी जी को इस बात का तो खेद रहा कि पोप से भेंट न हो पाई परन्तु मुसोलिनी से मिलने में इन्हें बड़ा मज़ा आया। इनके स्वागत के लिए मुसोलिनी अपना आसन छोड़ कर विशाल हाल के मध्य तक आया और वापसी पर इन्हे द्वार तक पहुँचा कर लौटा।

वेटिकन चर्च की गैलरियों के कला-सग्रह को देख कर गाधी जी गद्‌गद हो गए। वहाँ की एक मूर्ति को देख कर वे बोले—'वहाँ मैने ईसा मसीह की एक मूर्ति देखी। उसे देखते देखते मेरा मन तृप्त नहीं हुआ। उसे छोड़ कर आना मेरे लिए कठिन हो गया देखते-देखते मेरे नयनों मे नीर भर आया। अगले दिन वे डा० माटेसरी से मिले और उनका बाल-मदिर भी देखा।

कु० लेस्टर का अनुभव

कुमारी लेस्टर महात्मा जी के साथ हो इटली तक आई थीं। उन्होंने गाधी जी के सम्बध मे जो वाक्य कहे हैं उन्हे उद्‌धृत कर

इस अध्याय को समाप्त करते हैं—"मैने उन्हे सरदी के अंधेरे में प्रतिदिन सवेरे साढे पॉच वजे देखा। मुस्लिम प्रतिनिधियो से वडी रात तक बात चीत कर आधी रात मे घर आते देखा। दोपहर में वालकों की टोलियो मे घिरा हुआ देखा। एक पुराने प्रधानमत्री के दीवानखाने मे आग के सामने घण्टो तक वैठे देखा। सेंट जेम्स महल, अमीर उमरावो, उनकी स्त्रियों राजाओं और प्रधानमण्डल के प्रधानों से घिरे हुए भी उन्हे देखा। वे हमेशा एक रस ही नजर आते—शॉत, प्रसन्न, विनोदी, सहृदय, निःस्वार्थ और ईश्वर तथा मनुष्य के साथ एकता का अनुभव करते हुए।"

गाधी जी इटली में केवल २,३ दिन रहे। वे वहा के प्रसिद्ध व्यक्तियों से मिले तथा दर्शनीय स्थानो को देख भारत को चल दिए।

———— ———

९

हरिजन-सेवा

बम्बई में स्वागत

जब महात्मा जी गोलमेज़ कांनफ्रेंस से वापस बम्बई पहुँचे तो भारत भरके प्रमुख नेताओं तथा जनता ने उनका बड़े समारोह से स्वागत-सत्कार किया। जब वे विलायत में थे तब भारत की राजनीतिक स्थिति बिगड़ गई थी। लार्ड वेलिंगडन की सरकार ने दमन-चक्र खूब जोर से चला रक्खा था। प० नेहरू श्रीयुत टंडन सरहदी गांधी तथा श्री शेरवानी आदि जेलों मे डाल दिये थे। महात्मा जी ने बम्बई के आज़ाद मैदान मे एक व्याख्यान के दौरान में सरकार की उस कुनीति पर आश्चर्य प्रगट किया और अछूतों को हिंदू जाति से पृथक न होने देने के प्रण को दोहराया। उन्होंने कहा कि हरिजन भाई क्यों रूठे दिखाई देते है? वे चाहे तो मेरे शरीर के टुकड़े २ करके समुद्र मे फेंक सकते हैं।

गिरफ्तारी

तीन दिन तक गांधी जी विभिन्न प्रांतों की दु:खदायी कथाएँ सुनते रहे। संयुक्त प्रांत तथा सीमा प्रांत मे जो आर्डीनेंस लगाए गए थे गाधी जी ने उन्हें लार्ड वेलिंगडन की ओर से दी गई नव-वर्ष की भेंट का नाम दिया। उन्होंने अपने साथियों को गोलमेज़ कानफ्रेंस की

कार्यवाही से परिचित किया। उन्होंने लार्ड वेलिंगडन को एक तार भेजा जिसमें आर्डिनेंसों, नेताओं की गिरफ्तारियाँ और सीमा-प्रांत में गोली आदि चलाने की निंदा की थी। परन्तु संधि के समय में लार्ड वेलिंगडन ने कांग्रेस को कुचलने का संकल्प दृढ़ तथा तैयारियाँ पूरी कर ली थीं। महात्मा जी बम्बई में मणि भवन में सो रहे थे कि ४ जनवरी १९३२ को उन्हें तथा सरदार पटेल को पकड़ कर यरवदा जेल में भेज दिया गया और साथ ही अनेक प्रांतों में आर्डिनेंस-शासन की घोषणा कर दी गई।

आमरण-व्रत

महात्मा जी जेल में ही थे कि इंगलैण्ड सरकार ने नया विधान घोषित कर दिया। उसमें हरिजनों को हिंदू जाति से अलग करने तथा उन्हें पृथक अधिकार देने का निश्चय किया गया था। अंग्रेजी सरकार ने वही बात कर दी जिससे भारत में अछूत सदा के लिये बने रहें और हिंदू-जाति से अलग हो जायँ। महात्मा जी यह बात कहाँ सह सकते थे। उस रात वह सो नहीं सके। इसी बात की चिंता में रहे कि अंग्रेजी सरकार के इस वार को बेकार कैसे बनाया जाय उन्होंने इंगलैंड के प्रधानमंत्री को एक पत्र में लिखा—"आप को स्मरण होगा, मैंने तो गोलमेज़ कॉनफ्रेंस में कहा था कि यदि हरिजनों को हिंदुओं से अलग किया गया तो मैं जान लड़ा दूँगा। यह बात योंही जोश में मेरे मुँह से न निकल गई थी बल्कि सोच-

विचारकर ही कही गई थी। यदि आप उस निर्णय को बदल डालें तो ठीक, नहीं तो मै तब तक व्रत रखूँगा जब तक शरीर से प्राण नही निकल जाते। व्रत के काल में मै केवल नमक और पानी का सेवन करूंगा। हाँ, यदि आप निर्णय वदल डालेगे तो मै व्रत तोड़ दूँगा अंग्रेजी सरकार ने इसे गीदड़-भवकी समझा और अपने निश्चय मे परिवर्तन करने से इन्कार कर दिया। तव महात्मा जी ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ३० सितम्बर १६३२ को आमरण-व्रत आरम्भ कर दिया।

घड़ी भर में ससार भर में खलवली मच गई। देश-विदेश से मित्रों तथा महापुरुषों के तार आने लगे। उन सब मे व्रत तोड़ने की प्रार्थना की गई थी। परन्तु महात्मा जी अपनी बात से कब टलने वाले थे ? संसार चिंता मे पड गया। क्या यह अद्वितीय महापुरुष हरिजनो के प्रेम के कारण जान पर खेल जायगा ? क्या यह सम्भव है कि अंग्रेजी सरकार अपने निर्णय को बदल लेगी ? जितने मन उतने विचार, जितने मुँह, उतनी बाते। प्रत्येक की जीभ पर गाँधी जी के व्रत की चर्चा थी। देश के कोने-कोने मे सभाएं की गईं जिन में अंग्रेजी सरकार से अनुरोध किया गया कि हरिजनो को हिंदुओ से अलग न किया जाय। पूने मे देश के वे नेता इकट्ठे हुए जो जेलों से बाहर थे। अछूतो के नेताओं को भी निमन्त्रित किया गया और उन्हे हिंदू जाति के अन्दर रहने पर उन से अधिक अधिकार दिये जो उन्हें अंग्रेजी सरकार दे रही थी।

महात्मा जी के व्रत का, जनता की प्रबल माँग का तथा यरवदा पैक्ट (२४ सितम्बर) का प्रभाव यह हुआ कि अंग्रेजी सरकार का आसन डोलने लगा। अभी व्रत पाँच ही दिन चला था कि अंग्रेजी सरकार की आँखें खुल गईं। उसने २६ सितम्बर को निर्णय वापस ले लिया। महात्मा जी ने भी यह जान कर व्रत छोड़ दिया। लोगों ने सुख की साँस ली और परमात्मा का हार्दिक धन्यवाद किया।

जनता का पैसा

उपवास के अनन्तर हरिजनों को जेल में गाँधी जी से मिलने-जुलने की खुली छुट्टी मिल गई। एक दिन उन्हीं के विषय में सलाह लेने के लिए श्री नाना भाई भट्ट और श्री परीक्षित लाल वहाँ पहुँचे हुए थे। आम के प्रसिद्ध पेड़ के नीचे सब बैठे थे। जेल के एक अधिकारी भी वहाँ उपस्थित थे। एक कैदी पास पड़ी अंगीठी पर गाँधी जी के लिए पानी गरम कर रहा था। जब पानी गरम हो गया तब पात्र उतार लिया गया। सब बात-चीत में मग्न थे। कुछ क्षणों के पीछे गाँधी जी की दृष्टि अँगीठी पर जा पड़ी। कोयले निष्फल जा रहे थे। गाँधी जी ने बात बंद कर उन्हें तुरन्त बुझाने को कहा। वह अफ़सर बोला—"आप इतनी चिंता न करें, सरकारी माल है।" गाँधी जी ने तुरन्त उत्तर दिया—"नहीं, यह तो साधारण जनता के पैसों के कोयले हैं।"

क्रियात्मक सहानुभूति

१९३२-३३ मे जब गांधी जी यरवदा जेल मे थे तो श्री छगनलाल जोशी ने भी उन के साथ पाँच मास कैद वही काटी। उन्होंने एक घटना का वर्णन किया है जिस से गाधी जी की कार्यकर्ताओं के प्रति सहानुभूति का अच्छा परिचय मिलता है। बात यों हुई कि १९३२ मे अप्पा साहेब ने रत्नगिरि जेल मे अधिकारियों से भंगी का काम करने की आज्ञा माँगी क्योकि उन पर काम का बोझ अधिक था। अधिकारियों ने इजाजत न दी। अप्पा साहेब ने आधी भूख हडताल आरम्भ कर दी। वे पहले दो के स्थान पर एक और फिर आधी रोटी खाने लगे। पीछे दाल-सब्जी भी छोड़ दी। जब गांधी जी को यह सूचना मिली तो उन्होने बड़े अधिकारी से चिट्ठी-पत्री की। शीघ्र कोई उत्तर न आया। तब सहानुभूति के रूप मे गाधी जी ने भी फल-दूध छोड़ कर ज्वार की रोटी खाना आरम्भ कर दिया। तीन दिन तक ही यह भोजन किया था कि अप्पा साहब की बात मान ली गई।

हिन्दू धर्म और हरिजन

गाधी जी के उक्त उपवास से जनता का ध्यान हरिजन-कार्य की ओर खिच गया। चिरकाल से गाधी जी उच्च वर्णों की आत्मा को जगाने के लिए प्रचार कर रहे थे परन्तु उनके हृदयों मे हरिजनो के प्रति प्रेम पैदा न हुआ था। देश के विभिन्न भागो मे हरिजनों से वहुत बुरा वर्ताव किया जाता था। कही पर तो उन्हे देखने मात्र से छूत लग जाती थी। कहीं पर उनके

चलने मात्र से मार्ग अपवित्र हो जाते थे। उन्हें ओसर-मोसर पर हलवा बनाने की, घी की पूरी पकाने की, पाव मे चाँदी का कडा पहनने की, तथा घोड़े पर चढ़ने की आज्ञा न दी जाती थी उक्त व्रत ने बहुत कुछ कार्य कर दिखाया। पढ़े-लिखे और नगर-निवासी लोग तो उनसे घृणा छोडने लग पड़े परन्तु देहात मे दशा बहुत बिगड़ी हुई थी। हरिजनों मे जागृति देख कट्टर-पन्थी क्रुद्ध हो गए। उन्होने अनेक स्थानों पर हरिजनों को पीट डाला। इसी प्रकार के दुर्व्यवहार के समाचार लगातार गाधी जी के हृदय मे कई दिन तक प्रहार करते रहे। वे चीख उठे-"ईश्वर यह अत्याचार क्यों चलने देता है ? यह अस्पृश्यता-रूपी राक्षसी तो रावण से भी भयकर है। इस से हब्शियो की गुलामी भी कहीं अच्छी है। यह धर्म-इसे धर्म कहें तो—मेरी नाक मे तो बदबू मारती है। यह हिन्दू-धर्म नही हो सकता। यह पाप हिन्दू-धर्म का अङ्ग कैसे हो सकता है ? पर क्या किया जाय ?"

२१ दिन का व्रत

२६ अप्रैल १६३३ की रात को महात्मा गाधी रोज के समान नियत समय पर सो गए। अधिक देर न हुई थी, केवल ११ बजे थे कि उनकी आँखें खुल गई और थोड़ी देर बाद उन्होने २१ दिन का व्रत रखने का निश्चय कर लिया। ऐसा क्यों ? महात्मा जी के अपने शब्दों में ही सुनिए जो उन्होंने बहुत काल पीछे किसी और प्रसंग मे कहे थे :—"मैंने जब यरवदा जेल मे २१ दिन का व्रत रखने की

घोषणा की तब मैंने उस विषय में कोई सोच-विचार का तर्क-वितर्क नहीं किया था। पहली रात जब मैं सोया तो मुझे तनिक भी भान न था कि अगले प्रातःकाल मैं २१ दिनों का व्रत घोषित कर दूंगा। परन्तु आधी रात के समय एक वाणी ने मुझे जगाया और कहा, व्रत रक्खो। मैंने पूछा, कितना? उत्तर मिला, २१ दिन का। मैं आपको बता देता हूँ कि मेरा मन उसके लिए तैयार न था। परन्तु आदेश दिन के प्रकाश के समान स्पष्ट था।"

गांधी जी ने इसे ईश्वरीय आदेश मान कर यह निश्चय किया कि व्रत ८ मई से रक्खा जाय। इस सम्बन्ध में अपना बयान एक क़ागज़ पर लिख कर फिर वे गहरी नींद सो गए।

ब्रह्म मुहूर्त में गांधी जी, वल्लभभाई और महादेव देसाई ने उठ कर 'उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है" वाला भजन गाया। देसाई जी रात में देर तक जागते रहे थे, इसलिए गांधी जी के संकेत से फिर लेट गए। तब महात्मा जी ने वह बयान पटेल जी को दे दिया। उन्होंने उसे एक बार पढ़ा, जैसे विश्वास न हुआ। दूसरी बार पढ़ा तो सन्नाटे में आ गए। सरदार गांधी जी के स्वभाव से परिचित थे। नियागरा के जल-प्रपात को रोकना सरल है, पर गांधी जी को निश्चय से विचलित करना कठिन। उन्हें तो कुछ कहने का साहस ही न हुआ। देसाई जी ने कुछ अनुनय-विनय की परन्तु

निष्फल। दूसरे दिन यह समाचार सारे संसार में फैल गया। राजा जी को पता लगा तो चिन्ता में डूब गए। चौसठ वर्ष की अवस्था और इक्कीस दिन का व्रत। गांधी जी बच न सकेंगे। उन्होंने आकर पर्याप्त तर्क-वितर्क किया परन्तु व्यर्थ। देवदास जी ने बहुत मिन्नत-समाजत की पर अकारथ। जनरल स्मट्स ने अफ्रीका से लम्बा तार दिया परन्तु बेकार। ईश्वरीय आज्ञा के सामने महात्मा जी किस की सुनने लगे थे।

राजा जी से तो वे रुष्ट हो कर बोले—'तुम मेरी सजीव श्रद्धा को मिटाना चाहते हो। तुम मेरे कहे पर बिलकुल भरोसा न करके डाक्टरों की बात मानोगे जो मेरे शरीर की नाड़ी देख कर, हृदय की धकधक की जाँच करके और खून का दबाव माप कर तुम्हें सलाह देंगे?' मैं तुम से अनुरोध करता हूँ कि डाक्टरी जाँच की कोई जरूरत नहीं है।" दूसरे दिन तड़के ही गांधी जी ने राजा जी को एक पत्र लिख भेजा जिसमें इन रूखे शब्दों के लिए क्षमा-याचना की थी।

अनेक लोगों का विचार था, गांधी जी इस परीक्षा से पार न हो सकेंगे। परंतु गांधी जी ने कहा—"मुझे मृत्यु की अभिलाषा नहीं। मैं हरिजनों की सेवा के लिए जीवित रहना चाहता हूँ। पर यदि मरना ही तो भी क्या चिन्ता? अस्पृश्यता की गंदगी जितनी मैंने जानी थी, उससे कहीं अधिक गहरी है। ईश्वर की यह इच्छा है कि मैं हरिजनों की सेवा करूँ तो मेरा

भौतिक भोजन बद होने पर भी ईश्वर मुझे जो आध्यात्मिक भोजन भेजता रहेगा, वह इस देह को टिकाए रक्खेगा। कोई अपने स्थान से न हटे। कोई मुझे उपवास रोकने को न कहे।"

उपवास ८ मई को आरम्भ हुआ और प्रभु की कृपा से २९ मई को सफलता-पूर्वक समाप्त हो गया : जितने दिन व्रत जारी रहा लोगों के कलेजे कॉपते रहे और वे व्रत की सफलता के लिए प्रार्थनाएँ करते रहे। जब व्रत समाप्त हुआ तो लोगों ने प्रभु का धन्यवाद किया और देश-विदेश मे आनन्द की तरंग दौड़ गई। कई दिनों के बाद गाधी जी ने इस व्रत के विषय मे कहा—"यह उपवास क्या था, मेरी २१ दिन की निरन्तर प्रार्थना थी।"

देश का दौरा

जिस दिन गांधी जी ने व्रत रक्खा था उसी दिन उन्हे जेल से मुक्त कर दिया गया था। व्रत की समाप्ति तथा स्वतन्त्र होने के पश्चात् गाधी जी ने नवम्बर १९३३ से जुलाई १९३४ तक के नौ मास मे हरिजन-सेवा के लिए देश भर का दौरा किया। वे जहा कहीं जाते थे, छुआ-छूत का प्रबल खंडन और हरिजन-फड के लिए धन इकट्ठा करते थे। प्रायः हर रोज तीन-चार बड़ी बड़ी सभाओं मे वे व्याख्यान देते थे। जो कार्यकर्ता उन दिनों उनके साथ थे उन्होंने उस काल की अनेक मनोहर घटनाओं का वर्णन किया है जिनमे से कुछ एक ये हैं :—

सन् १९३४ में गांधी जी अपनी मण्डली के साथ तीसरे दर्जे मे यात्रा कर रहे थे। साथ ही एक छोटी लड़की भी थी। उसने परीक्षित लाल जी से पूछा, मेरा कितना टिकट लिया है? वे बोले, आधा। टिकट खरीदते समय उन्हे खयाल न आया था कि वह बारह से ऊपर की होगी। उसी समय गांधी जी ने उनसे कहा—"अब अगले स्टेशन पर बाकी के आधे टिकट के पैसे चुका देना।"

गांधी जी हरिजन-फण्ड के लिए जनता के सामने निःसकोच हाथ फैला देते थे। वे उसके लिए मधुर प्रेरणा द्वारा स्त्रियों से गहने तक उतरवा लेते थे एक बार उन्होंने कन्याओं के लिए अपने हस्ताक्षर का मूल्य एक चूड़ी रख दिया था। परन्तु कोचीन राज्य मे भ्रमण के दिनों मे एक छोटे से गांव मे एक बालक उन्हें हस्ताक्षर के लिए छत्री भेंट करने पर तैयार हो गया। तब गांधी जी बोले—'यह मैं नहीं लूंगा। यहां तो छत्री बहुत ज़रूरी चीज है। मैं इसे कैसे ले सकता हू?'

पहले तो गांधी जी सब कहीं रेल, मोटर, लारी आदि से यात्रा करते रहे परन्तु उड़ीसा मे गर्मी के मौसम मे उन्होंने पैदल यात्रा का निश्चय किया। कारण उनकी कार के नीचे तीन-चार कुत्तों का कचूमर निकल गया था और इससे उनके हृदय पर भारी ठेस लगी।

सोने के पैसे

उन्हीं दिनों गाधी जी उड़ीसा में संबलपुर से कटक को आ रहे थे। मार्ग में अनगुल गांव मे पड़ाव किया : परन्तु वहा के कलक्टर ने गाधी जी को धर्मशाला मे ठहरने से मना कर दिया। सरकार की ओर से इस दौरे मे पहली बार अड़चन वहीं डाली गई थी। मडली ने तबू तान कर ठहरने का निश्चय कर लिया। वह आदिवासियो का प्रदेश है। वे गाधी जी का आगमन सुन कर सहस्रो की सख्या मे दर्शनों के लिए दौड़े-दौड़े आए। वे गरीब लोग अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार पैसा, टका वा आना लेकर आए थे कि महात्मा जी के चरणों मे भेट करेंगे। प्रत्येक की हार्दिक इच्छा यही थी कि यह भेट स्वय गांधी जी के हाथ मे दे। गाधी जी ने उनका वह मनोरथ भी पूरा कर दिया। वे ७-८ फुट ऊंचे मंच पर तीन घटे लगातार बैठे रहे और हाथ बढ़ा-बढ़ा कर पैसे लेते रहे। फिर बोले—"इसमे का एक एक पैसा मुझे तावे का नहीं, सोने का लगता है। इतने पैसे इन लोगो ने कितने परिश्रम के बाद इकट्ठे किए होंगे! वे कितनी दूर से पैदल चल कर उमग से इन्हे देने आए हैं। इन मे से एक को भी मैं कैसे लौटा सकता हूँ।"

गुडाकेश

महाभारत मे अर्जुन के लिए 'गुडाकेश' शब्द का प्रयोग हुआ है। उसका अर्थ है, नींद का स्वामी, अर्थात् जिसका सोना-जागना अपने आधीन हो। महात्मा जी को भी यदि गुडाकेश कहा जाय तो अनुचित न होगा। जब

आवश्यकता प्रतीत होती तब केवल १५ मिनट के लिए भी वे गहरी नींद सो सकते थे। लगातार दौरे के दिनो मे वे मोटर की पिछली बैठक पर एक गाव से दूसरे गाव को जाते समय गाढ़ी नींद ले लिया करते थे। उन्हीं दिनो ट्रावनकोर मे एक सायकाल वे नीद मे से उठे और पाच मिनट गाव मे ठहर कर फिर सोने की तैयारी करते हुए बोले—"मुझ जैसा भी कोई सोने वाला देखा है ?" एक वार उन्होंने सहज ही कहा था कि नेपोलियन घोड़े की पीठ पर सो जाता था परन्तु मै ऊंट की पीठ पर भी सो सकता हूँ।

ग्रामोद्योग का विचार

हरि-जन यात्रा मे ही गाधी जी जनवरी १९३४ मे गुरुवापुर गए थे। वहां श्री राघवन् नामक एक आश्रम-वासी युवक पास-पड़ोस के किसी गांव मे खादी का काम करते थे। उन्होंने गाधी जी से शिकायत की कि यहा खादी-कार्य मे मेरा पूरा उपयोग नहीं होता। तुरन्त ही गाधी जी के मस्तिष्क मे यह विचार बिजली के समान स्फुरित हुआ कि सब युवकों को खादी के काम मे लगा देना उचित नहीं। उनमे ग्रामोद्योग के दूसरे कार्य भी करवाने चाहिए। इस विचार ने पक्की जड़ पकड़ ली और परिणाम यह निकला कि कुछ काल पीछे ग्रामोद्योग सघ की स्थापना की गई जिसके द्वारा अनेक ग्रामीण धन्धो का पवित्र कार्य किया जा रहा है।

कांग्रेस से त्यागपत्र

हरिजन यात्रा के अन्तिम मास अर्थात् जुलाई १९३४ मे वे धन-सग्रह के

लिए लाहौर से सीधे कलकत्ते पहुचे। केवल तीन दिनों मे उन्होंने ७० सहस्र रुपया इकट्ठा कर लिया। उनके वहा जाने का एक और भी उद्देश्य था। वह यह कि वहां के कांग्रेस के दो दलों में जो मत-भेद था, उसे दूर कर दिया जाय। परन्तु गाधी जी का वह उद्देश्य पूरा न हुआ और उन्हें निराश कानपुर आना पड़ा। इससे उन्हें इतना खेद हुआ कि कुछ दिन पीछे किसी से बाते करते हुए वे बोले—"हावड़ा के प्लेटफार्म पर ही मुझे पहले-पहल काग्रेस से पृथक होने का विचार आया।" और सब जानते हैं कि उसके कुछ ही मास पश्चात् उन्होंने कांग्रेस की चार आने की मेम्बरी तक से त्याग-पत्र दे दिया और सामाजिक कामों मे अधिक ध्यान देने लगे। हां, यह बात दूसरी है कि सेगांव मे आश्रम बना लेने के बाद जब कभी कांग्रेसी नेता सलाह लेने आए तो उन्होंने कभी इन्कार नहीं किया।

सेवा-ग्राम का जीवन

सेवा-ग्राम मे वास

दाडी-कूच को पाच बरस बीत गए थे परन्तु स्वराज्य अभी न मिला था। गाधी जी प्रतिज्ञा के अनुसार परतंत्र भारत मे साबरमती आश्रम मे जाने का विचार स्वप्न मे भी न कर सकते थे। इसीलिए उन्होंने कहीं और निवास करने का विचार आरम्भ किया और अंत में मध्य प्रांत मे, वर्धा के पास, सेगाव मे रहने का निश्चय किया। कारण एक तो यहा की जल-वायु उनके अनुकूल थी, और दूसरे, उस स्थान के हिन्दुस्तान के दरमियान मे विद्यमान होने के कारण देश भर के नेताओं का वहा पहुचना आसान था और तीसरे, महात्मा जी के परम श्रद्धालु भक्त वर्धा निवासी सेठ जमनालाल बजाज की प्रबल इच्छा थी कि गाँधी जी हमारे पास ही यहीं कहीं रहें।

आरम्भ मे गाधी जी का विचार यह था कि यहां एकात मे रहूँगा, किसी को भी, यहां तक कि कस्तूरबा को भी, साथ न रक्खूंगा। जब १६३७ मे एक अमरीकन ईसाई नेता ने सेगाव (जिसका नाम पीछे सेवाग्राम रख दिया गया) मे उनसे भेंट की थी तब वहा केवल एक झोंपडी थी जिसमे गांधी जी तथा ग्रामो-द्योग का काम करने वाले पांच,छः व्यक्ति ही रहते थे। परन्तु

जब कुछ समय पीछे कांग्रेसी कार्यकर्ताओं का वहाँ आना-जाना आरम्भ हो गया तो वहां एक छोटा सी बस्ती बस ही गई। वर्धा में गांधी जी के साथ बिलकुल इस सन्यासी वाली बात हुई जिसने पहले एक बिल्ली पाली, फिर उसे दूध पिलाने के लिए गाय रक्खी और गाय के लिए ग्वाले'को भी बुलाना पड़ा और इसी प्रकार धीरे-धीरे परिवार बढ़ता गया।

यदि आप ने सेवाग्राम मे जाकर गांधी जी की दिन-चर्या नही देखी है तो स्वभावतः आपके मन मे यह जानने की उत्सुकता होगी कि सेवाग्राम कैसा है और वहा गाधी जी अपना जीवन कैसे व्यतीत करते थे? उनके सोने-जागने, खाने पीने, घूमने-फिरने, पढ़ने-लिखने, तथा दूसरे कार्य करने का क्रम रहता था? आगामी पंक्तियो से हम इन्हीं बातों पर कुछ प्रकाश डालने का यत्न करेंगे।

सेवाग्राम

पहले सेवा ग्राम मे एक ही गांधी जी की कुटी हुआ करती थी परंतु धीरे-धीरे उनकी संख्या बढ़ती गई। वे कुटियाँ बाँस और मिट्टी की बनीं हुई है और बनावट की कोई विशेष रीति भी नही। उनमे गाधी जी की कुटिया जहा सबसे छोटी थी, वहां सब से अधिक शांत और स्वच्छ थी। उसमे सजावट की सामग्री तो दूर, बैठने को कुर्सिया और सोफे भी न थे। भूमि पर ही ताड़पत्र की चटाई बिछी रहती थी और इसी पर समय-समय पर धनी-निर्धन, ज्ञानी-अज्ञानी, बड़े-छोटे सभी बैठ जाते थे। लार्ड लोथिया और

स्टेफर्डक्रिप्स जैसे महानुभावों को भी वहीं चौकड़ी लगा कर गाधी जी से बात-चीत करनी पड़ी थी। हा, मीराबेन ने कुटी की दीवारों पर मिट्टी की जो तस्वीरें बना दी थी उनसे उसकी शोभा अवश्य बढ़ गई थी।

पहले तो सेवाग्राम मे औषधालय न हुआ करता था। खाने का सोडा, अरण्डी का तेल, कुनैन और आयोडीन तथा एक या आधे दिन का व्रत रख कर गाधी जी रोगी देहातियो को नीरोग कर दिया करते थे। परंतु धीरे-धीरे रोगियो की संख्या बढ़ गई और डा० सुशीला नय्यर भी वहां जा पहुचीं। इसलिये औषधालय खोल दिया गया। बीमारों के बढ़ने से दूध की भी आवश्यकता पड़ने लगी। तब तो दुग्धालय वा डेरी भी खोली गई और ग्वाले भी लाए गए।

बापू की दिनचर्या

श्री घनश्यामदास बिरला तथा महादेव देसाई को बापू के साथ वहाँ इकट्ठा रहने का अवसर मिला है। आगामी पक्तियाँ उन्हीं के आधार पर लिखी जा रही है। महात्मा जी गरमी-सरदी मे प्रात. चार बजे उठते थे। मुंह-हाथ धोकर वे प्रार्थना किया करते थे। शौच आदि वे उस के पीछे जाया करते थे और सात बजे कुछ प्रात-राश (नाश्ता) करने के पश्चात टहलने चले जाते थे। वहाँ से लौट कर काम मे लग जाया करते थे और नौ बजे मालिश करवाया करते थे। वे मालिश का समय खाली न जाने देते थे, कुछ न कुछ लिखवाते वा सुनते रहते थे। ११ बजे स्नान से

निबट कर भोजन किया करते थे। उस के अनन्तर एक बजे से काम करते थे और फिर लगभग एक घन्टा सो कर उठ बैठते थे। तब वे शौच जाते थे और वापस आकर पेट पर मिट्टी की पट्टी बाँध कर लेट जाते थे। परन्तु लेटे हुए भी वे कार्य करते ही रहते थे। चार बजे के लगभग कुछ सूत कातते थे और पढ़ने-लिखने के काम मे लग जाते थे। पाँच बजे साँय वे भोजन कर लेते थे और फिर घूमने निकल जाया करते थे। सात बजे साँयकाल की प्रार्थना के अनन्तर वे फिर काम मे लग जाते थे और रात को साढ़े नौ बजे सो जाया करते थे।

सब से प्यारा काम

गाँधी जी रोगियों की सेवा करके जितने प्रसन्न होते थे उतने और किसी कार्य से नहीं। वे अपने हाथ से कोढ़ी की मरहम-पट्टी करने मे भी संकोच न करते थे। कुछ बरस पहले वे वाइसराय महोदय से मिलने दिल्ली गए थे। जब बात-चीत सफल न हुई तो एक दिन वाइसराय ने पूछा—'आप सेवाग्राम कब जाने का विचार रखते हैं?' गाधी जी बोले—"जब तक आप को मुझ से काम है, मुझे यहा रहना ही होगा। परन्तु यदि यहाँ मेरी आवश्यकता न हो तो आज ही जाना चाहता हू। मैं अपने कई दुःखो और बीमारों को छोड़ आया हू जो मेरे बहुत ही निकट के साथी हैं। मुझे उनके साथ रहने पर जो खुशी होती है उतनी किसी और बात से नहीं होती।" यदि उन्हें जीवित प्राणियों की चीर-फाड़ से घृणा न होती तो वे एक बैरिस्टर बनने की बजाय सफल सर्जन बनते।

तकली पर

उन्हे रोगियों की सेवा मे ही आनन्द नहीं आता था बल्कि वे रोगों के सरल-सस्ते इलाज के लिए भी निरन्तर खोज करते रहते थे।

हरिजन-प्रेम

हरिजनो के लिए गाधी जी के मन मे प्रेम का सागर लहरें मारता रहता था। एक बार एक नाराज़ हरिजन-मण्डली सेवाग्राम मे भूख हड़ताल करने को आ गई। जब उन्होंने रहने को स्थान मागा तो गांधी जी बोले—"तुम लोग जहां रहना चाहो, वहीं जगह मिल जायगी। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मै अपनी झोंपड़ी भी तुम्हे दे सकता हू।" गाधी जी की इस उदारता से उनका क्रोध काफूर हो गया। उन्होंने अपने रहने के लिए कस्तूरबा की कुटी का एक भाग और उसके साथ का कमरा चुना।

कस्तूरबा ने हंसते हुए पूछा—"मै कहा रहूगी ?"

गाधी जी बोले—"क्यों, तुम्हे अकेले को कितना स्थान चाहिए ? मैंने तो अपनी कुटी भी देने को कह दिया था।"

तुम तो कहोगे ही, ये तुम्हारे बेटे जो है।"

गांधी जी—"और ये तेरे बेटे कहा नहीं है ?"

यह सुन कर कस्तूरबा चुप रह कर चली गईं।

सेवाग्राम से प्यार

एक बार एक अमरीकन पत्रकार सेवाग्राम में आ पहुचा। उसे कोई विशेष प्रश्नों के उत्तर तो लेने न थे, इसलिए संसार की स्थिति के सम्बन्ध में साधारण प्रश्न पूछने लगा। गांधी जी तुरन्त बोले—'भाई, मेरी स्थिति तो कुंए के मेंढक सी है। मेरे लिए तो सारी दुनिया

हिन्दुस्तान और सेवाग्राम मे समाई हुई है। मेरे अनेक साथी ससार की राजनीति का जैसे अभ्यास करते हैं, वैसे मै नही करता।"

सादा भोजन

गांधी जी का भोजन सादा होता था। वे एक दिन में पॉच से अधिक वस्तुओं का प्रयोग न करते थे और उन पॉच मे नमक भी आ जाता था। वे भोजन के सम्बन्ध मे अनेक प्रयोग करते रहते थे और कुछ काल बाद उसे बदल लिया करते थे। वे भी दिन थे जब वे केवल मूंगफली और गुड़ पर ही गुज़र करते थे। एक समय उन्होंने दूध बिल्कुल छोड़ दिया था और उसके स्थान पर सौ से अधिक बादाम खा लेते थे। ऐसा भी देखा गया था कि उन्हो ने रोटी बिल्कुल छोड़ दी और सौ-सौ खजूरें खाने लगे। कुछ वर्ष पूर्व नीम की कच्ची पत्तियों और इमली का प्रयोग खूब करते थे परन्तु पीछे उन्हें छोड़ दिया था। व कच्चा अनाज भी खाने लगे थे परन्तु रुग्न होने के कारण उसे छोड़ना पडा। जीवन के अन्तिम वर्षों मे उन्हो ने अनाज बिल्कुल छोड़ दिया था। दूध और फलों के रस आदि पर ही निर्वाह करते थे। पाठक उक्त पंक्तियां पढ़ कर खाने-पीने मे महात्मा जी जैसा बनने का यत्न न करें क्यों कि इस से उन्हें हानि होने की सम्भावना है।

भ्रमण और स्वास्थ्य

जैसे गांधी जी प्रार्थना मे नागा न पड़ने देते थे वैसे ही सैर मे भी। यौवन मे तो वे एक-एक दिन मे पचास मील पैदल चल चुके थे परन्तु

बुढ़ापे में भी घूमने-फिरने का व्यायाम जारी रक्खा। वे कहा करते थे—"भोजन एक दिन न मिले तो न सही, नींद भी कम मिले तो कोई बात नहीं, परन्तु सैर न मिले तो रोग को समीप समझो।"

जीवन और नींद

ऊपर कह चुके हैं कि प्रायः वे रात को ९½ बजे सो कर प्रातः ४ बजे जाग उठा करते थे। परन्तु उनमें एक विशेषता और भी थी। वे यदि कार्यवश आधी रात तक भी जागते रहते तो भी प्रातः ४ बजे उठकर ठीक समय पर प्रार्थना कर लिया करते थे। वे जब चाहते १०-१५ मिनट में ही गहरी नींद ले कर जाग भी सकते थे। कुछ बरस पहले उन्हें कई अंग्रेज मिलने आने वाले थे। गांधी जी बोले—"मुझे तो नींद आ रही है, कुछ सो लूँ।" एक मित्र ने कहा "पंद्रह ही मिनट तो हैं।" वे बोले—"पंद्रह मिनट तो पर्याप्त होते हैं।" वे खाट पर लेट गए एक ही मिनट में खुर्राटे भरने लगे और आश्चर्य तो यह है कि १५ मिनटों के बाद स्वयं ही जाग उठे। जब मित्र ने उनके निद्रा पर अधिकार की प्रशंसा की तो बोले—"जिस दिन नींद पर मेरा काबू न रहेगा, उस दिन मैं भी न रहूँगा।"

वस्तुओं की सँभाल

गांधी जी किसी भी वस्तु को नष्ट करने के बड़े विरोधी थे। वे सुतली के गज़-आधगज़ के टुकड़ों को भी सभाल कर रख लेते थे। उनकी कुटिया में हर वस्तु अपने ठिकाने पर रहती थी। हमारी तरह कभी उन्हें

किसी वस्तु को ढूँढ़ने मे समय नष्ट न करना पड़ता था। एक मित्र ने देखा कि उनके चर्खे के नीचे काले कपड़े का जो टुकड़ा रखा रहता था वह बारह बरस से वही चला आ रहा था।

रजाई मे रुई

एक बार जाड़ों मे एक रोगी के लिए रजाई की आवश्यकता हुई। गाधी जी ने कस्तूरबा की फटी पुरानी साड़ी मॅगवाई और अपने हाथों से मापा कि कितना वस्त्र लगेगा। रजाई मे रुई के स्थान पर पुराने कागज़ो की तहें सी दी गई। गाधी जी ने सब काम बड़े चाव से कराया और समीप स्थित एक मित्र से बोले—"कि अखबार रूई से अधिक गरम है।" मित्र ने हॅसी मे कहा—"ऐसे लगता है जैसे देश के बड़े कामों की अपेक्षा आपको आश्रम के इन कामों मे अधिक रुचि है।" तुरन्त उत्तर मिला "अधिक तो नहीं परन्तु उतनी ही है, ऐसे कहो।"

सगी-साथी

सेवा-ग्राम मे गाधी जी के साथ ऐसी विभिन्न स्वभावों और योग्यताओं के व्यक्ति रहते थे कि नए आदमी को वह चूँ-चूँ का मुरब्बा ही मालूम होता था। परन्तु प्रत्येक किसी न किसी ऊँचे उद्देश्य को ही लेकर वहां टिका हुआ था। कई एक को तो गाधी जी अपने से ऊँचा ही मानते थे। जब उन्हे किसी आध्यात्मिक प्रश्न पर सोचना होता था तो वे श्री विनोवा भावे, काका साहब वा किशोरलाल भाई को बुला लिया करते थे। आश्रम में ऊँचे से ऊँचा काम करने वाला

हलके से हलका काम करने वाले के साथ एक ही पंक्ति में बैठ कर भोजन करता था। आश्रम के सब काम—जैसे पाखाना उठाना, कपड़े धोना, बर्तन मॉजना, झाड़ू लगाना आदि आश्रम वासी प्रसन्नतापूर्वक स्वयं किया करते थे। इस प्रकार उनमें ऊँच-नीच वा जात-पात का घृणित प्रश्न ही न उठता था।

गांधी जी समय का बड़ा ध्यान रखते थे। पल भर भी व्यर्थ न जाने देते थे। वे मिलने वालों से प्रायः भोजन, सैर वा चर्खा चलाते समय मिला करते थे। इस प्रकार वे 'एक पन्थ दो काज' की कहावत चरितार्थ कर दिखाते थे।

मौन का महत्त्व

गांधी जी अशान्त वातावरण के प्रभाव से बचने तथा चिन्ता, क्रोध आदि को दूर करने के लिए मौन-रूपी औषधि का प्रयोग करते थे और उसे तब ही तोड़ते थे जब किसी रोगी की सेवा वा किसी दर्शनार्थी से भेंट करनी होती थी। एक बार एक मित्र ने उनसे मौन की महिमा के बारे में प्रश्न किया। तब वे बोले—"जब जब मैं मौन रहता हूँ तब तब मुझे ईश्वर के समीप होने का ज्ञान होता है। मौन व्रत आरम्भ करने में मेरा उद्देश्य यही था कि सारा दिन निर्विघ्न काम कर सकूँ। जब मुझे एकाग्रता से काम करने की आवश्यकता होती है तो मैं सोमवार के अलावा भी मौन धारण कर लेता हूँ। इसका आरम्भ शारीरिक सुविधा के लिए किया गया था परन्तु अब देखता हूँ कि आत्मविकास के

लिए भी यह पर्याप्त सहायता करता है। कई दिनों तक जब मैं निरन्तर चुप रहा हूँ तब मुझे प्रभु की समीपता का अधिक से अधिक अनुभव होता है।"

स्वाध्याय गांधी जी श्रीमद्भगवद्गीता और तुलसी रामायण में बहुत अधिक श्रद्धा रखते थे। हर कठिन अवसर पर इन ग्रन्थों का पाठ करके शान्ति प्राप्त कर लिया करते थे। उनकी प्रार्थना में गीता के समान ही तुलसी रामायण का भी स्थान रहता था। तुलसीदास जी का निम्न-लिखित दोहा जो सदा उनकी जीभ पर नाचता रहता था :—

जड़ चेतन गुण दोष मय, विश्व कीन्ह करतार।
सन्त हंस गुण गहहि पय, परिहरि वारि विकार।

अर्थः—परमात्मा की यह सृष्टि दो प्रकार की है—जड़ और चेतन। इसमें गुण भी पाए जाते हैं और दोष भी। परन्तु जैसे हंस दूध और पानी को पृथक्-पृथक् कर लेता है वैसे ही सन्त-जन भी गुण ले लेते हैं, दोष छोड़ देते हैं। गांधी जी उस विचार रत्न को अवश्य पढ़ा करते थे जो बम्बई के 'टाईम्स ऑफ इन्डिया, नामक समाचार-पत्र में प्रतिदिन प्रकाशित हुआ करता था। समय के अभाव के कारण पत्र में और चाहे कुछ भी न पढ़ें परन्तु उसे पढ़े बिना शान्ति न मिलती थी। कई बार वे उन्हें पढ कर दीवार आदि पर भी लटकवा दिया करते थे।

सब धर्मों से प्रेम

गांधी जी की प्रार्थना में अपने ही धर्म-ग्रन्थों के नहीं बल्कि दूसरे धर्म-ग्रन्थों के भी वाक्यों का पाठ होता था। शायद इस उदारता का कारण इस निम्नलिखित घटना से मिल जाय। एक बार सरदार पटेल ने उनसे किसी प्रसंग में कहा—"आपको तो सभी देवों को एक-साथ प्रसन्न करना भी आता है। यदि किसी लेख मे आपने वाइसराय के भाषण का कुछ समर्थन किया हो तो उसी लेखमे जय-प्रकाश-नारायण और सोशलिस्टों की भी स्तुति कर दी है।"

गांधी जी हँसते हुए बोले—"सत्य है। यह बात मुझे मेरी माता ने सिखाई थी। वह मुझे विष्णु और शिव दोनों के मन्दिरों मे जाने को कहा करती थीं। जब हमारा ब्याह हुआ तो हम हिन्दू-मन्दिरों मे ही नहीं बल्कि एक फकीर की दरगाह पर भी दर्शन करने गए थे।"

हँसी-ठट्ठा

सेवाग्राम मे गांधी जी का अधिकतर समय गम्भीर बातों मे ही बीतता था। प्रतिदिन ही देश विदेश के गण्य-मान्य व्यक्ति उनसे मिल कर विभिन्न विषयों पर सलाह लिया करते थे। परन्तु कई बार जब सैर आदि पर कोई दूसरा व्यक्ति साथ नहीं होता था तो वे अपने साथियों या होनहार पोतों से घुल-मिल कर बातें करते और खूब हँसते-खिल खिलाते थे। एक पूछता—"बापू जी आप दिल्ली जाने वाले हैं क्या ?"

'हाँ'

"क्यों ?"

"वाइसराय से मिलने के लिए।"

"परन्तु आप ही हर बार वाइसराय से भेंट करने वहाँ जाते हैं, वाइसराय आप को मिलने यहाँ क्यों नहीं आते ?"

इस पर सब के सब हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते थे।

विचार-शक्ति

परन्तु ऐसे अवसर थोड़े ही होते थे। कारण, सैर के समय समाचार-पत्रों वाले प्रायः उनके साथ हो लेते थे और सामयिक विषयों पर उनके विचार लिखते जाते थे। बड़े गहन-गम्भीर विषयों पर भी वे अपने विचार बिना विशेष चिन्तन के लिख दिया करते थे। भारत-मंत्री लार्ड जेटलैंड के बयान का उत्तर उन्होंने हजामत और मालिश कराते समय लिखवा दिया था।

एक बार एक व्यक्ति स्वतंत्रता-दिवस की प्रतिज्ञा लेकर गांधी जी के पास पहुँचा और बोला—"इस प्रतिज्ञा में से इतने अधिक अर्थ निकलते हैं कि मैं समझ नहीं सकता कि आपने इसे कैसे बनाया होगा ? आप मुझे क्या करने की सलाह देते हैं ?",

गाधी जी बोले—"देखिए वेद के मंत्रों में से अनगिनत अर्थ निकलते हैं या नहीं ? हमारी यह प्रतिज्ञा भी वेद के मंत्र जैसी ही है। यदि आप में उसका ठीक अर्थ निकालने की योग्यता और हिम्मत हो तो प्रतिज्ञा लीजिए नहीं तो छोड़ दीजिए।"

यह है संक्षेप मे उस महापुरुष की दिनचर्या तथा विशेष धृत्तियाँ जिनका नाम आज हर बच्चे-बूढे की ज़बान पर है।

इन्हें पढ़ कर कोई व्यक्ति उस विद्वान् से सहमत हुए बिना नहीं रह सकता जिस ने कहा था कि यदि ससार के लोग महात्मा गाँधी के समान बन जायँ तो परमात्मा पृथिवी पर चलने लगे।

रचनात्मक कार्य-क्रम

हम पीछे कह चुके हैं कि गांधी जी ने १६३५ से राजनीतिक कार्यों मे नेतृत्व करना छोड़ दिया था। वे कांग्रेस की मेम्बरी से हट गए थे। अब सवा ग्राम मे रहते हुए उन्होंने अपना अधिकतर समय देश के रचनात्मक कार्यों मे लगाना आरम्भ कर दिया। इस कार्य-क्रम मे उन्होने जिन तेरह बातों को लिया, उनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है:—

१—सॉम्प्रदायिक एकता—प्रत्येक भारतीय इस बात का अनुभव करे कि वह ४० करोड़ भारतीयों से अलग नहीं है। दूसरे धर्मों के प्रति भी वही आदर-भावना रक्खी जाय जो अपने धर्म के प्रति है। स्टेशनों आदि पर हिंदू पानी, मुस्लिम चाय आदि की लज्जाजनक ध्वनिया न उठनी चाहियें। सॉम्प्रदायिक स्कूल, कालिज तथा हस्पताल आदि न होने चाहिएं।

२—छुआ-छूत का नाश—छुआ-छूत हिंदू धर्म पर एक भद्दा धब्बा है और घोर सराप है। इसे नष्ट करने का पूरा यत्न करना चाहिये।

३—नशाबन्दी—शराब, अफीम आदि के विरुद्ध प्रबल प्रचार करना चाहिए। कॉंग्रेस कमेटियों को चाहिये कि मजदूरों आदि के लिए मन-बहलाव की सस्ती दुकानें खोलें जहाँ उनके लिए खाने-पीने के अतिरिक्त अंतर्द्वार (Indoor) खेलों का भी प्रबंध हो।

४—खादी—खादी आर्थिक स्वतंत्रता का चिन्ह है। यह इस बात की प्रेरणा करती है कि हमारा प्रेम स्वदेशी वस्तुओं से हो। हम हर आवश्यक वस्तु को भारत में तैयार कर लें। प्रत्येक को धनुप-तकली पर सूत कातना चाहिये, जिस की रफ्तार चरखे के तुल्य है।

५—ग्रामोद्योग—गाँव मे पिसाई, कुटाई, सावुन, कागज, तथा दियासलाई वनाना, चमड़ा रंगना तथा तेल आदि निकालने के काम हाथों से किये जाएँ, मशीनों से नहीं।

६—गाँवों की स्वच्छता—गाँव इतने साफ़-सुथरे रक्खे जाँय कि उन्हे स्वच्छता के नमूने कहा जा सके।

७—नई वा वुनियादी शिक्षा—इसे इस उद्देश्य से जारी किया जाय ताकि गाँव के बच्चे आदर्श देहाती वन सकें। इस से वुद्धि के साथ शरीर की भी उन्नति होती है।

८—प्रौढ़ शिक्षा—(Adult Education)बड़ी आयु के लोगों को पहले सच्ची राजनीतिक शिक्षा देनी चाहिये। उदाहरण के रूप मे उन्हें देश की लम्बाई-चौड़ाई, महिमा, आवादी आदि के सम्बन्ध मे वताया जाय। पढ़ाई-लिखाई इसके पीछे हो।

९—स्त्रियों की उन्नति--चिरकाल से स्त्री-जाति को कानून तथा रिवाजों ने दवाए रक्खा है और इस की जिम्मादारी पुरुषों पर है। स्वराज्य के संग्राम में उन्हें अपना मित्र और सहकारी समझा जाय।

१०—स्वास्थ्य-रक्षा की शिक्षा—उसके मौलिक नियम निम्नलिखित हैं :—

(क) अत्यन्त पवित्र बातों पर विचार करो। निकम्मे तथा अपवित्र विचारों को मन से निकाल फेंको।

(ख) दिन-रात अधिक से अधिक ताजा पवन का सेवन करो।

(ग) बौद्धिक तथा शारीरिक दोनों काम उचित मात्रा में करो।

(घ) बैठते और खड़े होते समय सीधे रहो। सब काम साफ़-सुथरे ढग पर करो। यह स्वच्छता तुम्हारे मन की स्वच्छता को भी प्रकट करने वाली हो।

(ङ) भोजन मनुष्य-मात्र की सेवा मे समर्थ होने के लिए करो। वह इतना हो कि तन-मन स्वस्थ रह सकें। मनुष्य जो खाता है सो बनता है।

(च) कवल स्वच्छ वायु, जल तथा भोजन का सेवन करो।

११-राष्ट्र भाषा का प्रचार—राष्ट्रभाषा हिंदी ही है, इसमे कोई सन्देह नहीं। हाँ, जब यह फ़ारसी लिपि मे लिखी जाती है तब इसे उर्दू कहा जाता है। काग्रेस के १९२५ मे कानपुर के अधिवेशन मे 'हिंदुस्तानी' नाम दिया था।

१२—अपनी प्राँतीय भाषा से प्रेम—प्रत्येक को अपनी प्राँतीय भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त करना चाहिये और उसकी उन्नति के लिए यत्नशील बनना चाहिए।

१३—आर्थिक समानता— हिंसा-रहित स्वराज्य के लिए आर्थिक समानता सब से बड़ा साधन है। स्वतत्र भारत मे नई दिल्ली के गगनचुम्बी भवनों और गाँवों की झोंपड़ियों का अन्तर एक दिन भी नहीं टिक सकता। यदि धनवान् अपनी इच्छा से अपने धन को निर्धनों के साथ बाँट न लेगे तो एक न एक दिन हिंसा-पूर्ण विद्रोह होकर रहेगा।

इन कामों को भली-भाँति चलाने के लिये उन की देख-रेख में चर्खा सघ, ग्रामोद्योगसघ, हरिजन-सेवक-सघ आदि अनेक सस्थाए चुप-चाप उपयोगी कार्य करती रही और अब कर रही हैं।

१९३५ का विधान

गाधी जी कांग्रेस से तो पृथक हो गए थे परन्तु समय-समय पर राजनीतिक बातों पर अपने विचार प्रकट करते रहते थे। गोलमेज कान्फ्रेंस की समाप्ति के पश्चात इगलैंड की पार्लियामेंट ने १९३५ मे नया गवर्नमेंट आव इण्डिया ऐक्ट पास किया जिसके आधीन शासन प्रणाली में कुछ और अधिकार दिए गए। उस समय महात्मा जी ने उस ऐक्ट का बड़ा विरोध किया और स्पष्ट शब्दों मे कह दिया कि भारतवासी इसे स्वीकार न करेंगे। कांग्रेस का जो अधिवेशन २७ और २८ दिसम्बर१९३६ को फैजपुर मे पण्डित जवाहरलाल नेहरू के प्रधानत्व मे हुआ था उस मे १९३५ के उस विधान को ठुकरा दिया गया और साथ ही यह घोषणा भी कर दी गई कि

१ अप्रैल १६३७ को उसके विरोध मे देशभर मे पूरी हड़ताल की जाय ।

कांग्रेस का शासन

कांग्रेस ने साथ ही यह निश्चय किया कि कौंसिलों के चुनाव में भाग लिया जाय और इस प्रकार कौंसिलों के अन्दर जाकर उस नए विधान को असफल बना दिया जाय। जब कौंसिलों के चुनाव हुए तो परिणाम बहुत सन्तोषजनक निकला। ११ प्रान्तों मे से ८ में कांग्रेस का बहुमत हो गया। यदि कांग्रेस चाहती तो तुरन्त वहां अपने मन्त्रिमण्डल बना लेती परन्तु अभी मार्ग मे कई अडचनें थीं। वायसराय, गवर्नरों तथा कांग्रेस के बीच में कई बातों पर मतभेद था। इसलिए कांग्रेस ने मन्त्रिमण्डल न बनाए। अन्त मे परिस्थिति को देख कर महात्मा जी ने समझौता करा दिया और भारत के आठ प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बन गए। उन दिनों महात्मा जी ने कई सुन्दर लेख लिखे जिन मे उस नीति का निर्देश किया गया जिस पर कांग्रेसी प्रान्तों में आचरण करना उचित था। अनेक प्रांतों मे नशाबन्दी, देहातसुधार तथा प्रौढ़-शिक्षा आदि के लोक-हित के कार्य तुरन्त आरम्भ कर दिए गए।

वन्दी-मोचन

देश के विभिन्न प्रान्तों में अनेक कारागारों मे सैकड़ों-सहस्रों राजनीतिक वन्दी अभी तक सड़ रहे थे। अब महात्मा जी ने अपना ध्यान उस ओर देना आरम्भ किया। परिणाम यह हुआ कि जिन प्रान्तों में कांग्रेस का

राज्य था वहां तथा दूसरे प्रान्तों में भी अनेक राजनीतिक बंदी उनके प्रयत्न से मुक्त हो गए।

डा० खरे का बहिष्कार

इन दिनों अन्य काग्रेसी प्रांतों मे तो सब काम भली भाँति होते रहे परंतु मध्य-प्रांत में मंत्रि-मण्डल में आपस में मनमुटाव हो गया। वहाँ के प्रधान मंत्री डा० खरे ने काग्रेस की पार्लियामेंटरी कमेटी के अनुशासन को तोड़ दिया। उन्होंने गवर्नर से मिलकर वहाँ नया मन्त्रिमंडल अपने आप ही बना डाला, काग्रेस को पूछा तक नहीं। काग्रेस के चोटी के नेताओं में पड़ी खलबली मच गई क्योंकि इससे काग्रेस का मान मिट्टी में मिल रहा था। उन्होंने गाधी जी से सलाह ली। गाधी जी ने काग्रेस की मान-मर्यादा की रक्षा के लिए कार्य-समिति को यह परामर्श दिया कि डा० खरे का बहिष्कार कर दिया जाय और उन्हे काग्रेस से कोई उत्तरदायित्व-पूर्ण पद न दिया जाय।

सीमा-प्रान्त में

जब दूसरे प्रान्तों के समान सीमा-प्रांत मे भी काग्रेसी राज्य स्थापित हो गया तो वहाँ के पठानों ने अपने प्रधान-मन्त्री डा० खान साहब से इस बात का अनुरोध किया कि हमें गाधी जी के दर्शन कराइए, उन्हें यहाँ बुलाइए। तब महात्मा जी को सीमा-प्रांत में पधारने का निमन्त्रण भेजा गया जो उन्होंने स्वीकार कर लिया। सीमा प्रांत में खान बादशाह ने पठानों की सुर्खपोश (रक्तवेप) नाम की संस्था बनाई हुई थी जो सच्चे हृदय से मनुष्य-मात्र की सेवा करने

तथा देश को स्वतंत्र कराने के शुभ काम में लीन थी। उन्होंने गाधी जी के आगमन का समाचार सुना तो अपने वेश के समान द्वार-दीवार, गाय-भैंस, भेड़-बकरी तथा पेड़-पौधे भी लाल रंग मे रंग दिए।

जब महात्मा जी की मोटर तिरंगा झण्डा फहराती हुई अटक के पुल के पार पहुँची तो पठानों के दिल बल्लियों उछलने लगे। अटक से पिशावर ४५ मील है। मार्ग भर में स्थान-स्थान पर सुर्ख पोश उनके स्वागत के लिए खड़े थे। दूर-समीप के गावों से सहस्रो लोग निज नयनों की प्यास बुझाने आए हुए थे। वे गहरी श्रद्धा से सलाम करते और 'मलेश बाबा' (अवधूत साधु) की जय के नाद लगाते थे। धीरे-धीरे चार घंटों मे मोटर पिशावर जा पहुंची और डा० खान साहब की कोठी पर जा कर रुकी। सहस्रो लोग स्वागत के लिए घंटों से बैठे थे। जब उन्होंने पहली बार गांधी जी को देखा तो बोले आज जन्म सफल हुआ नयन कृतार्थ हुए।

पठान बुढ़िया

हर स्थान के समान वहा भी प्रार्थना का नित्य-नियम आरम्भ कर दिया गया। दूर-दूर से लोग उसमे सम्मिलित होने के लिए आने लग पड़े। एक दिन एक वृद्ध पठान स्त्री अपने बच्चों को साथ ले गांधी जी के दर्शन करने आई। वह अंग्रेजी प्रदेश की सीमा की परली ओर से पैदल चल कर आई थी। ५५ मील चलने से उसके पांव सूज गए थे। वह दर्शन कर इतनी अधिक प्रसन्न हुई कि हर्ष के अश्रु

उसके नेत्रों से वह निकले। वह बात-चीत तो कुछ न कर सकी परन्तु मूर्ति के समान एकटक श्रद्धा-पूर्वक गांधी जी को देखती रही ।

उत्तमानजई में

गाधी जी पिशावर में ही नहीं रहे, वे सीमा-प्रात के कई गावो मे भी गए। जब वे सरहदी गाधी के गाव उत्तमानजई मे भी पहुचे। वहां उन्हें एक साफ-सुथरी सुन्दर झोंपडी मे ठहराया गया। जिसके चारों ओर सुगन्धित फूलों के पौदे लगाए गए थे। कुटिया के सब तरफ रंग-बिरगे झडे फहरा रहे थे। कई धनी पठान अपने साथियों पर क्रुद्ध हो रहे थे। वे कहते थे—"इतने महान् नेता को एक झोंपड़ी मे क्यों ठहराया ? स्वदेश मे जाकर पठानो के अतिथि-सत्कार के सम्बन्ध मे क्या कहेंगे ? उन्हे तो किसी ऊंची अटारी वा बढ़िया बगले में ठहराना चाहिए था।" परन्तु उन लोगो को क्या पता था कि महात्मा जी राजाओ के भवनों की अपेक्षा कंगालो की कुटियों मे अधिक प्रसन्न रहते थे। गांधी जी ने वहां किसानो के जीवन का ध्यान से अध्ययन किया और पठानों के घरेलू जीवन का भी परिचय प्राप्त किया।

सशस्त्र रक्षक

गांधी जी की अपूर्व सादगी देख कर पठान मुग्ध हो गए। रात को गॉव भर मे दीप-माला की गई। प्रातः गांधी जी घूमने को निकले तो दो-चार ही पग चल कर रुक गए। पूछा—"ये बन्दूकची कौन हैं ?"

उत्तर मिला—"आप की हिफ़ाज़त के लिए हैं।"

गाधी जी—"हिफ़ाज़त कैसी ?"

सुर्ख़पोश—"जनाब, गॉव के करीब ही कबायली भी रहते हैं। वे अंग्रेज़ों के एजेंट हैं। हम डरते हैं, कोई ऐसी-वैसी बात न हो जाय।"

गांधी जी—"नही नहीं, मुझे कोई नहीं मार सकता। मुझे ईश्वर पर विश्वास है। वही मेरा रक्षक है। यदि मुझे मरना ही है तो तुम्हारी बन्दूक मुझे नहीं बचा सकती।" मैं तो साधु हू। मुझे कौन मारेगा ? ये बदूके छोड़ आओ।"

पठानों के उपहार

गाधी जी गाँव के पास-पड़ोस में घूमते रहे। उन्होंने अनेक स्त्री-पुरुषों से बात-चीत की। सरल हृदय पठानो ने अपने अतिथि का यथाशक्ति सत्कार किया। उनके पास हीरे-जवाहरात और धन-रत्न न थे परंतु जो कुछ भी पत्र-पुष्प थे उन्होंने सादर चरणों मे समर्पित कर दिए जरा देखिए उनके उपहार कैसे थे ? एक स्थान पर उन्होंने एक ऐसी रोटी भेंट की जो तोल मे छः सेर और मोटाई मे दो इञ्च थी। पठान ने भेंट देते हुए कहा-"हम ऐसी रोटी तब पकाते है जब हमे युद्ध में जाना होता है। उस समय इस का एक-एक टुकड़ा सब बॉट कर खाते है।" एक दूसरे स्थान पर उन्होंने घास की बनी हुई चप्पल भेंट की जो प्रायः पर्वतीय प्रदेश मे पहनी जाती है।

एक स्थान पर सभा लगी हुई थी। एक पठान ने आगे बढ़ कर श्रद्धा-पूर्वक पिस्तौल भेंट करने की इच्छा प्रकट की। गाधी जी हाथ जोड़ कर उसे लौटाते हुए बोले—"यह मेरे काम की वस्तु नहीं। मै तो अहिंसा का पुजारी हूँ।"

राजनीतिक सम्मेलन

उन्ही दिनों पिशावर के शाहीबाग मे एक विराट् राजनीतिक सम्मेलन मौलाना हुसैन अहमद मदनी के प्रधानत्व मे हुआ। महात्मा जी उसमे सम्मिलित हुए। प्रान्त भर से लाखों सुर्खपोश उस सम्मेलन मे पहुँचे। कार्यवाही पश्तो भाषा मे हुई। पहले पश्तो मे कविताएं पढ़ी गईं जिनमें महात्मा जी के प्रति हार्दिक स्वागत किया गया। एक कविता का भाव यह था—"ऐ मलग बाबा, आज सीमाप्रात का प्रत्येक पठान नवीन उमगो से पूर्ण हो कर रणक्षेत्र मे निकल आया है। वह आप की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा है। आप के तनिक से सकेत से वह अग्नि ज्वाला मे कूद सकता है, उमड़ती हुई बाढ़ मे डूब सकता है, पर्वत से टक्कर मार सकता है और प्राणों की बाज़ी लगा सकता है।"

सम्मेलन ६ से १२ बजे रात तक होता रहा। महात्मा जी ने उनकी श्रद्धा के लिए धन्यवाद किया और बोले—"आप के पवित्र प्रेम ने मुझे मुग्ध कर दिया है। इस भारी सख्या ने मुझे चकित कर दिया है। ईश्वर जाने इस शक्ति का प्रयोग कहाँ हो। लाखों का यह सम्मेलन वस्तुतःमहत्त्वपूर्ण है।'

सीमा-प्रांत मे वह पहला अवसर था जब कि स्त्रियाँ भी एक सार्वजनिक सभा मे सम्मिलित हुई थीं।

राजकोट का मामला

अंग्रेज़ी भारत की देखा-देखी देसी रियासतों में भी राजनीतिक जागृति आ रही थी। शताब्दियों से रियासतों के शासक प्रजा के साथ निरंकुशता का वर्ताव करते आ रहे थे। परंतु अब रियासतों की प्रजा ने भी करवट बदली थी। १६३६ में राजकोट, जयपुर आदि राज्यों में प्रजा ने उत्तरदायी शासन की बलपूर्वक माँग की। राजकोट मे स्थिति गम्भीर होती जाती थी। महाराज ने तो उत्तरदायी शासन स्थापित करने की घोषणा कर दी थी परंतु राज्य के दीवान दरबार वीरावाला मनमानी करते जाते थे। उन मे और प्रजा में नया विधान तैयार करने वाली समिति के सम्बन्ध मे झगडा उठ खड़ा हुआ था। महाराज की घोषणा का जनता एक अर्थ करती थी और दरबार वीरावाला दूसरा। दिन दिन मत-भेद की खाई चौडी होती जाती थी। तब झगड़े का निपटारा करने के लिए गाधी जी स्वय राजकोट गए परन्तु पूरा यत्न करने पर भी उन्हे सफलता न मिली। लाचार उन्होंने आमरण व्रत धारण कर लिया। सारे भरत का ध्यान उधर खिंच गया। वाइसराय ने देखा, परिस्थिति बिगड़ती जा रही है। उन्होंने निर्णय के लिए यह मामला फेडरल कोर्ट के प्रधान न्यायाधीश के सपुर्द कर दिया और गाँधी जी से व्रत भग करने का अनुरोध किया।

महात्मा जी ने व्रत तोड दिया । न्यायाधीश ने जनता के पक्ष मे निर्णय दिया । इस पर महाराज और दरबार वीरावाला खीझ से गए । उन्होंने फिर कानूनी अड़चनें डालना आरम्भ कर दिया अब गॉधी जी ने यह विचारा कि महाराज पर कानूनी दबाव न डाला जाय और उन्हे स्वयं ही उदारता दिखाने का अवसर दिया जाय । यह नीति काम कर गई । महाराज ने विधान परिषद् स्थापित करने के लिये समिति बना दी और इस प्रकार गुत्थी सुलझ गई ।

सुभाष बाबू का त्याग पत्र

१६३८ मे कॉग्रेस के प्रधान बाबू सुभाष चन्द्र बोस बनाए गए थे । सब शासन के सम्बन्ध मे कांग्रेसियो मे तीव्र मत-भेद उत्पन्न हो गया था । सुभाषबाबू अंग्रेजी साम्राज्यवाद के साथ किसी भी शर्त पर संधि करने को तैयार न थे । मत-भेद की खाई दिन पर दिन चौडी होती जा रही थी । महात्मा गॉधी नहीं चाहते थे कि आगामी वर्ष अर्थात १६३६ के लिये भी सुभाषबाबू ही प्रधान चुने जॉय । उनकी इच्छा थी कि डा० पट्टाभि सीतारामैया प्रधान बनाए जॉय परन्तु बहुमत ने सुभाष बाबू के पक्ष मे निर्णय दे दिया । गॉधी जी को सुभाष के फिर चुने जाने से प्रसन्नता न हुई । उन्होंने घोषणा कर दी-"मै तो उनके निर्वाचन के विरुद्ध था । अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों के मार्ग मे रोड़े न अटकाने चाहिए । जब वे सहयोग न दे सके तो उन्हें अलग हो जाना चाहिये ।" सो कार्य समिति के दस पुराने अनुभवी नेताओ ने सुभाष बाबू को सहयोग देने से इन्कार कर दिया । उन्होंने इकट्ठा ही त्याग पत्र दे दिया । त्रिपुरी कॉग्रेस मे फिर यह मामला पेश हुआ । अब के बहुमत गॉधी जी के विचारों के पक्ष मे हो गया था । सुभाष बाबू ने त्याग पत्र दे दिया ।

इसी काल मे एक—दो घटनाएं ऐसी हुईं जिनसे महात्मा जी के निश्चय की दृढ़ता और विनोद-प्रियता का अच्छा परिचय मिल जाता है। अध्याय की समाप्ति से पूर्व हम उन्हें अंकित करने की कामना को कुचल नहीं सकते।

निश्चय की दृढ़ता

१९३८ का सन् था। आचार्य कृपलानी के लेखो की पुस्तक तैयार हो चुकी थी श्री शिवाभाई पटेल की प्रार्थना पर गांधी जी ने उसकी प्रस्तावना लिखना स्वीकार कर लिया था। परन्तु दैवयोग से महात्मा जी का स्वास्थ्य बिगड़ गया। तब महादेव देसाई ने शिवाभाई को लिखा-"गांधी जी को इस मेहनत से बचा लो।" शिवाभाई ने गांधी जी को इसी मतलब का पत्र लिख दिया। कोई दूसरा व्यक्ति होता तो कहता—'अच्छी बात, बला टल गई, व्यर्थ के सिरदर्द से क्या लाभ। परन्तु अस्वस्थ होते हुए भी गांधी जी ने उत्तर दिया—"नहीं, मै शीघ्र ही प्रस्तावना-लेख भेजूंगा।" अभी बहुत दिन न बीते थे कि प्रस्तावना भी आ पहुंची और आवश्यक सुधार तथा परिवर्द्धन के संकेत भी। इस घटना से सिद्ध होता है कि वे जिस काम को स्वीकार कर लेते थे फिर उसे पूरा करने मे अपनी सुविधाओं की चिंता न करते थे।

विनोद प्रियता

दूसरी घटना भी उसी वर्ष हुई। महात्मा जी बारडोली आश्रम मे ठहरे हुए थे। मंडली के मेम्बर कुमारी शारदा की सगाई सूरत के कार्यकर्ता श्री गोरधन दास से हो गई। गांधी जी, सरदार पटेल तथा दक्षिणी अफ्रीका के श्री कैलेनबेक आदि के सामने ही कस्तूरबा ने गोरधन दास जी को केसर का तिलक लगाया। जब रीति की समाप्ति पर श्री कैलेनबेक ने उठ कर गोरधनदास जी का सत्कार किया तो सरदार

पटेल जी को मज़ाक सूझा। बोले "आप को इतनी उमङ्ग किस कारण हो रही है। आप तो कुँवारे हैं?" सब हँसने लगे। तब श्री कैलेनबेक गाँधी जी की ओर संकेत कर बोले—"मैं तो इनके पाप से ऐसा ही रह गया हूँ।" सब खिलखिलाते हुए गाँधी जी की ओर देखने लगे। उस समय गाँधी जी ने अपनी मंद-मुसकान पूर्वक कहा—"इसी लिए तो मैं ऐसे नए—नए सम्बन्ध बाँध कर उस पाप का प्रायश्चित कर रहा हूँ।"

———

१२

"करेंगे या मरेंगे"

महायुद्ध का आरम्भ

यूरोप के राजनीतिक गगन मे युद्ध के मेघ मुद्दत से मॅडरा रहे थे । श्री चेम्बरलेन तथा उन के विचार वाले शान्ति-प्रिय व्यक्तियो ने उन्हे बिखेरने के लिए बहुत दौड़-धूप की परन्तु वह निष्फल गई। महात्मा गांधी ने भी हिटलर से प्रार्थना की कि राजनीतिक उलझनो को शान्ति पूर्वक साधनों द्वारा ही सुलझा लिया जाय परन्तु परिणाम कुछ न निकला। अन्त मे सितम्बर १६३६ मे जर्मनी ने पौलैंड पर आक्रमण कर दिया और इंग्लैंड को भी महायुद्ध मे कूदना पड़ा। वाइसराय ने भारितीयों को पूछे बिना ही एक घोषणा द्वारा भारत को भी युद्ध मे झोंक दिया।

युद्ध आरम्भ होते ही महात्मा जी वाइसराय से मिले। मुलाकात के पश्चात् उन्होंने एक वक्तव्य मे कहा "मैंने वाइसराय से कह दिया है कि मानव-कल्याण को दृष्टि में रखते हुए मेरी सहानुभूति, इगलैंड और फ्रास के साथ है। मैं लन्दन की तबाही की कल्पना भी नहीं कर सकता। इस समय मेरे सामने भारत की स्वतत्रता का प्रश्न नहीं है। वह तो मिलेगी ही। परन्तु यदि इंगलैंड और फ्रास हार गए अथवा जर्मनी को तहस-नहस करके जीत गए तो उस स्वतत्रता का मूल्य क्या होगा ?"

मंत्री मण्डलों के त्याग-पत्र

जहाँ कांग्रेस और गांधी जी हिटलर की ताना-शाही के विरुद्ध थे वहाँ, इस बात के कहने की आवश्यता नहीं कि, वे अंग्रेजी साम्राज्य वाद के भी कट्टर वैरी थे। ८ सितम्बर को कांग्रेस की कार्य समिति की बैठक हुई और उस में यह निश्चय किया गया कि कांग्रेस युद्ध के यत्न में तभी सहयोग देगी जब सरकार भारत की स्वतन्त्रता के सम्बंध में अपनी नीति की स्पष्ट घोषणा कर देगी और युद्ध-काल के लिए केन्द्र में अस्थायी राष्ट्रीय सरकार की स्थापना कर दी जाएगी। इस पर वाइसराय की ओर से १८ अक्तूबर को एक घोषणा की गई जिसे सुन कर सारा भारत चौंक उठा। उस पर कांग्रेस के प्रधान डा० राजेन्द्रप्रसाद ने कहा—'अब किसी के मन में सन्देह न रह जाना चाहिए कि शासकों की रीति-नीति में कोई भेद नहीं पड़ा। कांग्रेस ने मित्रता के लिए हाथ बढ़ाया था परन्तु सरकार ने उसे ठुकरा दिया है। सो कार्य समिति के निश्चय के अनुसार आठों प्रान्तों के कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने त्याग-पत्र दे दिए। प्रथम महायुद्ध में सहायता दे कर कांग्रेस ने देख लिया था कि अंग्रेजों के वचन विश्वास के योग्य नहीं होते। इसलिए उस ने इस बार सहयोग देने से पूर्व बात पक्की कर लेने का निश्चय किया था परन्तु शासकों को यह बात पसन्द न आई थी।

गांधी जी की निराशा

युद्ध के आरम्भ के कुछ ही काल पश्चात् वाइ-सराय ने देश भर की प्रतिष्ठित संस्थाओं के ५२ व्यक्तियों को बुला कर उन से बात चीत की थी। उस का वास्त-विक उद्देश्य बाहर के देशों पर, विशेषतः अमरीका पर, अपना अच्छा प्रभाव डालना था। महात्मा गांधी ने उस में भाग लेने

के पश्चात् कहा था—"मैं कोई गुप्त वा प्रकट समझौता किए बिना वाइसराय की कोठी से खाली हाथ लौट आया हूँ।"

२७,२८ जुलाई १६४० को पूने में अखिल भारतीय कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था। उस में स्पष्ट रूप से कहा गया था कि यदि सरकार पूर्ण स्वराज्य की मॉग मान ले और केन्द्र में अस्थायी राष्ट्रीय सरकार बना दे तो कांग्रेस पूर्ण सहायता देने को तैयार है।

इस के उत्तर में वाइसराय ने अगस्त १६४० में यह घोषणा की—"मैंने इस वर्ष के आरम्भ में देश के विभिन्न राष्ट्रीय दलों को संगठित करने का यत्न किया पर सफल न हुआ। अब अंग्रेजी सरकार ने निश्चय किया है कि मेरी कौंसिल में कुछ हिन्दुस्तानी प्रतिनिधियों को ले लिया जाय और एक युद्ध-परामर्श-समिति बनाई जाय जिस में भारत तथा रियासतों के प्रतिनिधि लिए जॉय।"

वाइसराय के इस वक्तव्य पर महात्मा गांधी ने कहा—"वाइसराय की घोषणा अत्यन्त दुःखदायक है। इस से तो इंग्लैंड तथा भारत के मध्य की खाई चौड़ी ही होती जाती है। भारत के उन विचारकों ने भी वाइसराय की इस घोषणा का स्वागत नहीं किया जो कांग्रेस से सम्बन्ध नहीं रखता घोषणा न तो संशयों को मिटाती है और न ही भारतीयों के सुलगते हुए असन्तोष की कोई परवा करती है। मैं तो इस लिए डर रहा हूँ कि प्रजा-तन्त्र तहस नहस किया जा रहा है। भारत के प्रति अन्याय का बर्ताव करता हुआ बर्तानिया संसार में न्याय की डींग नहीं मार सकता। भारत का रोग इतना गहरा है कि वह अधूरे मन से किए हुए उपायों द्वारा दूर नहीं हो सकता।

उस अवसर पर महात्मा जी का कांग्रेस से भी मत-भेद हो गया। महात्मा जी देश की रक्षा के लिए अहिंसा का ही प्रयोग करना चाहते थे। कांग्रेस ने इस बात को स्वीकार न किया था।

महात्मा जी ने कहा "इन दिनों कांग्रेस ऐसा कोई काम न करेगी जिस से अंग्रेजी सरकार व्याकुल हो जाय। परन्तु यदि इस समय यहाँ अराजकता फैल गई तो वह अवश्य व्याकुल हो जाएगी। कांग्रेस अराजकता का समर्थन तो न करेगी परन्तु अंग्रेजी सरकार को नैतिक सहायता भी न देगी।"

प्रकाश की खोज

१५ सितम्बर १६४०को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के बम्बई के अधिवेशन महात्मा जी ने कहा—"मैं तो जेल में जाने के लिए उत्सुक नहीं हूँ। हाँ सरकार जब चाहे मुझे बन्दी बना सकती है। इस बात को मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि हम अंग्रेजों का बुरा नहीं माँगते। हम नहीं चाहते कि वे हार जायँ। एक सत्याग्रही अपने विरोधी की निर्बलता से लाभ उठाने में विश्वास नहीं करता। हाँ, नागरिक स्वतन्त्रता की रक्षा करना कांग्रेस अपना कर्तव्य समझती है। सामूहिक सविनय अवज्ञा (Mass civil disobedience) के आन्दोलन का कोई प्रश्न नहीं है। मैं कुछ विचार कर रहा हूँ परन्तु अभी मुझे प्रकाश दिखाई नहीं दिया।"

नेतृत्व की प्रार्थना

तब कांग्रेस ने एक प्रस्ताव स्वीकृत किया जिस में कहा गया था कि कांग्रेस सरकार की उस नीति को नहीं मान सकती जिस से उस की सत्ता ही मिट जाय। वह विचारों के प्रचार पर लगाई गई रोक नहीं सह

सकती। साथ ही उस प्रस्ताव मे महात्मा जी से देश को मार्ग दिखाने की भी विनती की गई थी।

उस प्रस्ताव को ले कर महात्मा जी वाइसराय से मिले परन्तु निराश हो कर लौटे। तब उन्होंने सरकार द्वारा लगाए हुए दुःख दायक प्रतिबन्धों का विरोध करने के लिए व्यक्तिगत सत्याग्रह करने का कार्यक्रम तैयार किया।

व्यक्तिगत सत्याग्रह

महात्मा जी चाहते थे, व्याख्यानो पर कोई प्रतिवन्ध न लगाया जाय। सरकार इस बात की अनुज्ञा न देती थी। इस बात पर १७ अक्टूबर १६४० को महात्मा जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह का आन्दोलन आरम्भ कर दिया। उन्होंने श्री विनोबा भावे को पहला सत्याग्रही चुना। विनोवा जी ने पानौर गॉव मे व्याख्यान दे डाला और पकड़ लिए गए।

उन के अनन्तर पंडित नहरू जी की बारी थी परन्तु उन्हें ३१ अक्तूबर को पकड़ कर चार वर्ष के लिए जेल मे डाल दिया गया।

स्मरण र कि यह सत्याग्रह एक विशेप प्रकार का था। इसका उद्देश्य कठिनाई मे फॅसी हुई सरकार को व्याकुल करना न था वल्कि कांग्रेस की मानमर्यादा और सत्ता की रक्षा करना था। महात्मा गाधी सत्याग्रहियों की सूची की वडी सूक्ष्मता से परीक्षा करते थे। और उच्च चरित्र वाले व्यक्तियों को ही उसमे भेजते थे। सत्याग्रही व्याख्यान से पूर्व जिला मेजिस्ट्रेट को उसकी सूचना भेजते थे और व्याख्यान से पूर्व ही कारागार में बन्द कर दिए जाते थे।

१४ मास तक यह आन्दोलन निर्विघ्न रूप से चलता रहा। सरकार के युद्ध के प्रयत्नो मे रोड़ा अटकाने की तनिक भी चेष्टा न की गई।

अतलान्तक अधिकार पत्र

१५ अगस्त १९४१ को श्री चर्चिल और रूजवेल्ट की भेंट के बाद, अतलान्तक अधिकार पत्र की बड़े गर्व से घोषणा की गई। उसमे ससार भर की जातियो को युद्ध की समाप्ति पर स्वतन्त्रता का आश्वासन दिलाया गया था। श्री चर्चिल का विचार था कि वह भारत पर लागू नहीं होता परन्तु उपप्रधान मन्त्री श्री एटली ने कहा—"यह अधिकार-पत्र एशिया तथा अफ्रीका की भी सब जातियों पर लागू होगा।" भारत मे श्री जिन्ना के सिवा सबने उसकी निन्दा की थी। जब गांधी जी से उसके सम्बन्ध मे सम्मति देने को कहा गया तो वे बोले—'मेरा मौन कथन से अधिक स्पष्ट है।'

अब तक अंग्रेजी तथा भारतीय सरकार की नीति मे कोई परिवर्तन न हुआ था। भारत मन्त्री श्री एमरी भारतीयों के विरुद्ध समय-समय पर विष उगलते ही रहते थे। ३० सितम्बर १९४१ को बारडोली मे कार्य समिति की एक बैठक हुई। उसमे एक प्रस्ताव द्वारा गाधी जी पर से उत्तरदायित्व का बोझ हटा लिया गया और कांग्रेस ने कुछ शर्तों पर युद्ध मे सहयोग देने की इच्छा प्रकट की। इसका कारण यह था कि युद्ध दिन-दिन भारत के समीप आ रहा था। १५ जनवरी १९४२ को वर्धा मे कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई और गांधी जी ने जनता को वही प्रस्ताव स्वीकृत करने की प्रेरणा और स्वय कांग्रेस का नेतृत्व छोड़ने की इच्छा प्रकट की।

क्रिप्स का आगमन

युद्ध भारत के द्वार पर आ गया। जापानी बिजली के समान बढ़ते आते थे। सिंगापुर हाथों से निकल चुका था। मलाया और बरमा पर भी जापानियों का अधिकार हो गया था। इंगलैंड से पार्लियामेण्ट के मजदूर और उदारदलों के सदस्यों ने सरकार की भारत-सम्बन्धी नीति की बड़ी निन्दा की और नई नीति अपनाने तथा भारत की उलझन को तुरन्त सुलझाने की प्रबल मांग की।

इसी उद्देश्य से श्री क्रिप्स २३ मार्च १९४२ को भारत में पहुँचे। वे समझौते का प्रस्ताव भी साथ ही लेते आए। पहले वे वायसराय तथा प्रान्तों के गवर्नरों से मिले और फिर भारतीय नेताओं से महात्मा गांधी ने भी निमन्त्रण पाकर दिल्ली आ कर क्रिप्स से बात-चीत की। वे तुरन्त भाँप गए कि जो प्रस्ताव क्रिप्स महोदय विलायत से समझौते के लिए लाए हैं वे अस्पष्ट हैं, अधूरे हैं और इसलिए स्वीकार करने के अयोग्य हैं। कार्य समिति भी उनसे सहमत हो गई। क्रिप्स महोदय विफल होकर लौट गए। कांग्रेस और सरकार में समझौते का अन्तिम द्वार भी बन्द हो गया। खिंचाव बढ़ गया।

नेताजी की नीति की निन्दा

सुभाष बाबू देश से खिसक कर जापानियों से जा मिले थे। उन्होंने आजादहिंद सेना भी संगठित कर ली थी। हर ओर यही चर्चा थी कि सुभाष बाबू विदेशी सेना की सहायता से स्वदेश को अंग्रेजों के चुंगल में छुड़ा देंगे। उस समय महात्मा जी ने 'हरिजन' में लिखा—"मैं किसी दूसरे राष्ट्र की सहायता से भारत को स्वतन्त्र करना नहीं चाहता। मैं भारत पर अंग्रेजों के बदले किसी और राष्ट्र का शासन नहीं चाहता। अपरिचित

मित्र की अपेक्षा परिचित शत्रु अच्छा होता है। मै सुभाष की नीति का समर्थन नहीं कर सकता। वह पथ-भ्रष्ट हो चुका है और उसकी नीति भारत का कभी स्वतन्त्र नहीं कर सकती। हम पर जापानियो को भारत मे बुलाने का दोष लगाया जा रहा है। मैं उसका पूरी शक्ति से विरोध करता हूँ और चाहता हूँ कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति जापान का मुकाबला करे। अंग्रेजों की अपेक्षा मै अधिक चाहता हूँ कि जापानी दूर रहें। यदि यहाँ अंग्रेज हार गए तो उनके हाथ से तो केवल भारत छिन जायगा परन्तु भारत का तो सर्वस्व ही नष्ट हो जायगा।"

२६ अप्रैल १६४२ के 'हरिजन' मे महात्मा जी ने लिखा—"यदि अंग्रेज भारत को वैसे ही छोड जॉय जैसे उन्होंने सिंगापुर छोड़ा है तो सम्भवतः भारत की कोई हानि न होगी। परिणाम चाहे कुछ भी हो, भारत तथा अंग्रेजों की भलाई इसी बात मे है कि अंग्रेज समय रहते सुव्यवस्थित रूप से भारत से चले जायँ। भारत मे अंग्रेजों का होना जापानियो को भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण देता है। परतन्त्रता सबसे भयकर रोग है उससे छुटकारा पाने के लिये हमे प्रत्येक सकट के लिए तैयार रहना चाहिए। मै जानता हूँ इस इलाज पर खर्च बहुत आयगा परन्तु स्वतन्त्रता किसी मूल्य पर भी महँगी नही होती।"

जापानियों को चेतावनी

इसके अनन्तर १८ जुलाई १६४२ को महात्मा जी ने जापानियों को भी निम्नलिखित प्रबल चेतावनी दे दी—"मेरे मन में आपके प्रति कोई द्वेष नहीं है, परन्तु मै आप के द्वारा चीन पर किए गए आक्रमण के अत्यन्तविरुद्ध हूँ। यदि मै स्वतन्त्र होता और आप मुझे अपने देश में आने से मना न करते तो मैं अपने स्वास्थ्य तथा प्राणों

को संकट में डाल कर भी आपको समझाता कि आप चीन पर आक्रमण करके चीन को, ससार को और इसी लिए अपने आपको भी हानि पहुँचा रहे हैं। हम सुनते हैं, आप भारत को स्वतंत्र कराने के लिए व्याकुल है। यदि यह सत्य हो और अग्रेज स्वय ही भारत की स्वतत्रता स्वीकार करलें तो फिर आपके भारत पर आक्रमण की आवश्यकता नहीं रहेगी।"

भारत छोडो

७-८ अगस्त १९४२ को अखिल भारतीय काग्रेस का अधिवेशन मौलाना आजाद के सभापतित्व मे बम्बई मे हुआ। उन्होंने कहा कि 'भारत छोड़ो' का अभिप्राय यह नहीं है कि सब अंग्रेज यहाँ से निकल जॉय, वल्कि यह है कि सारे अधिकार भारतीयों को दे दिए जाये। मौलाना के पीछे महात्मा जी ने भाषण में कहा—"समय बड़ा नाजुक है। यदि हम कर्तव्य-पालन न करेगे और हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहेंगे तो उचित न होगा। प० जवाहरलाल ने 'भारत छोड़ो' का विख्यात प्रस्ताव पेश किया। उसका समर्थन सरदार पटेल ने किया। प० जवाहरलाल ने घोषणा करदी कि महात्मा गाधी यह बात मान गए हैं कि भारत मे अंग्रेजी तथा विदेशी सेनाएँ टिकी रहें ताकि जापानी आक्रमण न कर सके। ८ अगस्त को भारी बहुमत से यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

८ अगस्त, शनिवार, साय काल छः बजे जब महात्मा गाधी व्याख्यान देने के लिए मच पर चढ़े, तो सब नयन कान और ध्यान उन्हीं पर केन्द्रित हो गए। पडाल मे उपस्थित लोग ही नहीं अपितु सबमित्र राष्ट्र और धुरी राष्ट्री उस दिन, उस घडी और उस व्याख्यान की उत्सुकता मे प्रतीक्षा कर रहे थे। भारत के भाग्य-निर्णय का समय आ गया था उन्होंने गरज कर 'भारत

जनवरी १६४२ मे वर्धा कार्य कारिणी की बैठक मैं जाते

छोड़ो' का नाद लगा दिया और वह नाद गोली के समान शासक जाति के हृदय मे जा धँसा।

सिंहगर्जना

महात्मा जी पूरे दो घंटे अङ्गरेजी तथा हिन्दुस्तानी मे बोले। उनका वह भाषण ऐतिहासिक भाषण था। उन्होंने स्वतन्त्रता तथा अहिंसा की महिमा प्रकट करते हुए भारत मे विदेशी शासन की कड़ी आलोचना की तथा भारत के प्रत्येक स्त्री-पुरुष की सोई हुई आत्मा को जगाया। अपने व्याख्यान की समाप्ति पर गम्भीर चेतावनी देते हुए उन्होंने कहा— मै शान्ति स्थापित करने के लिए कोई कसर न छोड़ूँगा। भारत की स्वतन्त्रता के लिए मै ससार भर का सामना करने से भी न डरूँगा क्योंकि प्रभु हमारे साथ है। देश के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग करते हुए कॉग्रेस ने कोई पाप नहीं किया है। मैंने कॉग्रेस की पूरी सहायता करने का प्रण कर लिया है और कॉग्रेस अब या तो कुछ कर दिखायगी या मर जायगी।'

"मै इस युद्ध मे एक सेनापति के रूप मे नहीं बल्कि आप सब के विनीत सेवक के रूप मे आगे आगे चलूँगा। मै राष्ट्र का प्रमुख सेवक हूँ। मैं वे सब कष्ट सहूँगा जो आप पर पडेंगे हिन्दुस्तानियो को अनुभव करना चाहिए कि अब वे स्वतन्त्र हैं। सरकारी कर्मचारियों को तुरन्त त्याग-पत्र देने की आवश्यकता नहीं परन्तु वे सरकार को लिख दे कि हम कांग्रेस के साथ हैं। सघर्ष को आरम्भ करने से पूर्व मै वाइसराय से मिलूँगा या पत्र लिखूँगा। उसके अनन्तर उत्तर के लिए दो-तीन सप्ताह तक प्रतीक्षा भी करूँगा।"

करेंगे या मरेंगे

"यदि संघर्ष आरम्भ हो गया तो प्रत्येक व्यक्ति को इस बात की स्वतन्त्रता होगी कि वह अहिंसा का पालन करता हुआ हड़ताल आदि द्वारा सरकार से असहयोग कर दे। सत्याग्रहियों को जीने के लिए नही मरने के लिए बाहर निकल पडना चाहिए। जब व्यक्ति मृत्यु की खोज मे निकल पड़ते है तभी राष्ट्र जीते रहते है। मै आप को एक छोटा-सा मन्त्र बताता हूँ। आप इसे अपने हृदयो पर अंकित करले और प्रत्येक साँस में इस पर आचरण करें। मंत्र यह है "करेंगे या मरेंगे"। या तो हम भारत को स्वतंत्र करके रहेंगे या फिर इस प्रयत्न मे स्वयं ही न रहेगे। जो जीवन खो देगा सो उसे पा लेगा, जो बचाना चाहेगा वह खो बैठेगा। स्वतं-त्रता कायरों को कभी नही मिलती। परमात्मा और आत्मा को साक्षी बना कर सौगन्द लीजिए कि जब तक स्वतंत्रता न ले लेंगे, विश्राम न लेंगे।"

गाधी जी का भाषण सुनते समय श्रोताओं के शरीर मे सनसनी छा गई, रगों मे लहू तेजी से दौड़ने लगा, भीरुता के भाव भाग गए; जीवन का मोह दूर हो गया। देश-प्रेम की तरंगे उमड़ पड़ीं। बलिदान की भावना जाग उठी। जब रात के दस बजे सम्मेलन समाप्त हुआ तो सहस्रों लोग यह संकल्प कर के घरो को लौटे कि इस युद्ध मे तो हम भी पीछे न रहेंगे। महात्मा जी का मोहन-मंत्र उनके कानों मे गूंज रहा था—"करेंगे या मरेंगे, करेंगे या मरेंगे।"

———

१३

आगाखान-महल में

गिरफ्तारी

गाधी जी ने कहा था, स्वराज्य न मिला तो दो-तीन सप्ताह बाद सघर्ष आरम्भ हो जायगा। सरकार ने कहा निज कार्यवाही द्वारा प्रतीक्षा की क्या आवश्यकता है, अभी आरम्भ कर दीजिए। अभी पूर्व दिशा मे लाली न दिखाई दी थी कि गाधी जी गिरफ्तार कर लिए गए और पून मे आगाखान के महल में नजर बद कर दिए गए। कांग्रेस कार्य-समिति के सदस्य भी पकड़ लिए गए और अहमद नगर के कारागार मे फेंक दिए गए। ९ अगस्त और उसके पश्चात् देश भर मे काग्रेसी नेताओं की पकड़-धकड जारी रही। ऐसे लगता था मानो सरकार अपनी चेष्टाओं मे कह रही हो—"जापानियों से हार खाई है, तुम्हारे लिए तो पर्याप्त है।"

देश व्यापक दगे

आग सुलग पहले से ही रही थी, सरकार ने उस पर तेल डाल दिया। ९ अगस्त को बम्बई अहमदाबाद और पूने मे गडबड हो गई परन्तु और सब स्थानों पर शान्ति रही १० अगस्त को देहली तथा सयुक्त प्रान्त के कुछ कस्बो मे उपद्रव हो गया परन्तु वह विशेष प्रबल न था। ११ अगस्त के पश्चात् दशा तेजी तथा भयकर रूप से बिगड़ती आरम्भ होगई। बम्बई, मद्रास, मध्य प्रान्त तथा बगाल के प्रान्तो मे भी उपद्रव आरम्भ हो गए। परन्तु सबवि ने सयुक्त प्रान्त के पूर्वी भाग तथा विहार मे सबसे

भयंकर रूप धारण कर लिया। सीमा प्रान्त, पंजाब तथा सिन्ध शान्त रहे। जनता ने क्रोध मे आकर रेल की पटरियों, तार-टेलीफोन के खम्भों, डाकखानों, थानो तथा अन्य सरकारी मकानो को हानि पहुँचाना आरम्भ कर दिया। जनता सरकार के अत्याचार, आर्डीनेंसो द्वारा शासन, वस्तुओं की मँहगाई तथा नेताओं की पकड़ धकड़ से जोश मे आकर अहिंसा का मार्ग छोड बैठी। कई स्थानो पर आग लगाई गई, और लूट-मार की गई। अनेक स्थानो पर जनता ने सरकार के मुकाबले पर अपना राज्य स्थापित कर लिया, अपने न्यायालय और अपने कार्यालय खोल दिए गए जो महीनो चलते रहे।

निर्दय दमन

सरकार ने भी सेना और पुलिस को खुली छुट्टी दे दी। उन्होने भी गुण्डो के समान बर्ताव किया। लोगो की निजी सम्पत्ति लूटी, जलाई और नष्ट कर दी। गॉव के गॉव जला डाले गए। गिरफ्तारी का भय दिखा कर धन छीन लिया गया। वहाँ राय बहादुर श्रीनारायण महता ने कौंसिल आव स्टेट मे सवाद मे कहा कि सरकार ने बिहार की जनता को बता दिया है कि वे पागल कुत्तो के समान है जिन्हे निःसकोच गोली से उडाया जा सकता है। पॉच स्थानों पर वायु-यानों मे से मशीनगने चला कर जनता को भून डाला गया। कई स्थानों पर तो लोगों तथा बच्चों पर ऐसे अश्लील प्रहार किए गए कि जिन्हे सभ्य लेखनी लिख नहीं सकती। सरकार ने तो माना कि उन उपद्रवो मे ६०२२६ व्यक्ति पकड़े गए, १८००० बदी बनाए गए, १६३० घायल हुए और ६४० गोलियों से भून डाले गए, परन्तु बाहर के लोगों का बयान है कि ७००० मानव मारे गए। चार-पाँच मास मे सरकार ने इस आन्दोलन को कुचल डाला।

अपराधी कौन ?

इस अवसर पर सरकार की ओर से एक पुस्तिका प्रकाशित की गई जिसमें इन उपद्रवों के लिए कांग्रेस को दोषी ठहराया गया और उस पुस्तिका का बहुत अधिक प्रचार किया गया। उसमे इतनी झूठी तथा बे सिर पैर की बातें लिखी गई थीं कि उसे पढ़ कर महात्मा गाधी की भी शान्ति भग हो गई। उन्होंने उसके विरोध में वाइसराय को एक पत्र लिखा जिसकी कुछ पंक्तियाँ ये हैं—"यह आन्दोलन ८ अगस्त के प्रस्ताव का परिणाम नहीं है। यदि हमारी बात-चीत विफल हो जाती तो आन्दोलन का नेतृत्व मुझे करना था। परन्तु सरकार ने न केवल मुझे बल्कि देश के सब मुख्य कांग्रसी कार्यकर्ताओं को पकड़ लिया। इस प्रकार आन्दोलन का आरम्भ सरकार ने किया, मैंने नहीं। सरकार ने आन्दोलन को वह रूप दे दिया जो मुझे सपने मे भी न सूझ सकता था। मेरे नेतृत्व मे आन्दोलन मे हिंसा का कोई भाग न होता। यदि सरकार ने मुझे सॉस लेने का समय दिया होता तो मैं वाइसराय से मिल कर उन्हे निश्चय करा देता कि कांग्रेस की मॉग अनुचित नहीं है।"

२१ दिन का व्रत

अपनी नजरबन्दी के ठीक छः मास पश्चात् महात्मा जी ने ९ फरवरी १९४३ को २१ दिन का व्रत रखने की घोषणा की। उसने पूर्व उन्होंने वाइ-सराय को जो पत्र लिखा था उसमे अहिंसा मे विश्वास प्रकट किया गया था। विप्लव मे दोनों ओर से की गई हिंसा की निन्दा की गई थी। और कांग्रेस की कार्य समिति के सदस्यों से मिलने की इजाजत मॉगी गई थी ताकि नए सिरे से सारी स्थिति पर विचार किया जा सके। सरकार ने न तो विप्लव का उत्तरदा-यित्व स्वीकार किया, न कार्य-समिति के सदस्यों से मिलने की

इजाजत दी। हाँ, इतना अवश्य लिख भेजा कि केवल व्रत के दिनों मे आप को मुक्त कर दिया जायगा और व्रत का आप के जीवन वा स्वास्थ्य पर जो प्रभाव पड़ेगा उसके लिए सरकार जिम्मेदार न होगी।

महात्मा जी ने केवल व्रत के दिनों के लिए बाहर जाने से इन्कार कर दिया और अंदर ही व्रत आरम्भ कर दिया। सारा देश व्याकुल हो उठा। हर तरफ से महात्मा जी को मुक्त करने और कार्य-समिति के सदस्यों से मिलने जुलने की इजाजत देने की मांग पेश की गई। केन्द्रीय एसेम्बली में विरोधी दल ने कहा—"यदि महात्मा जी जेल में स्वर्ग सिधार गए तो भारत वासी कभी अंग्रेजों को क्षमा न करेंगे।" होम-मेंबर ने उत्तर दिया—"महात्मा गांधी विद्रोही हैं। जब तक विद्रोह-पूर्ण प्रस्ताव वापस नहीं लिया जाता उन्हें नागरिकता के अधिकार नहीं दिए जा सकते।"

दो दिन पीछे दिल्ली में सर्व-दल-सम्मेलन हुआ। उसने पहले वाइसराय से और फिर इंगलैण्ड के प्रधान मन्त्री से महात्मा जी को मुक्त करने की विनती की परन्तु दोनों ने नाहीं कर दी। सरकार की कठोरता देख कर वाइसराय की कौंसिल के तीन सदस्यों ने त्यागपत्र दे दिए।

व्रत के दिनों मे दो बार महात्मा जी की दशा अत्यन्त चिन्ताजनक हो गई थी, परन्तु परमात्मा की कृपा से वे बच गए और ४ मार्च को उन्होंने व्रत खोल दिया।

मुक्ति दिलाने का यत्न

इसके अनन्तर बम्बई मे देश के प्रतिष्ठित व्यक्तियों की एक सभा हुई जिनका किसी राजनीतिक संस्था से सम्बध न था। उन्होंने

महात्मा जी को मुक्त कराने के लिए लार्डलिनलिथगो से कुछ लिखा-पढी की। वाइसराय ने कहा कि यदि महात्मा गाधी १९४२ के प्रस्ताव को पूर्णतया रद्द कर दे, विप्लव मे की गई हिंसा की घोर निंदा करें, कांग्रेस और वे भविष्य मे शांति रखने के लिए सरकार को निश्चय दिला दे तो सरकार इस प्रस्ताव पर विचार करेगी।

यदि हिमालय समुद्र पर तैर सकता, सूर्य पश्चिम में उदित हो सकता और तेल रेत मे निकल सकता तो महात्मा जी भी उक्त बातों को मान लेते।

१९४३ के अन्तिम भाग मे लार्ड लिनलिथगो का पद लार्ड वेवल ने सभाल लिया। अब आशा की जाने लगी कि नए वाइसराय किसी नई नीति को अपनायगे। बुरी तरह उलझी हुई गुत्थी को जैसे-तैसे सुलझायगे।

कुछ काल बाद महात्मा जी को मलेरिया ने बुरी तरह आ घेरा। उनकी आँतों मे भी कुछ विकार उत्पन्न हो गया। इस पर लार्ड वेवल ने बिना कोई रोक लगाए महात्मा गाधी को ६ मई १९४४ को मुक्त कर दिया।

देसाई तथा बा का वियोग

महात्मा जी पौन बरस नजरबद रहे थे। वे तो कारागार के अंदर और बाहर दोनों जगह ही प्रसन्न रहने वाले थे। परन्तु आगाखान महल मे उन्हे दो अत्यत प्रिय व्यक्तियों के वियोग का भारी दुःख उठाना पड़ा। एक तो अगस्त १९४२ मे उनके पुत्रवत् प्यारे और अत्यत विश्वासपात्र प्राइवेट सेक्रेटरी श्री महादेव देसाई जी का देहान्त हो गया। दूसरे उनकी प्रिय पत्नी श्रीमती कस्तूरबा भी २२ फरवरी १९४४ को हृदय के

रोग से उनका संग सदा के लिए छोड़ गईं । महात्मा जी ने दोनों की अंत्येष्टिक्रिया आगाखान महल में अपने कर कमलों से की । जहां उनका दाह-कर्म किया गया था वहाँ वे नित्य जाया करते थे, पुष्प चढ़ाया करते थे, और भगवद्गीता का पवित्र पाठ किया करते थे ।

जेल के बाहर आने पर महात्मा गांधी ने लार्ड वेवल को पत्र लिखा जिसमें कार्य समिति के सदस्यों वा स्वयं वाइसराय से मिलने की प्रार्थना की गई थी, साथ ही यह भी लिख दिया कि यदि सरकार स्वराज्य की घोषणा तथा केन्द्र में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना कर दे तो मैं कार्य समिति को युद्ध के यत्न में पूरा सहयोग देने की प्रेरणा करूँगा । लार्ड वेवल ने ये शर्तें स्वीकार न की और मिलने से इन्कार कर दिया ।

गांधी जी के गुरु

उन दिनों गांधी जी पंचगनी में दिल-कुशा नामक बंगले में रहते थे । एक मित्र ने उनकी मेज़ पर एक विचित्र सा काँच का खिलौना देखा । खिलौने में तीन बन्दर सट कर बैठे हुए थे । एक ने दोनों हाथों से मुँह बन्द कर रखा था, दूसरे ने नयन तीसरे ने कान । मित्र ने कुतूहल-वश पूछा—"बापू, इसे मेज़ पर क्यों रखा है ?" वे बोले—"ये तीनों मेरे गुरु हैं । जिस ने मुँह बंद किया है, वह कहता है, झूठ और निन्दा से बचो । जिसने नयन बंद किए हैं; वह कहता है, कोई कुदृश्य न देखो । जिसने कान बंद किए हैं, वह कहता है, किसी की निन्दा न सुनो । बहुत बरस बीते यह खिलौना एक चीनी भक्त ने महादेव देसाई को दिया था; उन्होंने मुझे दे दिया । मैं सोच समझकर इन्हें गुरु कहता हूं और जहाँ जाता हूँ, साथ ले जाता हूँ ।"

जिन्ना से भेट

१९४३ मे जब महात्मा जी आगाखान महल म थे तो वे मुस्लिम लीगी पत्र 'डान' भी पढ़ा करते थे। श्री जिन्ना ने अप्रैल १९४३ मे कहा था—"दुष्ट विदेशी सरकार हमारी मूर्खताओं से लाभ उठाती है। क्या हम मिलकर एक होकर अंग्रेजों को बाहर नहीं निकाल सकते ?" मुस्लिम लीग के देहली के अधिवेशन मे श्री जिन्ना ने महात्मा गाधी से अपील की थी कि वे इससम्बन्ध म उन्हे लिखें। महात्मा गांधी ने वहीं से श्री जिन्ना को पत्र लिखा परन्तु सरकार ने उसे वर्ष भर दबाए रक्खा। जेल से बाहर आकर गाधी जी ने पत्र प्रकाशित करा दिया। महात्मा गाधी बम्बई पहुँचे। तीन सप्ताह तक दोनों महान नेताओं मे बात-चीत होती रही परन्तु खेद है कि श्री जिन्ना के हठ के कारण सफल न हुई।

कस्तूरबा ट्रस्ट

महात्मा जी बम्बई से सेवाग्राम मे चले गए। कुछ देशवासियों ने प्रस्ताव किया कि स्वर्गीय माता कस्तूरबा की पुन्य स्मृति मे एक करोड रुपया इकट्ठा किया जाय और उसे स्वदेश की स्त्रियों तथा बच्चों के हित मे व्यय किया जाय। प्रस्ताव निश्चय मे बदल गया, निश्चय कार्य मे, कार्य सफलता मे, कुछ ही काल मे एक करोड से भी अधिक रुपया इकट्ठा हो गया। गाधी जी इस कार्य से बिलकुल पृथक रहे। श्रद्धालु भक्त ही सब उद्योग करते रहे, परन्तु अन्त मे उन्होंने आग्रह करके ट्रस्ट का सभापति गांधी जी को ही बना दिया।

अप्रैल १९४५ मे गाधी जी बम्बई मे बिडला हाउस में ठहरे हुए थे। एक रात बहुत से मित्रों के मध्य में कस्तूरबा ट्रस्ट के सम्बन्ध में गाधी जी ने कहा—"ये पैसे गरीब स्त्रियों के

उपयोग के लिए तो हैं ही, पर यदि इसका काम काज भी स्त्रियों के द्वारा ही हो तो ठीक है। स्त्रियों का दुःख तो स्त्रियां ही समझ सकती हैं। हम तो सिर्फ मार्ग बता देते हैं, योजना बना देते हैं, और उन्हें काम करना सिखा सकते हैं। अगर वे सीखने मे भूल करके काम बिगाड़ दे और पैसे अधिक खर्च करे तो भी कोई हानि नहीं। यदि हम अपने जीवन-कार्य मे स्त्रियों को उपयुक्त बनाने मे समर्थ हो सके तो एक बहुत बड़ा काम हो जायगा।"

शिमला कान्फ्रेस

जिन लार्ड वेवल ने स्वयं गाधी जी से मिलने से तथा उन्हें कार्य-समिति के सदस्यों से मिलने देने से इन्कार कर दिया था उन्हें परिस्थिति ने इस बात पर विवश कर दिया कि वे राजनीतिक उलझन को सुलझाने के लिए विलायत जा कर वहा के मन्त्रियो से परामर्श करे। उन्हों ने भारत मे आकर घोषणा की कि शिमले मे कानफ्रैंस के पश्चात केन्द्र मे राष्ट्रीय सरकार बनाई जायगी जिस मे वाइसराय और प्रधान सेनापति के सिवा सब सदस्य हिन्दुस्तानी होंगे। उस सरकार का काम जापान के विरुद्ध युद्ध जारी रखना, देश का शासन-प्रबन्ध चलाना तथा राजनीतिक समस्या को सुलझाना होगा। कानफ्रेंस मे लार्ड वेवल ने दूसरे मुख्य-मुख्य नेताओं के अतिरिक्त महात्मा गाधी तथा श्री जिन्ना को भी निमन्त्रित किया था। कानफ्रेंस २५ जून से १४ जुलाई तक होती रही। काग्रेसी नेता, जो १५ जून को मुक्त कर दिए गए थे महात्मा जी से सलाह लेते रहे परन्तु श्री जिन्ना एक तो पाकिस्तान पर और दूसरे इस बात पर अड़ गए कि मुस्लिमलीग को ही एकमात्र मुसलमानों की प्रतिनिधि सस्था माना जाय। सीमाप्रात और पंजाब मे मुसलमानों की बहुसख्या होने पर भी मुस्लिम-

अप्रैल १९४६ में
स्वतन्त्रता के दूत, शिमले मे लार्ड-वेवल से वार्तालाप
करके वाइसराय हाउस से आते हुए

लीग का शासन न था, इसलिए मौलाना आजाद ने श्री जिन्ना की बात न मानी। कानफ्रेंस असफल रही। गाधी जी लौट आए।

साहित्य-सम्मेलन से पृथकता

इस के अनन्तर महात्मा जी राष्ट्रभाषा की ओर ध्यान देने लगे। उन का विचार यह था कि राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी होनी चाहिए, जो कि देवनागरी तथा फारसी दोनों लिपियों मे लिखी जाया करे। प्रत्येक हिन्दुस्तानी को ये दोनों लिपियाँ सीखनी चाहिएं। हिन्दी-साहित्य सम्मेलन इस बात के पक्ष मे है कि हिन्दी ही राष्ट्रभाषा हो और देवनागरी राष्ट्रलिपि। इस बात पर महात्मा जी तथा सम्मेलन सहमत न हो सके। इसलिए महात्मा जी ने सम्मेलन से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया।

१४

शान्ति के दिव्यदूत

केबनेट मिशन

मार्च १६४६ से इंगलैंड की सरकार ने अपने मंत्रिमंडल के तीन मंत्रियों—लार्ड पैथिक लारेंस, सर स्टेफर्ड क्रिप्स और श्री एलेग्ज़ेंडर—को भारत मे भेजा ताकि वे भारत के विभिन्न राजनीतिक दलों मे मेल-जोल उत्पन्न कर के अन्तरिम सरकार और विधान-परिषद् की स्थापना का यत्न करे जिस से भारत अति शीघ्र स्वतंत्र हो सके।

मिशन २४ मार्च को दिल्ली पहुँचा। उसने महात्मा गाधी श्री जिन्ना, कांग्रेस के मौलाना आज़ाद तथा सब जातियो के प्रतिनिधियों से बात-चीत की। उसके अनन्तर मिशन ने ५ मई को कांग्रेस और लीग के चार-चार प्रतिनिधियो की शिमले मे कानफ्रेंस बुलाई। महात्मा गाँधी काँग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में त परन्तु परामर्श देने के लिए शिमले मे पहुँच गए दुर्भाग्य से वह कानफ्रेंस भी सफल नहीं हुई। इस पर मिशन ने घोषणा की कि कान्फ्रेंस की विफलता पर भी हम वह कार्य पूरा करके ही जायेगे जिसके लिए हमे यहाँ भेजा गया है।

श्री जिन्ना ने लीगी नेताओं का एक सम्मेलन बुलाया जिसमें कहा कि जो हमारी माँग का विरोध करेगा। हम उसे तहस-नहस कर देंगे। उस मे विरोधियों को चगेज़ खान और

प्रार्थना-सभा मे

हलाकू खान के अत्याचारों का स्मरण कराया गया और कहा गया-जो व्यक्ति पाकिस्तान मे विश्वास नहीं करता उस के लिए इस देश में स्थान नहीं है। कबनेट मिशन भारत के दो भाग न करना चाहता था परन्तु श्री जिन्ना ने कहा कि भारत की समस्या का केवल एक समाधान है और वह पाकिस्तान है।

"प्रत्यक्ष कार्यवाही,

२७ जुलाई १९४६ को बम्बई मे मुस्लिमलीग की कार्य समिति ने निश्चय किया कि १६ अगस्त को 'प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस (Direct Action Day) मनाया जाय और मुसलमान सरकारी उपाधियों को लौटा दे। श्री जिन्ना ने कहा-" आज हम विधान के अनुकूल कार्यों का त्याग करते हैं। आज हमे पिस्तौल मिल गया है और हम इस का उपयोग कर सकते हैं।

१६ अगस्त १९४६ का अभागा दिन आ गया। भारत के कई नगरों मे मुस्लिम लीग के अनुयायियों ने उपद्रव मचा दिए। भयकर मार-काट प्रारम्भ हो। परन्तु कलकत्ते म १६ अगस्त को जो अत्याचार हुए उसके सम्बन्ध में लदन के समाचार-पत्र 'टाइम्ज, ने लिखा कि भारत के इतिहास मे ऐसी घटना कभी नहीं हुई थी। सहस्रों निर्दोष व्यक्ति मारे गए। नन्हें-नन्हें बच्चों को दरवाजों पर कीलों से गाड दिया गया। गुण्डों ने स्त्रियों के स्तन काटे, हार बनाए और उल्लास पूर्वक धारण किए। बाजार और मुहल्ले जलाए गए। पाँच छः दिन तक ऐसे प्रतीत होता था कि वहाँ कोई राज्य है ही नहीं।

महात्मा जी ने हिन्दू मुस्लिम एकता को अपने जीवन का एक उद्देश्य बनाया हुआ था। रचनात्मक कार्य-क्रम मे उसे स्थान दिया हुआ था। उसकी सिद्धि के लिए उन्होंने कई बार

अपने प्राण संकट में डाल दिए थे। जब उन्होंने इन अत्याचारों के समाचार सुने तो उन का हृदय टूक-टूक हो गया। वे उड़ कर उन्हीं स्थानो म पहुँचना चाहते थे जहाँ भाई-भाई का गला काट रहा था परन्तु पंडित नहरू ने उन्हे दिल्ली बुला लिया।

अन्तरिम सरकार की स्थापना

देश मे घोर मार-काट देख कर लार्ड वेवल ने प० नहरू को मंत्रि मंडल बनाने का निमंत्रण दे दिया था २ सितम्बर १९४६ को अन्तरिम सरकार बनाई गई और पं० नहरू उस के उपप्रधान बने। वह दिन भारत के इतिहास मे स्मरणीय रहेगा। उस दिन विद्रोहियों की संस्था कांग्रेस के कन्धों पर देश के शासन का भार डाला गया। उसी दिन मुस्लिम लीग के आदेश के अनुसार मुसलमानों ने अपने मकानो तथा दुकानों पर काली झंडिया लहराईं क्योंकि देश का शासन 'हिन्दू काग्रेस,को सौंप दिया गया था।

१५ अक्तूबर को मुस्लिम लीग ने अन्तिरिम सरकार मे काम करना स्वीकार कर लिया। उन्होंने अपने पाँच प्रतिनिधियों मे एक अ-मुस्लिम हरिजन को भी मंत्री बना दिया। १६ अक्तूबर को महात्मा जी ने कहा "हरिजन को मत्री बनाने से लीग की उदारता सिद्ध नहीं होती। मुस्लिम लीग एक साम्प्रदायिक सस्था है। वे हरिजन को अपना प्रतिनिधि कैसे बना सकते है।?" जिस प्रकार से लीग मन्त्रिमण्डल मे आने पर तयार हुई थी उसमे महात्मा जी को सदेह होने लगा कि ये मन्त्रिमण्डल मे भी लड़ने के लिये तो नहीं घुसे।

पूर्वी बंगाल के दगे

१० अक्तूबर से पूर्वी बगाल के दो नोआखाली तथा त्रिपुरा नामक जिलो मे भी लीगियों के अत्याचारों के भयकर समाचार

आने लगे। हिन्दू महासभा के प्रधान मंत्री श्री आशुतोष लहिरी ने सूचना दी कि सैकड़ों हिंदू मार डाले गये हैं। हजारों को बलपूर्वक मुसलमान बना लिया है सैकड़ों स्त्रियों का सतीत्व नष्ट किया गया है, सैकड़ों देवियां भगाई तथा मुसलमान बनाई गई है, हजारों घर लूटे और जलाए गए हैं, और अनगिनत मूर्तियाँ तोड़ फोड़ कर फेंक दी गई हैं। अमानुषिक अत्याचारों के ये रोमांचकारी समाचार सुन कर कांग्रेस के प्रधान आचार्य कृपलानी तथा श्री शरतचन्द्र बोस वायुयान द्वारा वहाँ पहुँचे। कार्य समिति ने आचार्य कृपलानी की रिपोर्ट सुन कर बंगाल के भयंकर कांडों के लिए वायसराय, बंगाल के गवर्नर, लीगी मंत्रिमंडल तथा मुस्लिम लीग को उत्तरदायी ठहराया।

नोआखाली को प्रस्थान

कलकत्ते के घोर नर-संहार के समय एक एक व्यक्ति ने अपने प्राणों के बचाव के लिये घर से स्टेशन तक जाने के लिये कोचवानों और ड्राइवरों को एक-एक हजार रुपया दे डाला था। परन्तु धन्य थे महात्मा गाँधी जिन्होंने पूर्व की दंगा-पीड़ित जनता को बचाने के लिए अपने प्राण जोखिम में डालने का निश्चय कर लिया। अनेक भक्तों ने कहा गाँधी जी शेर की गार में घुसने जा रहे हैं। ईश्वर ही जाने, सुरक्षित लौटेंगे भी या नहीं। दिल्ली में कांग्रेस ने देश के शासन का भार अभी-अभी सँभाला था। प० नेहरू तथा दूसरे लोग हर समय उनकी आवश्यकता अनुभव करते थे। परन्तु गाँधी जी का मन तो उन आर्त और पीड़ित लोगों में घूम रहा था जिनकी रक्षा के विषय में बंगाल की सरकार उदासीन बैठी थी। वे २८ अक्तूबर १९४६ को नोआखाली के लिये चल पड़े, और

बोले—"पीड़ितों के आँसू पोछने के लिए मैं नोआखाली जा रहा हूं।"

हृदय विदारक दृश्य

नोआखाली जाने से पूर्व गाँधी जी सप्ताह भर कलकत्ते मे रहे और अधिकारियों तथा जनता के प्रतिनिधियों से मिल कर नोआखली के समाचार सुनते रहे। ७ नवम्बर को महात्मा जी स्टीमर द्वारा नोआखाली जिले के चौमुहानी गाँव मे जा पहुचे। वहाँ पर कई दिन रह कर उन्होंने ग्रामीणो के मुख से अत्याचारों के विवरन सुने। श्रीमती सुचेता कृपलानी ने भी अपने दौरे के अनुभव गाँधी जी को सुनाए। उन सब विपद्—कथाओ को सुन कर उनके कोमल हृदय को बड़ी ठेस लगी। वे चौमुहानी से एक मील पर स्थित गोपेरबाग नामक गाँव मे गए। वहाँ एक परिवार के १६ व्यक्तियों का वध कर दिया गया था। सुचेता कृपलानी ने उन्हे रक्तरंजित कमरे भी दिखाए। जो गाँधी जी अपनी प्रिय जीवन संगिनी के सदा के वियोग पर भी न रोए थे, वे ही उस हृदय विदारक दृश्य को न देख सके। जैसे बरसात मे मकानों के परनाले चल पड़ते है वैसे ही अश्रुधाराए उनके नयनों से निकल पड़ीं।

असह्य वेदना

उस उजडे हुए गाँव से उनके हृदय पर इतना गहरा घाव लगा कि उन्होंने भोजन कमकर दिया। यह इसलिए कि यदि साम्प्रदायिक एकता के लिए आमरण व्रत भी रखना पडे तो उस की तैयारी अभी से होती रहे। पीछे वे खिजिरखिल नामक गाव मे गए जहा पर कि जन-धन की इतनी हानि हुई थी जितनी कि और कहीं भी नहीं। रामगज मे जाकर उन्होंने अपना भोजन और भी थोडा कर दिया।

१५ नवम्बर को वे नन्दनपुर गए। वहा पर भीषण अत्याचार किए गए थे और ३३ लाख की हानि हुई थी। वहां के धनियों को चीथड़ों मे और युवती विधवाओंको भारी संख्या मे देख कर गाधी जी का कलेजा छलनी हो गया। उन्होंने अपने भाषण में कहा—"जहा जाता हू वहीं प्रलय देख पडती है। मेरी आँखों मे आसू भी नहीं रहे जो बाहर निकलें।"

नये प्रयोग

जब वहा से महात्मा जी श्रीरामपुर जाने लगे तब उनके साथियों के नेत्र छलछला आए। वह ऐसा स्थान था जिस के इर्द गिर्द घोर लूट-मार तथा अनथ अत्याचार हुए थे। वहा जाने से पूर्व गाधी जी ने एक पत्रकार से ये शब्द कहे थे—"मैं यहां अपने कुछ नए प्रयोग करूगा जिन से मेरी अहिंसा की सच्ची परीक्षा होगी। यदि मुझ मे काफी साहस होगा और उस साहस को मैं अपनी अहिंसा से मिला सका तो मैं हिंदू और मुसलमान दोनों को प्रमाणित कर सकूगा। यहा मैं अकेले गावों का भ्रमण करूंगा और इस प्रकार मेरे दल के सभी लोग अलग-अलग गावों में जाकर अहिंसा तथा साम्प्रदायिक एकता का प्रचार करेंगे।"

जब पत्रकार ने कहा कि गुण्डों के मध्य मे आपका जीवन जोखिम में पड़ जाएगा तब वे बोले—"मेरी दृष्टि मे कोई गुण्डा नहीं है और यदि गुडे हैं तो सभी गुडे हैं, कोई कम कोई ज्यादा। मुझे तो विश्वास है कि ईश्वर जब तक इस शरीर से काम लेना चाहता है, तब तक इसे समस्त व्याधियों से मुक्त रखेगा।

श्रीरामपुर मे महात्मा जी ने कहा—"मेरा उद्देश्य यहा एक महीने तक रह कर अपने जीवन के महान् ध्येय साम्प्रदायिक

एकता के लिए अन्तिम प्रयत्न करने का है। यदि आवश्यक हुआ तो मै अपने प्राण भी विसर्जित कर दूगा। मेरी इच्छा यह है कि मै एक मुस्लिम लीगी के घर मे उन के कुटुम्ब के एक सदस्य की तरह रहू और मुसलमानो से सम्पर्क बढ़ाऊं।"

नेहरूजी का आगमन

२७ दिसम्बर १९४६ को पं० नेहरू, अचार्य कृपलानी तथा श्री शकर राव देव महात्मा गाधी जी से एक आवश्यक राजनीतिक विषय पर परामर्श करने के लिए श्री रामपुर पहुंचे। समस्या प्रातों की गुटबदी के सम्बन्ध मे थी। महात्मा जी की सम्मति से यह निश्चय किया गया कि सीमाप्रांत तथा आसाम गुट मे सम्मिलित हो जांय परन्तु यदि भविष्य मे अनुभव यह बताए कि बहुसख्यक दल के शासन मे अल्पसख्यको से अनुचित बर्ताव किया जाता है तो वे प्रॉत गुट से पृथक हो जाय। पं० नेहरू आदि दो दिन बाद लौट गए।

वहा डेढ़ मास रहने के पश्चात् महात्मा जी ने नया कार्यक्रम तैयार किया।

३० नवम्बर को गॉधी जी ने फिर घोषणा की कि मै पूर्वी बगाल से तब तक वापस न जाऊंगा जब तक मुझे विश्वास न हो जायगा कि हिंदू-मुसलमान भाई-भाई की तरह रहने लग पड़े हैं।

गाव गाव की यात्रा

२ जनवरी १९४८ से महात्मा जी ने गाव-गाव पैदल यात्रा का कार्य-क्रम बनाया। ७८ वर्ष की आयु मे शाति के वे दिव्य दूत प्रतिदिन दो चार मील चलते और मुसलमानों से कहते अपने किए पर पश्चाताप करो, हिंदुओं को वापस बुलाओ, मकान बनाओ

और उन्हे उनमे बसाओ। हिंदुओ से कहते कि तुम भयकी भावना भगा दो और साहस-पूर्वक अपने स्थानों मे जाकर फिर से काम काज मे लग जाओ। पूर्वी बंगाल की सरकार से कहते— शरणार्थियों को फिर से घरों भेजो और उन की आर्थिक सहायता करो।

महात्मा जी ने २ जनवरी से १७ फरवरी तक प्रति दिन पैदल यात्रा की और चालीस गाव मे एकता, प्रेम, विश्वास आदि के पवित्र भावों का हिंदू-मुसलमानों में प्रचार किया परिणाम यह हुआ कि बहुत से हिंदू फिर से घरों मे जा-जा कर बसने लगे। गाधीजी त्रिपुरा का दौरा आरम्भ करने वाले थे कि बगाल और बिहार के मुसलमानों ने उन से बिहार के गावों में शाति प्रचार की प्रार्थना की क्योंकि बंगाल के दगों के बदले के रूप में वहा भी गडबड़ी हो गई थी। सो महात्मा जी बिहार में चले गए।

१५

एकता की बलिवेदी पर

बिहार में प्रेम-प्रचार

मार्च १९४७ मे महात्मा जी ने बिहार के मसौढ़ी, वीर, गौरैयारवाड़ी, हॉसाडीह, पिपलावॉ आदि अनेक स्थानों मे भ्रमण किया जहॉ पर कि दगों के दिनों मे लूट-मार हुई थी। वहॉ उन्होंने हिन्दुओं को उसी प्रकार के उपदेश दिए जिस प्रकार के उपदेश मुसलमानो को पूर्वी बगाल मे दिए थे। उनका प्रयत्न निष्फल न गया। मुसलमानों का बाहर जाना रुक गया और वे फिर अपने-अपने स्थानों पर रहने लगे।

१८ मार्च १९४७ को वीर गॉव मे प्रार्थना के पश्चात् गाधी जी ने कहा—"मैं यहॉ मुसलमान भाइयों की सेवा करने के इरादे से आया हूँ। मै ईश्वर का सेवक हूँ, इसलिए सब मनुष्यों की सेवा करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। मै मानता हूँ कि कलकत्ते और नोआखली में मुसलमानों ने बहुत बुरा किया, परन्तु उसका बदला बिहार मे कैसे लिया जा सकता है? यहा 'नोआखली दिन' मनाने का फैसला बहुत गलत किया गया था।"

पंजाब के दंगे

उधर पश्चिमी पंजाब मे मुसलिम लीगियों ने घोर रक्त पात कर दिया। रावलपिंडी, मुलतान, अटक, जेहलम आदि जिलो मे उन्होंने अल्पसख्यक हिन्दू-सिक्खों पर वे अत्याचार किए कि नोआखली और त्रिपुरा के दगे

उन के सामने वैसे ही फीके पड़ गए जैसे सूर्य के प्रकाश मे तारे। सैकड़ों को मकान मे बंद कर जीवित जला दिया गया, सहस्रों स्त्रियों का अपहरण किया, हिन्दू नारियों को नंगी कर जलूस निकाले गए और धार्मिक स्थान अपवित्र कर दिए। सहस्रों को केश चोटी काट-काट बलात् मुसलमान बना डाला गया। अनेक स्थानो पर सैकड़ों नारियाँ और कुमारियाँ अपनी लाज बचाने के लिए कुओं म कूद पडीं, आग मे जल मरीं। अनेक स्थानों पर पुरुषो ने अपनी पत्नियों तथा बहू-बेटियों को लाचार हो कर अपने हाथ से मार डाला ताकि उन की लाज तो बच जाय।

शान्ति की अपील

उन्हीं दिनों अंग्रेजी सरकार ने घोषणा कर दी कि १ जून १६४८ को भारत का राज्य हिन्दुस्तानियो को सौंप दिया जाएगा। लार्ड वेवल के स्थान पर लार्ड माँउट बेटन आ गए। उन्हों ने देश मे हो रही भयकर मारकाट को रोकने के लिए प० जवाहर लाल तथा जिन्ना को बुलाया। इसी उद्देश्य से उन्होंने गाधी जी को भी बुला भेजा। गाधी जी ३१ मार्च को दिल्ली पहुँच कर उन से मिले। वाइस-राय ने महात्मा गांधी तथा श्री जिन्ना को शान्ति की अपील पर हस्ताक्षर करने की प्रेरणा की। उस अपील की लाखों प्रतियाँ जनता म बाँटी गई।

ऐशियाई सम्मेलन में

उन्ही दिनों दिल्ली मे श्रीमती सरोजिनी नायडू की अध्यक्षता मे ऐशियाई कानफ्रेंस हो रही थी। एशिया के प्राय: सब देशो के सैकडों प्रतिनिधि उस मे सम्मिलित होने के लिए आए हुए थे। उन की इच्छा के अनुसार महात्मा जी ने भी सम्मेलन मे आकर पारस्परिक प्रेम तथा ससार मे भ्रातृ-भाव की स्थापना आदि पर

अपने उत्तम विचार प्रकट किए। सब विदेशी प्रतिनिधि पहली बार महात्मा जी के दर्शन कर तथा उपदेशामृत पान कर कृत-कृत्य हो गए।

गाधी जी दिल्ली में आए तो एकाध सप्ताह के लिए ही थे परन्तु यहाँ की राजनीतिक स्थिति ऐसी डॉवा-डोल थी कि उन्हे यहाँ मास भर ठहरना पड गया। यहाँ वे कई बार वाइसराय महोदय से मिले और स्वदेश-सम्बन्धी विविध विषयों पर महत्त्व-पूर्ण विचार-परिवर्तन होता रहा।

गाधी जी मई मे फिर बिहार मे चले गए और सख्त गरमी की परवा न करके गॉव-गॉव घूम कर हिन्दू-मुस्लिम प्रेम का उपदेश देने लग पडे। वहाँ तीन सप्ताह भी लगा न पाए थे कि पं० नेहरू तथा सरदार पटेल के निमत्रण पर उन्हे फिर दिल्ली आना पडा।

देश का बॅटवारा

देश मे जो अप्रलयकारी मार-काट मची हुई थी उस से प्रतीत होता था कि लीगी मुसलमान हिन्दुओं के साथ मिल कर बिलकुल नहीं रहना चाहते। गाधी जी तथा काग्रेस की यही इच्छा थी कि सदा से अखड चले आ रहे इस देश को खण्ड-खण्ड न किया जाय। अन्तिम समझौते के लिए गाधी जी दिल्ली मे श्री जिन्ना से मिले भी परन्तु निष्फल। महात्मा गाधी जी ने उन दिनों यह भी कह दिया कि चाहे कितने ही उपद्रव क्यों न हो जॉय अंग्रेजों को भारत से शीघ्र चले जाना चाहिए। १८ मई को अंग्रेजी मन्त्रि-मडल ने लार्ड मॉउन्ट बेटन को इंगलैड बुलाया और वे शीघ्र ही एक योजना ले कर लौट आए। वह योजना यह थी कि अंग्रेज भारत से १५ अगस्त १९४७ को ही चले जायेंगे और देश को

शान्ति के देवता नोआखाली मे

भारत सघ तथा पाकिस्तान नामक दो भागों मे बाट दिया जाएगा। स्थिति ऐसी चिंताजनक हो रही थी कि महात्मा जी तथा काग्रेस ने देश के बँटवारे को स्वीकार करना ही उचित समझा।

काश्मीर-यात्रा

शताब्दियों की पराधीनता के पश्चात् १५ अगस्त को स्वराज्य मिलने वाला था। लोग उस स्मरणीय दिवस को धूम धाम से मनाने की तैयारियाँ करने लगे। परन्तु अभी तक देश के कई भागो मे दगे हो रहे थे इसलिए महात्मा जी तो वहीं शान्ति-प्रचार के लिए ही अपना समय लगाना चाहते थे। परन्तु उन्हे किसी राजनीतिक कार्य से कश्मीर जाना पडा। वे ३० जुलाई को कश्मीर को चल दिए और वहां केवल तीन दिन रह कर उन्हीं पैरों वापस लौट आए।

कलकत्ते में शान्तिप्रचार

अब महात्मा जी नोआखली जाने के लिए उद्यत हुए। वे पटने मे कुछ रुक कर कलकत्ते जा पहुँचे। दुर्भाग्य से वहाँ फिर दगा आरम्भ हो गया था। वहा के अधिकारियों ने उन से कलकत्ते मे रह कर ही शान्ति स्थापित कराने की प्रार्थना की। गाधी जी तथा बगाल के प्रधानमत्री श्री सुहरावर्दी दंगा-ग्रस्त बस्तियो मे रहकर शान्ति-स्थापना का उद्योग करने लगे। कई दुर्बुद्धि लोगो ने गाधी जी की इन चेष्टाओं से क्रुद्ध हो कर उन्हे पत्थर-ढेले मारे परन्तु आत्मा की अमरता मे दृढ़ विश्वास रखने वाले परमाणु-बम से भी न डरने वाले गांधी जी ने उन्हे फूलों के समान सह लिया। उनका प्रयत्न सफल हुआ। १५ अगस्त को कलकत्ते मे हिन्दू-मुसलमान गले मिल गए। हिन्दू मस्जिदो मे गए तो मुस्लिम मदिरों मे। १८ दिन शान्ति रही परन्तु १ सितम्बर को फिर

दंगा हो गया। गांधी जी से देखा न गया। उन्होंने उसी दिन से व्रत रख लिया और बोले—यह तो तभी टूटेगा जब शान्ति स्थापित हो जाएगी। उस का बहुत प्रभाव पड़ा। हिन्दू-मुस्लिम अपने अपराधों पर पछताने लगे। जब वहाँ के अधिकारियों तथा हिन्दू-मुस्लिम नेताओं ने उन्हे भविष्य मे शाति रखने का निश्चय दिला दिया तो गांधी जी दिल्ली लौट आए।

जनतापरिवर्तन लोग आशा करते थे, कि लीगियो को पाकिस्तान मिल ही गया है, इसलिए १५ अगस्त के पश्चात् पूरी शान्ति हो जायेगी। परन्तु १० अगस्त से ही पश्चिमी पजाब में अपूर्व मार-काट आरम्भ हो गई। उसकी देखा-देखी पूर्वी पजाब भी सुरक्षित न रह सका। परिणाम यह हुआ कि अन्त मे अ-मुस्लिमो को पश्चिमी पंजाब सीमा-प्रॉत, बलोचिस्तान, सिंध, बहावलपुर आदि से भारत संघ मे आना पड़ा और पूर्वी पंजाब तथा पटियाला आदि रियासतों से मुसलमानों को पश्चिमी पाकिस्तान मे जाना पड़ा। इस जन-परिवर्तन मे घोर मार-काट तथा असंख्य सम्पति की हानि हुई। लाखो मनुष्य मारे गए और एक करोड़ के लगभग बे-घर, बेघर हो गए। सहस्रो वृद्ध, और बालक और निर्बल तो यात्रा के कष्टो से ही चल बसे।

दिल्ली का दंगा दिल्ली मे भी पश्चिमी पंजाब के उजडे हुए कई लाख लोग आगए थे और सहस्रों मुसलमान दिल्ली छोड़ पश्चिमी पाकिस्तान मे चले गये थे। इस हेरा-फेरी से दिल्ली का वायु-मण्डल भी दूपित हो गया था। जिन दिनों महात्मा जी यहाँ पहुँचे उन दिनों दिल्ली में भी दगा जारी

था। सरकार उसे रोकने दबाने का भरसक यत्न कर रही थी परन्तु लोगों के क्रोध का पारावार न था।

गाँधी जी के यत्नों से शाँति हो गई परन्तु वैसी नहीं जैसी कि वे चाहते थे। शरणार्थियों ने मस्जिदों तथा मुसलमानों के कई मकानों पर बलात् अधिकार कर रक्खा था। गाँधी जी उन्हें लौटाने को कहते थे परन्तु निराश्रय शरणार्थी सुनते न थे। तब गाँधी जी ने १३ जनवरी १९४८ को हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए व्रत रख लिया और कह दिया कि यह तभी रहेगा जब मुसलमानों के धर्म-स्थान आदि लौटाए जायँगे तथा दिल्ली के लोग पूर्ण शाँति का निश्चय दिलायगे।

अन्तिम व्रत

व्रत के आरम्भ होते ही दिल्ली-निवासियों की आँखे खुल गईं। प्रतिदिन सभाएं तथा जलूस निकलने लगे जिन मे जनता से शाँति की अपील की जाती थी। उपवास के दिनों मे महात्मा जी ने बिड़ला हाउस मे प्रार्थना-सभा मे जो उपदेश दिए वे भारत के इतिहास मे सदा स्वर्णाक्षरों मे लिखे रहेगे। उन्हों ने कहा—"व्रत मुसलमानों के नाम मे आरम्भ हुआ है। सो उन पर अधिक उत्तरदायित्व है। उनको निश्चय करना है कि उन्हे हिंदू-सिक्खों के साथ मित्र बन कर, भाई बन कर रहना है। यूनियन के प्रति वफादार बन कर रहना है। वफादार हैं, ऐसा कहने से काम नहीं होता है। मैं तो उनके कामो से देख लेता हूँ।" "मुसलमान खुदा के नाम से यहाँ रहेगे और खुदा के नाम पर करेंगे। हिंदू-सिक्ख कितना भी बुरा काम करे मगर वे बुराई न करें। मै तो आप के साथ पड़ा हूँ, आप के साथ मरूंगा।' मैं तो यही कहूँगा कि पाकिस्तान मे अगर सभी हिंदुओं और सिक्खों को

काट डाले तो भी यहाँ एक भी मुसलमान को हम न काटें। निर्बल का मारना कायरता है।" "जब मैं नवयुवक था और राजनीति के विषय में कुछ नहीं जानता था तब से मैं हिंदू मुस्लिम आदि के हृदयों की एकता का सपना देखता आया हूँ। अपने जीवन के सन्ध्या काल में अपने उस स्वप्न को सिद्ध होते देख कर मैं छोटे बच्चे की तरह नाचूंगा।" "पाकिस्तान के मित्र और शुभचिन्तक के रूप में पाकिस्तान के रहने वालों और जिनको पाकिस्तान का भविष्य बनाना है उनको कहना चाहता हूँ कि यदि उन का जमीर जागृत न हुआ और अगर वे पाकिस्तान के पाप को स्वीकार नहीं करते तो पाकिस्तान को कभी कायम नहीं रख सकेंगे। इसका यह मतलब नहीं कि मैं यह नहीं चाहता कि हिंदुस्तान के दोनों टुकड़े अब अपनी खुशी से फिर एक हों। मगर मैं यह स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि जब-रदस्ती मिलाने का मुझे खयाल तक नहीं आ सकता।"

महात्मा जी ने १९१३ से १९१८ तक लोक कल्याण तथा आत्मशुद्धि के लिए सत्रह उपवास किए। यह दिल्ली का उपवास उनका अन्तिम उपवास था। पाकिस्तान के नेताओं ने भी इसके प्रभाव से शान्ति रखने का उद्योग आरम्भ कर दिया। जब १८ जनवरी को दिल्ली के सौ से अधिक हिन्दू, सिख तथा मुसलमान प्रतिनिधियों ने शान्ति रखने के प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर कर दिए तब महात्मा जी ने दिन के पौने एक बजे व्रत तोड डाला। भारतवासियों ने सुख की साँस ली।

परलोक-गमन

महात्मा जी प्रार्थना-सभा में जिस प्रकार के उपदेश दिया करते थे उनसे प्रायः हिन्दू-मुसलमान प्रसन्न थे परन्तु हिन्दुओं में एक दल उसे हिन्दू जाति

अन्तिम दिव्य दर्शन

के लिए घातक समझता था। उसी दल के एक व्यक्ति ने २० जनवरी को महात्मा जी पर बम फेंका परन्तु निशाना चूक गया। उसके अनन्तर पुलिस ने महात्मा जी से कहा कि आप हमें इजाजत दें कि प्रार्थना सभा में आने वालों की तलाशी ली जाया करे परन्तु महात्मा जी ने इस बात की आज्ञा न दी।

३० जनवरी सायकाल प्रार्थना-सभा में उसी दल के एक और व्यक्ति ने महात्मा जी की छाती में ३,४ गोलियाँ मारीं जिस से वे 'हे राम' कहते हुए गिर पड़े और साय ५-४० पर स्वर्ग सिधार गए।

कितनी हृदय-विदारक बात है कि उस व्यक्ति को, जिसने सारी आयु ससार के कल्याण के लिए अर्पण कर दी, जिसने स्वप्न में भी किसी का बुरा नहीं चाहा, जिसने राजसी ठाट-बाट पर लात लगा कर साधु-जीवन व्यतीत करना आरम्भ कर दिया, जिसने प्यारे भारत को स्वतत्र कराने के लिए बरसों जेल में बिता दिए, जो अपने ही देश में नहीं संसार भर में अपने समय का सब से बड़ा मनुष्य माना जाता था, एक पथ-भ्रष्ट हिन्दू ने अपने रिवालवर का निशाना बना डाला।

क्षण-भर में यह दुःखदायक समाचार संसार भर में फैल गया। जिसने सुना उसी ने सिर धुन लिया। कई लोग नदियों में डूब कर मर गए। कई हृदय की धड़कन बंद होने से चल बसे। कई विष खाकर परलोक सिधारे। जो जीते रहे वे भी अध मरे हो गए।

दूसरे दिन ३१ जनवरी देहली में उनकी अरथी का जलूस निकाला गया। किसी सम्राट् की शवयात्रा भी इतनी शोभाशाली न हुई होगी जितनी गाँधी जी की थी। लाखों मनुष्यों ने फटते

हुए हृदयों से उमड़ते हुए आँसुओं से अपने हृदय-सम्राट और भारत के बेताज बादशाह की अन्तिम श्रद्धाँजलि समर्पित की। दूर-दूर के स्थानो से लोग अन्तिम दर्शन को आए। पाकिस्तान के नेता भी हवाई जहाज़ पर आ पहुंचे। साय काल सब के देखते-देखते उनके शरीर को अग्नि ने भस्म कर डाला। लार्ड माउन्टबेटन तथा सब नेता भी श्मशान में विद्यमान थे।

दो दिन बाद राजघाट से उनकी अस्थियाँ और भस्म उठा ली गई और उस स्थान पर चबूतरा बना दिया गया। १२ जनवरी को उनकी भस्म और अस्थियाँ प्रयाग, काशी, देहली तथा भारत भर के तीर्थ-स्थानों पर नदियों मे श्रद्धा-पूर्वक बहाई गईं। लाखों लोग उस कार्यवाही मे सम्मिलित हुए। विदेशों से भी लोगों ने उनकी पवित्र भस्म का कुछ भाग माँग भेजा। उन्हें भी निराश नहीं किया गया। बरमा, लंका आदि मे भस्म का श्रद्धा-पूर्वक प्रवाह किया गया। आज से एक-दो मास पूर्व पवित्र मानसरोवर मे भी उनकी भस्म प्रवाहित की गई। इस प्रकार उस महापुरुष की ५ भौतिक काया पाँच तत्वो मे मिल गई जिन से वह बनी थी। निस्संदेह उनका शरीर नहीं रहा परन्तु वे अपने कीति-रूप शरीर से सदा ही ससार के हृदयों मे विराजमान रहेगे।

———

विश्ववंद्य गान्धी जी के देहावसान पर सयुक्तराष्ट्र सघ मे शोक-प्रगटन

महात्मा गांधी की अमर वाणी

१. ईश्वर और उसकी पूजा

"ईश्वर एक लक्षणातीत रहस्यमयी शक्ति है जो प्रत्येक पदार्थ मे व्याप्त है। यद्यपि मै उसे देखता नहीं तो भी उसे अनुभव करता हूँ।"

"ईश्वर निश्चय ही एक है। वह अगम, अगोचर और मानव जाति के बहु-जन-समाज के लिए अज्ञात है। वह सर्व-व्यापी है। वह बिना आँखों के देखता है, बिना कानों के सुनता है। वह निराकार और अभेद है। वह अजन्मा है। उसकी न माता है, न पिता, न सन्तान।"

"ईश्वर न काबा मे है, न काशी मे है। वह तो घर-घर मे व्याप्त है—हर दिल मे मौजूद है।"

"मै पवन और पानी के बिना भले ही जी सकूँ परन्तु उसके बिना नहीं जी सकता।"

"वह तो बुद्धि से अतीत है। ईश्वर का अस्तित्व मानने के लिए श्रद्धा की आवश्यकता है। मेरी श्रद्धा बुद्धि से भी इतनी अधिक आगे दौड़ती है कि मै समस्त ससार का विरोध होने पर भी यह कहूँगा कि ईश्वर है, वह है ही है।"

"मेरे पास एक राम-नाम के सिवा कोई ताकत नहीं है। वही मेरा एक आसरा है।"

"सिर्फ मुँह से राम-नाम रटने से कोई ताकत नहीं मिलती। ताकत पाने के लिए जरूरी यह है कि सोच समझ कर नाम जपा जाय और जप की शर्तों का पालन करते हुए जिंदगी बिताई जाय। ईश्वर का नाम लेने के लिए इन्सान को ईश्वरमय होना चाहिए।"

"प्रार्थना ने मेरे जीवन को बचा लिया है। इस के बिना मैं कभी का पागल हो गया होता।"

२. धर्म

"धर्म कुछ संकुचित सम्प्रदाय नहीं है, केवल बाह्याचार नहीं है। विशाल व्यापक धर्म है ईश्वरत्व के विषय में हमारी अचल श्रद्धा, पुनर्जन्म में अविचल श्रद्धा, सत्य और अहिंसा में हमारी अपूर्व श्रद्धा।"

"मैं ऐसा मानता हूँ कि धर्म-मात्र में आर्थिक, राजनीतिक इत्यादि विषयों का समावेश है। जो धर्म शुद्ध अर्थ का विरोधी है वह धर्म नहीं है। जो धर्म राजनीति का विरोधी है वह धर्म नहीं है। धर्म-रहित अर्थ त्याज्य है। धर्म रहित राज्य-सत्ता राक्षसी है। व्यक्ति अथवा समाज धर्म से जीवित रहते हैं और अधर्म से नष्ट होते हैं।"

"आने वाले जमाने पर सबसे ज्यादा असर धर्म का रहेगा। आज भी उसका वैसा ही असर पड सकता है और पडना चाहिए लेकिन पड़ता नहीं। क्योंकि वह सनीचर और इतवार की छुट्टी के दिनों फुरसत से याद करने की एक चीज बना दिया गया है। सच पूछा जाय तो धर्म जिन्दगी की हर एक साँस के साथ अमल में लाने की चीज है। जब ऐसा धर्म प्रकट होगा तब सारी दुनिया में उसका बोल बाला हो जायगा।"

३. सत्य

"निर्मल अन्तःकरण को जिस समय जो प्रतीत हो वही सत्य है। उस पर दृढ़ रहने से शुद्ध सत्य की प्राप्ति हो जाती है।"

"सत्य सर्वदा स्वावलम्बी होता है और बल तो उसके स्वभाव मे ही होता है।"

"जो सत्य जानता है, मन से, वचन से और काया से सत्य का आचरण करता है, वह परमेश्वर को पहचानता है। इससे वह त्रिकालदर्शी हो जाता है। उसे इसी देह मे मुक्ति प्राप्त हो जाती है।"

"सत्य स्वयं ही पूर्ण शक्तिमान् है और जब कड़े शब्दों के द्वारा उसकी पुष्टि का प्रयत्न किया जाता है तब वह अपमानित होता है।"

"मेरा यह विश्वास दिन-दिन बढ़ता जाता है कि सृष्टि मे एक मात्र सत्य की ही सत्ता है और उसके सिवा दूसरा कोई नहीं है।"

"सत्य गोपनीयता से घृणा करता है।"

" परमेश्वर 'सत्य' है, यह कहने के बजाय 'सत्य' ही परमेश्वर है, यह कहना अधिक उपयुक्त है।"

"सत्य ही एक धर्म की सच्ची प्रतिष्ठा है। जब सत्य ही परमेश्वर है तो धर्म मे असत्य को स्थान नही हो सकता है।"

" सत्य के नाम पर अगर असत्य भी इतना विजयी हो सकता है, तो स्वय सत्य कितना होगा ? इसका नाप कौन लगा सकता है ?"

"सत्य के लिए देश के नाश का भी साक्षी बनना पड़े तो बनना चाहिए, देश को छोड़ना पड़े तो छोड़ना चाहिए।"

४—अहिंसा

"दूसरे के लिए प्राणार्पण करना प्रेम की पराकाष्ठा है और उसका शास्त्रीय नाम अहिंसा है। अर्थात् यों कह सकते हैं कि अहिंसा ही सेवा है।"

"अहिंसा मानो पूर्ण निर्दोषता ही है। पूर्ण अहिंसा का अर्थ है प्राणिमात्र के प्रति दुर्भाव का पूर्ण अभाव।"

"अहिंसा—यह मानव जाति के पास एक ऐसी प्रबल से प्रबल शक्ति पड़ी हुई है कि उसका कोई पार नहीं। मनुष्य की बुद्धि ने संसार के जो प्रचण्ड से प्रचण्ड अस्त्र-शस्त्र बना। उन से भी प्रचण्ड यह अहिंसा की शक्ति है। संहार कोई मानव-धर्म नहीं।"

"सत्य के बाद अ अहिंसा ही संसार में बड़ी से बड़ी सक्रिय शक्ति है। विफल तो वह कभी होती ही नहीं। हिंसा सिर्फ ऊपर से सबल मालूम पड़ती है।"

"भारत अगर अहिंसा को गंवा देता है, तो संसार की अन्तिम आशा पर पानी फिर जाता है।"

"अहिंसा-धर्म केवल ऋषियों और सन्तों के लिए नहीं है। यह मामूली आदमियों के लिए भी है। अहिंसा मानव-जाति का नियम है, जैसे हिंसा पशु का नियम है।"

"मेरा धर्म मुझे शिक्षा देता है कि औरों की रक्षा के लिए अपनी जान दे दो, दूसरे को मारने के लिए हाथ तक न उठाओ। पर धर्म यह कहने के लिए भी छुट्टी देता है कि अगर ऐसा मौका आवे कि अपने आश्रित लोगों या ज़िम्मे के काम को छोड़ कर भाग जाने या हमला करने वालों को मारने में से

किसी एक बात को पसन्द करना हो तो यह हर शख्स का कर्तव्य है कि वह मारते हुए वहीं मर जाय, अपनी जगह छोड़ कर भागे हरगिज नहीं।"

"डर कर जो हिंसा नहीं करता वह तो हिंसा कर ही चुका है। चूहा बिल्ली के प्रति अहिंसक नहीं। उसका मन तो निरन्तर बिल्ली की हिंसा करता रहता है। हिंसा करने का पूरा सामर्थ्य रखते हुए भी जो हिंसा नहीं करता है वही अहिंसा-धर्म का पालन करने मे समर्थ होता है।"

"वे जो मरना जानते हैं उन्हें मैं अपनी अहिंसा सफलता-पूर्वक सिखा सकता हूं। जो मरने से डरते है, मै उन्हें अहिंसा नहीं सिखा सकता।"

५— ब्रह्मचर्य वा इन्द्रिय-संयम

"विषयमात्र का निरोध ही ब्रह्मचर्य है।"

"ब्रह्मचर्य का अर्थ है मन, वचन और काया से समस्त इन्द्रियों का सयम। जब तक अपने विचारों पर इतना कब्जा न हो जाय कि अपनी इच्छा के बिना एक भी विचार न आने पावे तब तक वह सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य नहीं।"

"ब्रह्मचर्य-हीन जीवन मुझे शुष्क और पशुवत् मालूम होता है। पशु स्वभावतः निरंकुश है, परन्तु मनुष्य इसी बात मे है कि मनुष्य- स्वेच्छा से अपने को अंकुश मे रखे। ब्रह्मचर्य की जो स्तुति धर्म ग्रन्थों मे की गई है उस मे पहले मुझे अत्युक्ति मालूम होती थी। परन्तु अब दिन-दिन यह अधिकाधिक स्पष्ट होता जाता है कि वह बहुत ही उचित और अनुभव-सिद्ध है।"

"ब्रह्मचारी रहने का यह अर्थ नहीं कि मै किसी स्त्री का स्पर्श न करूं, अपनी बहिन का स्पर्श न करूं। ब्रह्मचारी होने का अर्थ यह है कि स्त्री का स्पर्श करने से किसी प्रकार का विकार न उत्पन्न हो जिस तरह कि कागज को स्पर्श करने से नही होता। मेरी बहिन बीमार हो और उसकी सेवा करते हुए, उसका स्पर्श करते हुए ब्रह्मचर्य के कारण मुझे हिचकना पड़े तो वह ब्रह्मचर्य तीन कौड़ी का है। जिस निर्विकार दशा का अनुभव हम मृत शरीर को स्पर्श करके कर सकते हैं उसी का अनुभव जब हम किसी सुन्दर युवती का स्पर्श करके कर सके तभी हम ब्रह्मचारी है।"

"ब्रह्मचारी मे शरीर-रक्षण, बुद्धि-रक्षण और आत्मा का रक्षण सब कुछ है।"

"यह अधिकाधिक समझता जाता हू कि यह असिधारा व्रत है। निरन्तर जागरुकता की आवश्यकता देखता हूं।"

मैने खुद अनुभव करके देखा है कि यदि स्वाद को जीत लें तो फिर ब्रह्मचर्य अत्यन्त सुगम हो जाता है।

प्रयोग द्वारा मै ने अनुभव किया है कि भोजन, कम, सादा, बिना मिर्च-मसाले का और स्वाभाविक रूप मे करना चाहिए।"

ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले बहुतेरे विफल होते है क्योंकि वे आहार-विहार तथा दृष्टि इत्यादि मे ब्रह्मचारी की तरह वर्ताव करते हुए भी ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहते हैं।"

"संयमी और स्वच्छन्द तथा भोगी और त्यागी के जीवन मे भेद होना चाहिए। आख से दोनों काम लेते हैं। परन्तु ब्रह्मचारी देवदर्शन करता है, भोगी नाटक-सिनेमा मे लीन है।

कान का उपयोग दोनों करते है, परन्तु एक ईश्वर-भजन सुनता है और दूसरा विलासमय गीतों के सुनने मे आनन्द मानता है। जागरण दोनो करते है, परन्तु एक तो जागृत अवस्था मे अपने हृदय मन्दिर मे विराजित राम की आराधना करता है, दूसरा नाच-रंग की धुन मे सोने की याद भूल जाता है। भोजन दोनो करते है, परन्तु एक शरीर-रुपी तीर्थ-क्षेत्र की रक्षा-मात्र के लिए कोठे मे अन्न डाल देता है और दूसरा स्वाद के लिए देह मे अनेक चीजों को भर कर उसे दुर्गन्धित बनाता है।"

"व्यभिचारी तीन दोष करता है। झूठ का दोष करता ही है क्योंकि अपने पाप को छुपाता है। व्यभिचार को दोष मानता ही है। और दूसरे व्यक्ति का भी पतन करता है।

६. देश-धर्म

"मुझे-देशभक्ति का त्याग करना चाहिए जो दूसरे राष्ट्रों को आफत मे डालकर उन्हें लूटकर, बड़प्पन पाना चाहती है। "हमे प्रांतवाद को भी मिटाना चाहिए। यदि आन्ध्रवाले कहें कि आँध्र आँध्र के लिए है, उत्कल निवासी कहे कि उत्कल उत्कलवासियों के लिए है तो इस तरह काफी प्रांतीयता आ जाती है। सच तो यह है कि आँध्र और उत्कल दोनों को देश और जगत के लिए कुर्बान होने को तैयार होना है।"

स्वराज्य का अर्थ है—(१) स्वय अपने ऊपर प्राप्त किया हुआ राज्य (२) देश के आयात और निर्यात पर सेना पर और अदालतों पर जनता का पूरा नियन्त्रण (३) अन्न वस्त्र की बहुतायत (४) ऐसी स्थिति जिस मे एक बालिका भी घोर अन्धकार मे निर्भयता के साथ घूम-फिर सके (५) अन्त्यजों की अस्पृश्यता का सर्वथा नाश (६) ब्राह्मण और अब्राह्मण के झगडे की समाप्ति

(७) सब हिंदू-मुसलमान के मनोमालिन्य का सर्वथा नाश (८) सब धर्मों के लोग अपने अपने धर्म का पालन कर सकें और एक दूसरे के धर्म का आदर करें (९) प्रत्येक ग्राम चोरों और डाकुओं के भय से अपनी रक्षा करने में समर्थ हो जाय और अपने लिए आवश्यक अन्न-वस्त्र पैदा करे (१०) देशी राज्यों जमीदारों और प्रजा में मित्रभाव रहे (११) धनवान् और श्रम-जीवियों में परस्पर मित्रता (१२) स्त्रियें माताएं और बहिनें समझी जायं और उनका मान आदर हो तथा ऊंच नीच का भेद-भाव दूर हो कर सब भाई-बहिन की भावना से बर्ताव करें।"

७. सभ्यता और संस्कृति

भारतीय सभ्यता की प्रवृत्ति नैतिकता के विकास की ओर है जबकि पश्चिमी सभ्यता अनैतिकता को प्रोत्साहन देती है और इसीलिए मैं ने उसे असभ्यता कहा है। पश्चिमी सभ्यता नास्तिक है, भारतीय सभ्यता आस्तिक। हिन्दुस्तान के हितैषियों को चाहिए कि इस बात को समझ कर उसी श्रद्धा के साथ भारतीय सभ्यता से चिपटे रहें जिस तरह कि बच्चा अपनी माँ की छाती से चिपका रहता है।"

"मेरा तो यह निश्चित मत है कि दुनिया में किसी संस्कृति का भण्डार इतना भरा-पूरा नहीं है जितना हमारी संस्कृति का है।"

८. शिक्षा, साहित्य और भाषा

"हमारे देश के विश्वविद्यालयों की ऐसी कोई विशेषता है होती ही नहीं। वे तो पश्चिमी विश्वविद्यालयों की एक निस्तेज

और निष्प्राण नकल भर हैं। अगर हम उनको सिर्फ पश्चिमी सभ्यता का सोख्ता या स्याही-सोख कहे तो शायद बेजा न होगा"

"मेरी राय है कि शिक्षा की वर्तमान पद्धति इन तीन महत्व पूर्ण बातो मे सन्तोप है :—

१ इसका आधार विदेशी सस्कृति पर है जिससे देशी सस्कृति का इसमे नामोनिशान तक नहीं।

२. यह हृदय और हाथ की सस्कृति पर ध्यान नहीं देती। सिर्फ दिमाग की सस्कृति तक ही इसकी पहुँच है।

३ विदेशी माध्यम के द्वारा वास्तविक शिक्षा असम्भव है।

"कोई देश और कोई भाषा गन्दे साहित्य से मुक्त नहीं है। जब तक स्वार्थी और व्यभिचारी लोग दुनियाँ मे रहेंगे तब तक गदा साहित्य प्रकट करने वाले और पढ़ने वाले भी रहेंगे।"

' मुझे इसमे जरा भी शक नही कि हिन्दुस्तानी सारे हिन्दुस्तानियो के अन्तर प्रान्तीय व्यवहार के लिए सब से अच्छी भापा होगी। आम लोग न तो फारसी से लदी उर्दू समझ सकते है और न सस्कृत से भरी हिन्दी।"

"उर्दू को मै पृथक् भापा नहीं मानता, क्योंकि उसके व्याकरण का समावेश हिन्दी मे होता है।"

"उच्च कोटि की गुजराती, हिन्दी, बगला, मराठी जानने वालों के लिए सस्कृति जानना जरूरी है।"

९. सर्वोदय

"मेरी राय में हिन्दुस्तान की और सारे ससार की अर्थ-व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि उसमे विना खाने और कपड़े के

कोई भी रहने न पावे। दूसरे शब्दों मे हर एक को अपनी गुजर बसर के लिए काफी काम मिलना ही चाहिए।"

"प्रत्येक उद्यमी मनुष्य को आजीविका पाने का अधिकार है, मगर धनोपार्जन का अधिकार किसी को नहीं। सच कहें तो धनोपार्जन स्तेय है, चोरी है। जो आजीविका से अधिक धन लेता है, वह जान में हो या अनजान में, दूसरों की आजीविका छीनता है।"

"विना प्रामाणिक परिश्रम के किसी भी चंगे मनुष्य को मुफ्त मे खाना देना मेरी अहिंसा वर्दाश्त ही नहीं कर सकती। अगर मेरा वश चले तो जहाँ मुफ्त खाना मिलता है ऐसा प्रत्येक 'सदावर्त' या 'अन्नक्षेत्र' मैं वन्द करा दू। उनकी बदौलत राष्ट्र का पतन हुआ है और आलस्य सुस्ती, दम्भ तथा गुनहगारी को बढ़ावा मिलता है।"

"जनता की आर्थिक स्थिति मे समानता पैदा की जाय। किसी स्वस्थ समाज के अदर चंद आदमियों में धन का केन्द्रित हो जाना और लाखों का बेकार होना एक महान् सामाजिक अपराध या रोग है, जिसका इलाज अवश्य होना चाहिए।"

"मैं तो चाहता हूँ, हर एक का समय और परिश्रम बच जाय, सब को खाना मिल सके, सब पहन-ओढ़ सकें, सर्वोदय हो।"

"चर्खा तो लँगड़े की लाठी है— सहारा है। भूखे को दाना देने का साधन है। निर्धन स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा करने वाला किला है।"

१० हिंदू-मुस्लिम समस्या

"भारतवर्ष एक पक्षी है। हिन्दू और मुसलमान उसके दो पंख हैं। आज ये दोनों पंख अपङ्ग हो गए हैं।" "जब तक हिन्दू डरा करेंगे तब तक झगड़े होते ही रहेंगे। जहाँ डरपोक होता है तहाँ डराने वाला हमेशा मिल जाता है। हिंदुओं को समझ लेना चाहिए कि जब तक वे डरते रहेंगे तब तक उनकी रक्षा कोई न करेगा।" "हिन्दुओं के लिए यह आशा करना कि इस्लाम, ईसाई धर्म और पारसी धर्म हिन्दुस्तान से निकाल दिया जा सकेगा एक निरर्थक स्वप्न है। इसी तरह मुसलमानों का भी यह उम्मीद करना कि किसी दिन अकेले उनके कल्पना-गत इस्लाम का राज्य सारी दुनिया मे हो जायगा, कोरा ख्वाब है।"

"यह बात मेरी समझ मे नहीं आती कि जो लोग भाई-भाई की तरह रहे हैं, जलियाँवाला बाग के हत्याकांड मे जिनका खून एक साथ बहा है, आज वे एक दूसरे के दुश्मन कैसे होगए। जब तक मैं जिंदा हूँ तब तक तो यही कहूँगा कि ऐसा नहीं होना चाहिए। इससे मेरे दिल मे जो दुःख बना रहता है उस मे मैं हर दिन, हर पल भगवान् से शांति की प्रार्थना करता रहता हूँ। अगर शांति नहीं हुई तो मैं भगवान् से यही प्रार्थना करूँगा कि वह मुझे उठा ले।"

११—स्त्रियों के बारे में

"स्त्री को अबला कहना उसका अपमान करना है। अगर ताकत से मतलब पाशवी ताकत से है तो निस्सन्देह पुरुष की अपेक्षा स्त्री मे कम पशुता है, पर अगर इस का मतलब नैतिक

शक्ति से है तो अवश्य ही पुरुष की अपेक्षा स्त्री कहीं अधिक शक्तिशालिनी है।"

"स्त्री पुरुष की गुलाम नहीं है। वह अर्द्धांगिनी है, सहधर्मिणी है। उसको मित्र समझना चाहिए।"

"यदि उन्हें (लड़कियों को) मालूम होने लगे कि उनकी लाज और धर्म पर हमला होने का खतरा है तो उन में उस पशु मनुष्य के आगे आत्मसमर्पण करने के बजाय मर जाने तक का साहस होना चाहिए।"

"हिन्दू-धर्म ने संयम को उच्चतम कोटे पर पहुंचाया है और वैधव्य उसकी परिसीमा है।"

"मेरा विश्वास है कि सच्ची हिन्दू विधवा एक रत्न है। परन्तु बालविधवाओं का अस्तित्व हिन्दूधर्म के ऊपर एक कलङ्क है।"

"जब तक स्त्रियों में से ही असाधारण चरित्र वाली बहिनें उत्पन्न हो कर इन पतित बहिनों के उद्धार का कार्य अपने हाथ में न लेंगी तब तक वेश्यावृति की समस्या हल नहीं हो सकती। हर हालत में वह समय आए बिना नहीं रह सकता जब कि मानव जाति इस पाप के खिलाफ आवाज उठावेगी और वेश्यावृति को भूतकाल की चीज बना देगी।'

'जब वर, कन्या के बाप से विवाह करने की मिहरबानी के लिए दहेज लेता है तब नीचता की हद हो जाती है। पैसे के लालच से किया गया विवाह, विवाह नहीं है, एक नीच सौदा है।

"परदे की प्रथा हर तरह से अकल्याणकारी है। अनुभव से यह सिद्ध हो चुका है कि स्त्री की रक्षा करने के बदले यह स्त्री के शरीर और मन को हानि पहुंचाता है।"

"चाहे जैसे हलके और खूबसूरत क्यों न हों हर हालत में गहने त्याज्य हैं। वेडी सोने की हो या हीरे मोती से जड़ी हो, आखिर वेड़ी ही है।"

१२ अस्पृश्यता तथा ऊँच-नीच

"यदि आत्मा एक ही है, ईश्वर एक ही है तो अछूत कोई नहीं है।"

'जो तिरस्कार भाव से भगी, चमार आदि नामों से पुकारा जाता है वह तो जन्म से ही अछूत माना जाता है। इस ने भले ही मनों साबुन शरीर पर घिसा हो, भले ही वैष्णव का सा पहनावा रखता हो, भले ही मालाकंठी धारण करता हो, भले ही नित्य गीता-पाठ करता हो और भले ही लेखक का व्यवसाय करता हो फिर भी अछूत ही है। ऐसा जो धर्म माना या बरता जाता है वह धर्म नहीं, अधर्म है और नाश होने योग्य है।"

"छूआछूत हिन्दूधर्म का अंग नहीं है बल्कि उस में घुसी हुई सडन है। वहम है, पाप है और उसका निवारण करना प्रत्येक हिन्दू का धर्म है, परम कर्तव्य है।"

विद्यार्थी गर्मियों की छुट्टियों मे क्या-क्या हरिजन-सेवाए करें:—

१. रात्रिपाठशालाए और दिवस पाठशालाए चला कर हरिजन बालकों को पढ़ाना।

२. हरिजनों की बस्तियों मे जा कर उन की सफ़ाई करना, हरिजन चाहें तो इस मे उनकी भी मदद लेना।

३. हरिजन बालकों को देहात के इर्द-गिर्द ले जाना और उन्हें प्रकृति-निरीक्षण कराना तथा स्थानीय इतिहास और भूगोल का साधारण ज्ञान कराना और उनके साथ खेलना।

४. रामायण और महाभारत की सरल कथाए उन्हें सुनाना।

५. उन्हें सरल भजनों का अभ्यास कराना।

६. हरिजन बालकों के शरीर का मैल साफ़ करना, उन्हें स्नान कराना और स्वच्छता से रहने का सबक सिखाना।

७. हरिजनों को कहाँ क्या कष्ट हैं और उन का निवारण कैसे हो सकता है, इसका विवरण-पत्र तैयार करना।

८. बीमार हरिजनों को दवा-दारु देना इत्यादि।"

१३. विद्यार्थियों—के लिए कार्य-क्रम

१, विद्यार्थिओं को दलगत राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए। वे विद्यार्थी हैं, शोधक है, राजनीतिज्ञ नहीं।

२ वे राजनीतिक हड़तालों मे शरीक न हों। उनके अपने श्रद्धा-भाजन नेता एव वीर-पुरुष अवश्य हों लेकिन उनके प्रति अपनी श्रद्धाभक्ति का प्रदर्शन उन के उत्तम कार्यों के अनुसरण द्वारा होना चाहिए। उनके जेल जाने, स्वर्गवासी होने अथवा फाँसी पर चढ़ाए जाने तक पर हड़ताल करके नहीं। अगर उनका शोक असहनीय हो और सब विद्यार्थी समान रूप से अनुभव करते हों तो अपने प्रिंसिपल की स्वीकृति से मौके पर स्कूल कालिज बद किए जा सकते हैं। अगर प्रिंसिपल इन की बात न सुने तो उन्हें अधिकार है कि वे शीघ्रता पूर्वक इन

स्कूलों-कालिजों को छोड़ जावे। जो विद्यार्थी इन का साथ न दे-उन के अथवा अधिकारियों के विरुद्ध किसी भी हालत मे वे बल प्रयोग न करे।

३. उन सब को शास्त्रीय, वैज्ञानिक ढग से कताई-यज्ञ करना चाहिए। वे कताई-सम्बन्धी साहित्य का अध्ययन कर उसके सब आर्थिक, सामाजिक, नैतिक और राजनीतिक पहलुओं को अच्छी तरह समझने की कोशिश करेंगे।

४ वे हमेशा खादी ही काम मे लावेंगे और सब तरह की देशी-विदेशी मिलों की चीजे छोड़ कर गॉव मे बनी चीजें ही बरतेंगे।

५ तिरगे झन्डे के सदेश को वे अपने जीवन मे उतारेंगे और साम्प्रदायिक अथवा छुआछूत की भावना को कभी भी अपने हृदय मे स्थान न देंगे। दूसरे धर्म के विद्यार्थियों तथा हरिजनों के साथ वे अपने सम्बन्धियों की तरह सच्चे स्नेह-सम्बन्ध स्थापित करेंगे।

६ वे अपने किसी पडोसी के चोट लग जाने पर ध्यान पूर्वक उसकी तात्कालिक चिकित्सा करेंगे और अपने पड़ोस के गॉव मे मेहर का सफाई का काम करेंगे और वहाँ के बालकों और प्रौढ़ों को पढ़ाने का काम भी करेंगे।

७ वे जो कुछ भी नई बात सीखेंगे, उसका अपनी मातृ-भाषा मे अनुवाद करेंगे और अपने साप्ताहिक भ्रमण के मौके पर गॉव वालो को पढ़ सुनायेंगे।

८ वे कुछ भी काम छिपा कर या गुप्त रुप से न करेंगे। वे अपना जीवन सयम और शुद्धता के साथ बितायेंगे, सब

तरह का भय छोड़ देंगे, अपने कमजोर सहपाठी विद्यार्थी की रक्षा के लिए हमेशा तैयार रहेंगे और दंगा होने पर अपने जीवन को खतरे में डाल कर अहिंसा के जरिये उसे दबाने के लिए तत्पर रहेंगे।

६ अपने साथ पढ़ने वाली विद्यार्थिनियों के प्रति अपना व्यवहार अतिशय सरल और शिष्ट रखेंगे।

१४ अमृत-बिन्दु

"मेरा यह विश्वास ही नहीं है, जब कि उसके पड़ोसी दुःख में डूबे हुए हैं किसी एक व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है।"

"हमारा मानव अवतार इस लिए हुआ है कि हमारे अन्तर मे जो ईश्वर वसता है, उसका साक्षात्कार हम कर सके।"

"जो जीवन का लोभ छोड़ कर जीता है, वही जीवित रहता है।"

"जहा विचार और आचार के बीच पूरा पूरा मेल होता है वहीं जीवन भी पूर्ण और स्वाभाविक बनता है।"

"मैं हमेशा से यह मानता और कहता आया हूं कि हमे पूछे जाने वाले सब सवालों का जवाब देना हमेशा ही लाजिमी नही होता। सच वात कहने मे अपवाद की कोई गुंजाइश नहीं।"

"देखने मे आता है कि जिंदगी की जरूरतों को बढ़ाने से मनुष्य आचार-विचार मे पीछे रह जाता है। इतिहास यही बताता है। संतोष मे ही मनुष्य को सुख मिलता है।"

"धर्म तो कहता है—"मैं सेवा हूँ, मुझे विधाता ने अधिकार दिया ही नहीं है।"

"जो मनुष्य अधिकारी व्यक्ति के सामने स्वेच्छापूर्वक अपने दोष शुद्ध हृदय से कह देता है और फिर कभी न करने की प्रतिज्ञा करता है, वह मानो शुद्धतम प्रायश्चित करता है।"

"पुत्र मरे या पति मरे, उस का मिथ्या है और अज्ञान है।"

"हमे जिस बात की आवश्यकता है वह अपरिमित श्रद्धा और उसे अनुप्राणित करने वाला निष्कलंक चरित्र।"

"आशावाद आस्तिकता है। सिर्फ़ नास्तिक ही निराशावादी हो सकता है।"

"श्रद्धा और बुद्धि के क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं। अत्यंत बुद्धिशाली लोग अत्यंत चरित्रभ्रष्ट भी पाए जाते हैं मगर श्रद्धा के साथ चरित्र-शून्यता असम्भव है।

"गुस्सा एक प्रकार का क्षणिक पागलपन है। जो लोग जान बूझ कर या बिना जाने इसके वश मे अपने को देते हैं उन्हीं को इसका नतीजा भुगतना पडता है।"

"आतंक सब से ज्यादा निःसत्व करने वाली अवस्था है जिसमे कोई हो सकता है।"

"जो अपनी काया को पत्थर बना कर रखता है वह एक ही जगह बैठे हुए सारे संसार को हिलाया करता है।"

"स्वतंत्रता का पाणिग्रहण धारासभाओं मे या अदालतों मे स्कूलों कालिजों के कमरों मे नही, बल्कि कैदखाने की दीवारों

में और कभी-कभी तो फाँसी के तख्तो पर चढ़ कर ही किया जाता है।"

"सेवा करने वाले को तो अपनी लाज, आबरू, मान, सर्वस्व होम करके ही प्रजा की सेवा का इरादा करना चाहिए।"

"एक सिपाही के लिए तो स्वय युद्ध ही जीत है।"

"सच्चे सुधार का, सच्ची सभ्यता का लक्षण परिग्रह बढ़ाना नहीं बल्कि उसका विचार और इच्छापूर्वक घटाना है। ज्यों-ज्यों परिग्रह घटाइए त्यों त्यो सच्चा सुख और सच्चा सन्तोष बढ़ता है, सेवा-शक्ति बढ़ती है।"

"नम्रता का अर्थ है अहम्भाव का आत्यन्तिक क्षय।"

"यह समझ लेना अच्छी आदत नहीं है कि दूसरे के विचार गलत हैं और सिर्फ हमारे ही ठीक है।"

"हर एक सुधार से पहले असन्तोष का होना जरूरी है।"

"बल तो निर्भयता मे है, शरीर मे माँस बढ़ जाने में नहीं।

'जो आदमी दूसरों के मन मे अपना विश्वास पैदा कर सका है उसने दुनियाँ में कभी कुछ गँवाया नहीं।"

"कायर होने के कारण ही हम दूसरों के खून का विचार कर रहे है।"

"जो अपने हिस्से का काम किए बिना ही भोजन पाते हैं वे चोर हैं।"

"जहाँ पवित्रता है वहीं निर्भयता हो सकती है।"

जिस स्त्री को अपनी पवित्रता का ख्याल है उस पर बलात्कार करने वाला पुरुष न तो आज तक पैदा हुआ है, न होगा।'

"रिवाज के कुंए मे तैरना अच्छा है। उस मे डूबना आत्म हत्या है।"

कुरीति के अधीन होना पामरता है। उसका विरोध करना पुरुषार्थ है।"

"जरा सी बीड़ी ! वह दुनियाँ का कैसा नाश कर रही है। बीड़ी का ठडा नशा कुछ अशों मे मद्यपान से भी अधिक हानिकर है, क्योंकि मनुष्य उसका दोष शीघ्र नहीं देख सकता है।"

"निर्दोष युवावस्था एक अनमोल निधि है।"

गौ सेवा के बारे मे अपने दिल की बात कहूँ तो आप रोने लग जायेंगे और मै रोने लग जाऊँगा—इतना दर्द मेरे दिल मे भरा हुआ है।"

अपनी अपूर्णता महसूस करना प्रगति का पहला कदम है।

निर्बल वह नहीं जिसे निर्बल कहा जाता है बल्कि वह जो अपने को निर्बल समझता है।"

"गुण्डे सिर्फ बुजदिल लोगों के बीच पनप सकते हैं।"

" जो बात मुझे करनी है, आज तीस साल से जिसके लिए उद्योग कर रहा हूँ वह तो है—आत्मदर्शन, ईश्वर का साक्षात्कार, मोक्ष। मेरे जीवन की प्रत्येक क्रिया इसी दृष्टि से होती है।"

"मैं इस बात का दावा रखता हूँ कि मैं भारतमाता का और मनुष्य-जाति का एक नम्र सेवक हूँ और ऐसी सेवाओं क करते हुए मृत्यु की गोद में जाना पसंद करूँगा।"

"मैं ग़रीब से गरीब हिंदुस्तानी के जीवन के साथ अपने जीवन को मिला देना चाहता हूं। मैं जानता हूँ कि दूसरे तरीकों से मुझे ईश्वर के दर्शन हो ही नहीं सकते।"

" छाती पर हाथ रख कर मैं कह सकता हू कि एक मिनट के लिए भी मैं भगवान् को भूलता नहीं। गत बीस वर्षों से मैंने सभी काम उसी प्रकार किए हैं मानो साक्षात ईश्वर मेरे सामने खड़े हों।"

"मेरा दावा है कि मेरा एकमात्र सहारा भक्ति और प्रार्थना है अगर मेरे शरीर के टुकड़े २ भी कर दिए जायँ तो भी परमात्मा मुझे वह शक्ति देंगे कि मैं उसे इन्कार न करूँगा।"

"विचार, उच्चार, और आचार में बिलकुल शुद्ध सत्यनिष्ठ और अहिंसक बनने को तड़पने वाला मैं केवल एक प्रयत्नशील क्षुद्र जीव हूं। मैं उस आदर्श को सत्य मानता हू।"

———